सामान्य हिन्दी एवं परम्परागत आलेखन

(General Hindi and Traditional Writing)

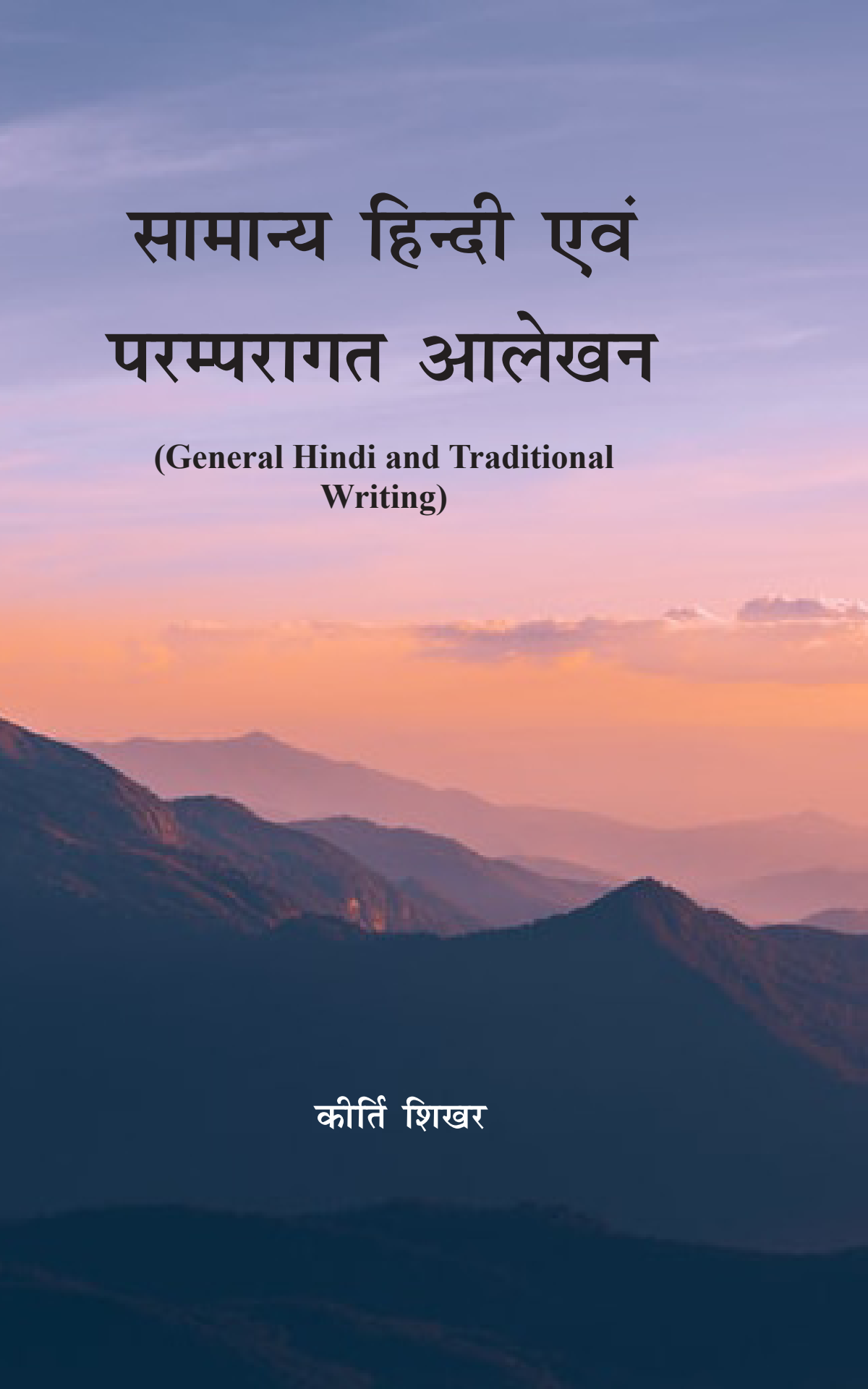

कीर्ति शिखर

सामान्य हिन्दी एवं परम्परागत आलेखन

सामान्य हिन्दी एवं परम्परागत आलेखन

कीर्ति शिखर

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली – 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-6458-0

प्रथम संस्करण : 2022

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली – 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

अनुक्रम

1.	विषय बोध	**1**
2.	हिन्दी का विकासशील स्वरूप	**36**
3.	हिंदी व्याकरण	**74**
4.	हिन्दी साहित्य	**143**
5.	कार्यालयी हिंदी	**186**
6.	आलेखन	**216**

1

विषय बोध

हिन्दी जिसके मानकीकृत रूप को मानक हिंदी कहा जाता है, विश्व की एक प्रमुख भाषा है एवं भारत की एक राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर भारत में सह-आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। यह हिन्दुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिन्दी सांवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है क्योंकि भारत के संविधान में किसी भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया है। एथनोलॉग के अनुसार हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

भारत की जनगणना 2011 में 57.1% भारतीय जनसंख्या हिन्दी जानती है जिसमें से 43.63% भारतीय लोगों ने हिन्दी को अपनी मूल भाषा या मातृभाषा घोषित किया था। इसके अतिरिक्त भारत, पाकिस्तान और अन्य देशों में 14 करोड़ 10 लाख लोगों द्वारा बोली जाने वाली उर्दू, व्याकरण के आधार पर हिन्दी के समान है, एवं दोनों ही हिन्दुस्तानी भाषा की परस्पर-सुबोध्य रूप हैं। एक विशाल संख्या में लोग हिन्दी और उर्दू दोनों को ही समझते हैं। भारत में हिन्दी, विभिन्न भारतीय राज्यों की 14 आधिकारिक भाषाओं और क्षेत्र की बोलियों का उपयोग करने वाले लगभग 1 अरब लोगों में से अधिकांश की दूसरी भाषा है। हिन्दी भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य करती है और कुछ हद तक पूरे भारत में सामान्यतः एक सरल रूप में समझी जाने वाली भाषा है। कभी-कभी 'हिन्दी' शब्द का

प्रयोग नौ भारतीय राज्यों के सन्दर्भ में भी उपयोग किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिन्दी है और हिन्दी भाषी बहुमत है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश, झारखण्ड, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखण्ड, जम्मू और कश्मीर (2020 से) उत्तर-प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोलीं जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिन्दी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात में भी हिन्दी या इसकी मान्य बोलियों का उपयोग करने वाले लोगों की बड़ी संख्या मौजूद है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

'देशी', 'भाखा' (भाषा), 'देशना वचन' (विद्यापति), 'हिन्दवी', 'दक्खिनी', 'रेखता', 'आर्यभाषा' (दयानन्द सरस्वती), 'हिन्दुस्तानी', 'खड़ी बोली', 'भारती' आदि हिन्दी के अन्य नाम हैं, जो विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में एवं विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी, यूरोपीय भाषा-परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द ईरानी शाखा की हिन्द आर्य उपशाखा के अन्तर्गत वर्गीकृत है।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास

प्राकृत भाषाएँ ईसवी सन् के कोई आठ-नौ सौ वर्ष तक और अपभ्रंश भाषाएँ ग्यारहवें शतक तक प्रचलित थीं। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण में हिंदी की प्राचीन कविता के उदाहरण' पाए जाते हैं। जिस भाषा में मूल 'पृथ्वीराजरासो' लिखा गया षटभाषा का मेल है। इस 'काव्य' में हिंदी का पुराना रूप पाया जाता है।' इन उदाहरणों से जान पड़ता है कि हमारी वर्तमान हिंदी का विकास ईसवी सन् की बारहवीं सदी से हुआ है। 'शिवसिंह सरोज' में पुष्य नाम के एक कवि का उल्लेख है, जो भाखा की जड़' कहा गया है, और जिसका समय सन् 713 ई. दिया गया है। पर न तो इस कवि की कोई रचना मिली है और न यह अनुमान हो सकता है कि उस समय हिंदी भाषा प्राकृत अथवा अपभ्रंश से पृथक् हो गई थी। बारहवें शतक में भी यह भाषा अधबनी अवस्था में थी, तथापि अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का प्रचार मुसलमानों के भारत प्रवेश के समय से होने लगा था। यह प्रचार यहाँ तक बढ़ा कि पीछे से भाषा के लक्षण में 'पारसी' भी रखी गई।'

विद्वान् लोग हिंदी भाषा और साहित्य के विकास को निम्न भागों में बाँटते हैं–

(1) आदि हिंदी यह उस हिंदी का नमूना है, जो अपभ्रंश से पृथक् होकर साहित्यकार्य के लिए बन रही थी। यह भाषा दो कालों में बांटी जा सकती है–(i) वीरकाल 1200-1400 और (ii) धर्मकाल 1440-1600।

वीरकाल में यह भाषा पूर्ण रूप से विकसित न हुई थी और इसकी कविता का प्रचार अधिकतर राजपूताने में था। इसके बाहर के साहित्य की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। उसी समय महोबे में जगनिक कवि हुआ जिसके किसी ग्रंथ के आधार पर 'आल्हा' की रचना हुई। आजकल इस काव्य की मूल भाषा का ठीक पता नहीं लग सकता, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रांतों के लेखकों और गवैयों ने इसे अपनी बोलियों का रूप दे दिया है। विद्वानों का अनुमान है कि इसकी मूल भाषा बुंदेलखंडी थी और यह बात कवि की जन्मभूमि बुंदेलखंड में होने से पुष्ट होती है।

प्राचीन हिंदी का समय बताने वाली दूसरी रचना भक्तों के साहित्य में पाई जाती है, जिसका समय अनुमान से 1400-1600 है। इस काल के जिन-जिन कवियों के ग्रंथ आजकल लोगों में प्रचलित हैं उनमें बहुतेरे वैष्णव थे और उन्हीं के मार्ग-प्रदर्शन से पुरानी हिंदी के उस रूप में, जिसे ब्रजभाषा कहते हैं, कविता रची गई। वैष्णव सिद्धांत के प्रचार का आरंभ रामानुज से माना जाता है, जो दक्षिण के रहने वाले थे और अनुमान से बारहवीं सदी में हुए हैं। उत्तर भारत में यह धर्म रामानंद स्वामी ने फैलाया, जो इस संप्रदाय के प्रचारक थे। इनका समय सन् 1400 ईसवी के लगभग माना जाता है। इनकी लिखी कुछ कविताएँ सिक्खों के आदिग्रंथ में मिलती हैं और इनके रचे हुए भजन पूर्व में मिथिला तक प्रचलित हैं। रामानंद के चेलों में कबीर थे जिनका समय 1512 ईसवी के लगभग है। उन्होंने कई ग्रंथ लिखे हैं जिनमें 'साखी', 'शब्द', रेख्ता' और 'बीजक' अधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा में ब्रजभाषा और हिंदी के उस रूपांतर का मेल है, जिसे लल्लू जी लाल ने (सन् 1803 में) खड़ीबोली' नाम दिया है। कबीर ने जो कुछ लिखा है, वह धर्म-सुधारक की दृष्टि से लिखा है, लेखक की दृष्टि से नहीं। इसलिए उनकी भाषा साधारण और सहज है। लगभग इसी समय मीराबाई हुईं, जिन्होंने कृष्ण की भक्ति में बहुत सी कविताएँ कीं। इनकी भाषा कहीं मेवाड़ी, और कहीं ब्रजभाषा है। इन्होंने 'राग गोविंद की टीका' आदि ग्रंथ लिखे। सन् 1469 ई. से 1538 तक बाबा नानक का समय है। ये नानकपंथी सम्प्रदाय के प्रचारक और 'आदिग्रंथ' लेखक हैं। इस ग्रंथ की भाषा पुरानी पंजाबी होने के बदले पुरानी हिंदी है। शेरशाह 1540 के आश्रय में मलिक मुहम्मद जायसी ने

पद्मावत' लिखी जिसमें सुन्तान अलाउद्दीन के चित्तौड़ का किला लेने पर वहाँ के राजा रतनसेन की रानी पद्मावती के आत्मघात की ऐतिहासिक कथा है'। इस पुस्तक की भाषा अवधी है।

वैष्णव धर्म का एक और भेद है जिसमें लोग श्रीकृष्ण को अपना इष्टदेव मानते हैं। इस संप्रदाय के संस्थापक वल्लभ स्वामी थे, जिनके पूर्वज दक्षिण के रहने वाले थे। वल्लभ स्वामी ने सोलहवीं सदी के आदि में उत्तर भारत में अपने मत का प्रचार किया। इनके आठ शिष्य थे जो 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये आठों कवि ब्रज में रहते थे और ब्रजभाषा में कविता करते थे। इनमें सूरदास मुख्य हैं। जिनका समय सन् 1550 ई. के लगभग है। कहते हैं, इन्होंने सवा लाख शब्द लिखे हैं जिनका संग्रह 'सूरसागर' नामक ग्रंथ में है। इस पंथ के चौरासी गुरुओं का वर्णन 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक ग्रंथ में पाया जाता है। जो ब्रजभाषा के गद्य में लिखा गया है, पर इस ग्रंथ का समय निश्चित नहीं है।

अकबर (1556-1605 ई.) के समय में ब्रजभाषा की कविता की अच्छी उन्नति हुई। अकबर स्वयं ब्रजभाषा में कविता करते थे और उनके दरबार में हिंदू कवियों के समान रहीम, फैजी फहीम आदि मुसलमान कवि भी इस भाषा में रचना करते थे। हिंदू कवियों में टोडरमल, बीरबल, नरहरि, हरिनाथ, करनेश और गंग आदि अधिक प्रसिद्ध थे।

(2) मध्य हिंदी—यह हिंदी कविता के सत्ययुग का नमूना है, जो अनुमान से सन् 1600 से लेकर 1800 ई. तक रहा। इस काल में केवल कविता और भाषा ही की उन्नति नहीं हुई वरन् साहित्य विषय के भी अनेक उत्तम और उपयोगी ग्रंथ लिखे गए। मध्य हिंदी के कवियों में सबसे प्रसिद्ध गोंसाईं तुलसीदास जी हुए, जिनका समय सन् 1573 से 1624 ई. तक है। उन्होंने हिंदी में एक महाकाव्य लिखकर भाषा का गौरव बढ़ाया और सर्वसाधारण में वैष्णव धर्म का प्रचार किया। राम के अनन्य भक्त होने पर भी गोसाईं जी ने शिव और राम में भेद नहीं माना और मत मतान्तर का विवाद नहीं बढ़ाया। वैराग्य वृत्ति के कारण उन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति और लीलाओं के विषय में बहुत नहीं लिखा, तथापि 'कृष्ण गीतावली में इन विषयों पर यथेष्ट और मनोहर रचना की है।

तुलसीदास ने ऐसे समय में रामायण की रचना की जब मुगल राज्य दृढ़ हो रहा था और हिंदू समाज के बंधन अनीति के कारण ढीले हो रहे थे। मनुष्य के मानसिक विकारों का जैसा अच्छा चित्र तुलसीदास ने खींचा है, वैसा और कोई नहीं खींच सका।

रामायण की भाषा अवधी है, पर वह बैसवाड़ी से विशेष मिलती-जुलती है। गोसाईं जी के और ग्रंथों में अधिकांश ब्रजभाषा है।

इस काल के दूसरे प्रसिद्ध कवि केशवदास, बिहारीलाल, भूषण, मतिराम और नाभादास हैं।

केशवदास प्रथम कवि हैं जिन्होंने साहित्य विषयक ग्रंथ रचे। इस विषय के इनके ग्रंथ 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और रामालकृतमजरी' हैं। 'रामचंद्रिका' और 'विज्ञानगीता' भी इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनकी भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुतायत है। इनकी योग्यता की तुलना सूरदास और तुलसीदास से की जाती है। इनका मरणकाल अनुमान से सन् 1612 ईसवी है। बिहारीलाल ने 1650 ईसवी के लगभग 'सतसई' समाप्त की। इस ग्रंथरत्न में काव्य के प्रायः सब गुण विद्यमान हैं। इसकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। 'बिहारी सतसई' पर कई कवियों ने टीकाएँ लिखी हैं। भूषण ने 1671 ई. में शिवराजभूषण' बनाया और कई अन्य ग्रंथ लिखे। इनके ग्रंथों में देशभक्ति और धर्माभिमान खूब दिखाई देता है। इनकी कुछ कविताएँ खड़ी बोली में भी हैं और अधिकांश कविताएँ वीर रस से भरी हुई हैं। चिंतामणि और मतिराम भूषण के भाई थे, जो भाषासाहित्य के आचार्य माने जाते हैं। नाभादास जाति के डोम थे और तुलसीदास के समकालीन थे। इन्होंने ब्रजभाषा में 'भक्तमाल' नामक पुस्तक लिखी जिसमें अनेक वैष्णव भक्तों का संक्षिप्त वर्णन है।

इस काल के उत्तरार्ध (17..1800 ईसवी) में राज्यक्रांति के कारण कविता की विशेष उन्नति नहीं हुई। इस काल के प्रसिद्ध कवि प्रियादास, कृष्णकवि, भिखारीदास, ब्रजवासीदास, सूरति मिश्र आदि हैं। प्रियादास ने सन् 1712 ईसवी में 'भक्तमाल' पर एक (पद्य) टीका लिखी। कृष्णकवि ने 'बिहारी सतसई' पर सन् 1720 के लगभग एक टीका रची। भिखारीदास सन् 1723 के लगभग हुए और साहित्य के अच्छे कवि समझे जाते हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ छंदोर्णव' और काव्यनिर्णय' हैं। ब्रजवासीदास ने सन् 1770 ई. में 'ब्रजविलास' लिखा, जो विशेष लोकप्रिय है। सूरति मिश्र ने इसी समय में ब्रजभाषा के गद्य में 'बैताल पचीसी' नामक एक ग्रंथ लिखा। यही कवि गद्य के प्रथम लेखक हैं।

(3) आधुनिक हिंदी—यह काल सन् 1800 से 1900 ईसवी तक है। इसमें हिंदी गद्य की उत्पत्ति और उन्नति हुई। अँगरेजी राज्य की स्थापना और छापे के प्रचार से इस शताब्दी में गद्य और पद्य की अनेक पुस्तकें बनीं और छपीं। साहित्य के सिवा इतिहास, भूगोल, व्याकरण, पदार्थविज्ञान और धर्म पर इस काल

में कई पुस्तकें लिखी गईं। सन् 1857 ई. के विद्रोह के पीछे देश में शान्ति-स्थापना होने पर समाचार पत्र, मासिक पत्र, नाटक, उपन्यास और समालोचना का आरंभ हुआ। हिंदी की उन्नति का एक विशेष चिह्न इस समय यह है कि इसमें खड़ी बोली (बोलचाल की भाषा) की कविता लिखी जाती है। इसके साथ ही हिंदी में संस्कृत शब्दों का निरंकुश प्रयोग भी बढ़ता जाता है। इस काल में शिक्षा के प्रचार से हिंदी की विशेष उन्नति हुई। पादरी गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से लल्लू जी लाल ने सन् 1804 ई. में 'प्रेम-सागर' लिखा जो आधुनिक हिंदी गद्य का प्रथम ग्रंथ है। इनके बनाए और प्रसिद्ध ग्रंथ 'राजनीति' (ब्रजभाषा के गद्य में), 'सभाविलास', लालचन्द्रिका' (बिहारी सतसई पर टीका), 'सिंहासन पचीसी' हैं। इस काल के प्रसिद्ध कवि पद्याकर 185, 'वाल 185, पजनेश 188, रघुराजसिंह 1844, दीनदयालगिरि 145, और हरिश्चंद्र 1940 हैं।

गद्यलेखकों में लल्लू जी लाल के पश्चात् पादरी लोगों ने कई विषयों की पुस्तकें अँगरेजी से अनुवाद कराकर छपवाईं। इसी समय से हिंदी में ईसाई धर्म की पुस्तकों का छपना आरंभ हुआ। शिक्षा विभाग के लेखकों में पं. श्रीलाल, पं. वंशीधर वाजपेयी और राजा शिवप्रसाद हैं। शिवप्रसाद ऐसी हिंदी के पक्षपाती थे जिसे हिंदू-मुसलमान दोनों समझ सकें। इनकी रचना प्रायः उर्दू ढंग की होती थी। आर्यसमाज की स्थापना से साधारण लोगों में वैदिक विषयों की चर्चा और धर्मसंबंधी हिंदी की अच्छी उन्नति हुई। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी की विशेष उन्नति की है। उसने गत अर्धशताब्दी में अनेक विषयों के न्यूनाधिक सौ उत्तम ग्रंथ प्रकाशित किए हैं जिनमें सर्वांगपूर्ण हिंदी कोश और हिंदी व्याकरण मुख्य है। उसने प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की नियमबद्ध खोज कराकर अनेक दुर्लभ ग्रंथों का भी प्रकाशन किया है। प्रयाग की हिंदी साहित्य सम्मेलन नामक संस्था हिंदी की उच्च परीक्षाओं का प्रबंध और संपूर्ण देश में उसका प्रचार राष्ट्रभाषा के रूप में कर रही है। उसने कई एक उपयोगी पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं।

इस काल के और प्रसिद्ध लेखक राजा लक्ष्मणसिंह, पं. अम्बिकादत्त व्यास, राजा शिवप्रसाद और भारतेंदु हरिश्चंद्र हैं। इन सब में भारतेंदु जी का आसन ऊँचा है। उन्होंने केवल 35 वर्ष की आयु में कई विषयों की अनेक पुस्तकें लिखकर हिंदी का उपकार किया और भावी लेखकों को अपनी मातृभाषा की उन्नति का मार्ग बताया। भारतेंदु के पश्चात् वर्तमान काल में सबसे प्रसिद्ध लेखक और कवि

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. श्रीधर पाठक, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय और बाबू मैथिलीशरण हैं, जिन्होंने उच्च कोटि के अनेक ग्रंथ लिखकर हिंदी भाषा और साहित्य का गौरव बढ़ाया है। आधुनिक काल के अन्य प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद, पं. सुमित्रानंदन पंत, बाबू जयशंकर प्रसाद, पं. सूर्यकांत त्रिपाठी, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, उपेंद्रनाथ अश्क, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, जैनेंद्रकुमार दिनकर, बच्चन, श्यामसुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल और रामचंद्र वर्मा हैं। कवयित्रियों में श्रीमती महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान प्रसिद्ध हैं।

हिंदी भाषा के स्वरूप

अब, आगे हम हिंदी भाषा के उन स्वरूपों से परिचय करना चाहेंगे जो इनके प्रकृतिगत रूप हैं और प्रयोगपरक रूप अर्थात् प्रयोजनपरक अथवा व्यवसायगत रूप हैं।

1. हिंदी के प्रकृतिक रूप पाँच हैं–

(क) मातृभाषा हिंदी–हिंदी का मातृभाषिक-प्रदेश दिल्ली और दिल्ली से लगा उत्तर-प्रदेश का जिला मेरठ मात्र है। वस्तुतः मातृभाषा वह भाषा है जिसे व्यक्ति अपनी माता की गोद में सीखता है, अर्थात् उसे माँ-बाप, उसे अड़ोस-पड़ोस, उसके अपने संस्कार की भाषा मातृभाषा होती है। मातृभाषा की पहचान के संबंध में गुलाब राय ने अपने लेख "मातृभाषा की महत्ता" में लिखा है कि यदि किसी की मातृभाषा का पता करना हो और, यह किसी भी प्रकार पता नहीं चल पाएं तो अचानक पीछे से उसकी पीठ पर मुक्का मारो। ऐसी स्थिति में जिस भाषा में वह अपनी आह व्यक्त करे वहीं उसकी मातृभाषा होगी। कारण, कोई कितना भी विदेशी भाषा का ज्ञान रखने वाला हो, अतिशय सुख अथवा अतिशय दुःख की अवस्था में वह अपनी मातृभाषा में ही अपने हृदय का भाव व्यक्त करेगा। यह एक अजीब-सी बात देखने को मिलती है कि जो हिंदी मातृभाषा के रूप में मात्र दिल्ली और उससे लगे मेरठ जिले एंव उसके आस-पास के एक छोटे से भू-भाग में प्रयोग में रही, द्वितीय भाषा के रूप में लगभग सारे भारत के विस्तार में प्राजल संपर्क का एक मात्र साधन बन चुकी है।

(ख) संपर्क भाषा हिंदी–एक भाषा भाषी जिसे भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ संपर्क स्थापित कर सके, उसे संपर्क भाषा (Link Language) कहते हैं। ऐसी भाषा मात्र दो या दो से अधिक

भिन्न-भिन्न भाषा भाषियों के बीच संपर्क का माध्यम नहीं बनती जो एक-दूसरे की भाशा से परिचित नहीं हैं, अपितु दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी राज्यों के बीच तथा केंद्र और राजयों के बीच भी संपर्क स्थापित करने का माध्यम बन सकती हैं। भारत के ही प्राचीन इतिहास पर यदि हम नजर डालते हैं तो पाते हैं कि यहाँ हर युग में राष्ट्र की एक प्रमुख भाषा संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वाह करती रही है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌भव और विकास से पहले संपर्क भाषा की इसी परंपरा के क्रम में हम संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का प्राजल प्रयोग पाते हैं। बाद में, मुगल शासन, देशी राजाओं और अंग्रेजी शासन काल में हिंदी को संपूर्ण रूप से तो नहीं, किंतु आंशिक रूप से संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार किया गया। आजादी की लड़ाई के समय में गाँधी और सुभाष जैसे गैर हिंदी भाषी नेताओं ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति संदेश देने और दो भिन्न-भाषियों के बीच संपर्क के लिए हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया। आजादी के बाद हमारी यहां हिंदी देश की सर्वमान्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

(ग) राष्ट्र भाषा हिंदी–राष्ट्रभाषा का अर्थ है राष्ट्र की भाषा। इस तरह राष्ट्र की जितनी भी भाषाएं हैं, सभी राष्ट्रभाषा है। फलस्वरूप भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं के अतिरिक्त देश की दर्जनों अन्य भाषाएं भी जो अपने-अपने क्षेत्रों में लोक सम्प्रेषण के माध्यम है हमारी राष्ट्र भाषाएं हैं। यही कारण है कि भारत के संविधान में इनमें से किसी भी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के नाम से अभिहित नहीं किया गया है। यही राजभाषा, संघभाषा अथवा संपर्क भाषा जैसे शब्दों का ही व्यवहार हुआ है। परंतु इतना होते हुए भी एक विशिष्ट अर्थ में राष्ट्रभाषा की संकल्पना और उसकी सार्थकता से हम इन्कार नहीं कर सकते और इस सार्थकता एवं यथार्थता के हकदार भी अपनी स्थिति के चलते हिंदी हो रही है।

राजभाषा अथवा संपर्क भाषा अपनी एक सीमा में परिधि में बंधी है, परन्तु, उस परिधि की सीमा के आर-पार विस्तृत व्यापक आयामों में परिव्याप्त, राष्ट्र के प्रशासन समस्त कार्य व्यापार, व्यवसाय रीति-नीति तकनीक तथा संस्कृति और परंपरा को अभिव्यक्ति देने वाली तथा विश्व के विभिन्न देशों तक इन्हें पहुँचाने में समर्थ राष्ट्र की एक सुगम सुबोध एवं सशक्त भाषा राष्ट्र भाषा होती है। भारत में इस रूप में राष्ट्रभाषा के स्वरूप में भी हिंदी स्वभावत: प्रतिष्ठित है। वस्तुत: राष्ट्रभाषा राष्ट्र की वह भाषा होती है, जो अपने व्यापक परिवेश और

विकासोन्मुख प्रवर्धमान शक्तियों के चलते अपनी क्षेत्रीयता की सीमा से ऊपर उठते हुए देश के विभिन्न क्षेत्रों संवेदन स्पंदन को अपनी आत्मा में समेट कर उसे प्रकाश, अभिव्यक्ति देती है, और जो विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न भाषा भाषियों के बीच भावनात्मक ऐक्य स्थापित करने में सेतु का काम करता है। हिंदी इन दोनों ही दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रही है, और इसलिए इसकी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा किसी कृत्रिम प्रयास का नहीं, स्वाभाविक गति का परिणाम है–

(घ) राजभाषा हिंदी–राजभाषा का अर्थ है वह भाषा जो राजकाज. प्रशासन-तंत्र के कार्य के संपादन को गतिविधि की कार्यकलापों की भाषा हो जैसे हर देश के अपने प्रतीक स्वरूप झंडे होते हैं और उसे राष्ट्रध्वज के नाम से पुकारते हैं, उसी तरह हर देश की समग्रता की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में सार्वदेशिक स्वरूप रखने वाली उसकी राजकीय गतिविधि के संपादन की एक भाषा भी होती है और उस भाषा को राजभाषा की संज्ञा दी जाती है। परंतु ऐसे संघ राष्ट्रों में जहां देश राष्ट के भिन्न-भिन्न राज्यों का अलग-अलग राजभाषाएं है वहां भाषा संघ की राजभाषा होती है, जो आमतौर पर समस्त देश में अथवा देश के अधिकांश भागों में परस्पर भिन्न-भिन्न भाष-भाषियों के बीच संपर्क माध्यम का कार्य तो करती ही है, देश की शिक्षा, देश का ज्ञान विज्ञान, रीति-नीति, कला संस्कृति आदि से संबंधित समस्त कार्यव्यापारी का निर्वाह भी करती है। हिंदी बखूबी इन दायित्वों का निर्वाह करती है। यह आजादी से पहले मुगल शासन काल में और अंग्रेजी शासन काल में अनेक देशी राजाओं के राज्य की राजभाषा देश के व्यापक क्षेत्रों की संपर्क भाषा तथा मुगल एवं अंग्रेजी शासन में ऊपरी तौर पर द्वितीय राजभाषा की तरह प्रयोग की जाती रही।

आजादी की लड़ाई में इसे विभिन्न भाषा-भाषी सेनानियों के बीच भावों विचारों एवं कार्ययोजनाओं के संपादन के लिए संपर्क भाषा के रूप में अपनाया गया। यही कारण था कि संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को इस प्राजल भारतीय संपर्क भाषा एवं राष्ट्रभाषा को संघ की राजभाषा बनाने का संकल्प पारित किया।

भारत के संविधान के अनुसार "देवनागरी लिपि में हिंदी संघ की राजभाषा होगी।"

वस्तुत: संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित देश की बाइसों (22) भाषाएं देश की राजभाषाएं है, परंतु जब हम पूरे देश को ध्यान में रखकर राजभाषा

की चर्चा करते हैं तो उसका एक मात्र अर्थ होता है संघ की राजभाषा जो संघ के प्रशासनिक कार्यों संघ और राज्यों के बीच संपर्क तथा अपने देश का दूसरों देशों के साथ राजनायिक संबंध और परस्पर आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में प्रायुक्त होता है। यही हिंदी भारत के संघ की राजभाषा है।

(ङ) बहुराष्ट्रीय भाषा हिंदी अथवा विश्वात्मक भाषा हिंदी–बहुराष्ट्रीय भाषा अथवा विश्वात्मक भाषा से उस भाषा का बोध होता है, जो एक से अधिक देशों में प्रयोग किया जाता है। हिंदी गुयाना, फिजी, सुरिनाम, मॉरीशस त्रिनिदाद आदि अनेक देशों में बहुसंख्यक जनता के बीच संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। भारत के पड़ोसी देश नेपाल,बर्मा, श्रीलंका आदि के अतिरिक्त इंग्लैंड अमेरिका, कनाडा, अफ्रिका, आदि देशों में काभी संख्या में एशियाई लोग हैं जिनके बीच हिंदी संपर्क भाषा है। मुस्लिम देशों में तो हिंदी इतनी परिचित एवं सुलभ है कि वे अनेक हिंदी सीरियल बड़े चाव से और नियमित रूप से देखते हैं। विश्व के अधिकांश बड़े देशों में विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का पाठ्यक्रम है और उसमें काफी छात्र-छात्राएं अध्ययनरत हैं। आज. विश्वात्मक गणना के आधार पर हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली समझी जाने वाली भाषाओं में पहले स्थान पर है। तात्पर्य यह है कि विश्व में किसी एक भाषा बोलने समझने वालों में हिंदी बोलने समझने वाले सर्वाधिक लोग हैं।

भारत में आद्योगित उदारीकरण के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन और उनके द्वारा इस देश में अपने व्यवसाय के प्रसार के उद्देश्य से देश की व्यापक जन भाषा हिंदी को व्यावसायिक संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग तथा टी.वी चैनलों क्षरा हिंदी के अनेक कार्यक्रमों का एक साथ भारत, अरब इंग्लैंड, अमेरिका आदि में प्रसारण से पहले विश्व के अनेक देशों में हिंदी का प्रयोग होने की जानकारी के बावजूद इस भाषा के बहुराष्ट्रीय भाषिक स्वरूप अथवा यूँ कहें कि विश्वात्मक स्वरूप से आमतौर पर इस देश के बुद्धिजीवी भी परिचित नहीं थे। विश्व स्तर पर सबसे अधिक लोगों द्वारा जानी समझी जाने वाली भाषाओं के बीच प्रथम स्थान ग्रहण करने के पश्चात भी हमारे पढ़े-लिखे भारतीय की मानस दशा कुछ ऐसी हो चुकी है कि हम बुद्धिजीवी भी हिंदी के विश्वात्मक स्वरूप को अपने मानस-पटल पर उतार पाने में बड़ी कठिनाई अनुभव कर रहे हैं, जन सामान्य की तो बात ही क्या? फिर भी आज हिंदी के विश्वात्मक प्रकृति से हम अपना पल्ला नहीं झाड़ सकते, न ही इस तथ्य को झुठला सकते हैं।

भाषा क्षेत्र

एक भाषा का जन-समुदाय अपनी भाषा के विविध भेदों एवं रूपों के माध्यम से एक भाषिक इकाई का निर्माण करता है। विविध भाषिक भेदों के मध्य सम्भाषण की सम्भाव्यता से भाषिक एकता का निर्माण होता है। एक भाषा के समस्त भाषिक-रूप जिस क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं उसे उस भाषा का 'भाषा-क्षेत्र' कहते हैं। प्रत्येक 'भाषा क्षेत्र में भाषिक भिन्नताएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भाषा की भिन्नताओं का आधार प्राय: वर्णगत एवं धर्मगत नहीं होता। एक वर्ण या एक धर्म के व्यक्ति यदि भिन्न भाषा क्षेत्रों में निवास करते हैं तो वे भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं। हिन्दू-मुसलमान आदि सभी धर्मावलम्बी तमिलनाडु में तमिल बोलते हैं तथा केरल में मलयालम। इसके विपरीत यदि दो भिन्न वर्णों या दो धर्मों के व्यक्ति एक भाषा क्षेत्र में रहते हैं तो उनके एक ही भाषा को बोलने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व आदि सभा वर्णों के व्यक्ति हिन्दी का प्रयोग करते हैं। यह बात अवश्य है कि विशिष्ट स्थितियों में वर्ण या धर्म के आधार पर भाषा में बोलीगत अथवा शैलीगत प्रभेद हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसी भी स्थितियाँ विकसित हो जाती हैं जिनके कारण एक भाषा के दो रूपों को दो भिन्न भाषाएँ समझा जाने लगता है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हम यह किस प्रकार निर्धारित करें कि उच्चारण के कोई दो रूप एक ही भाषा के भिन्न रूप हैं अथवा अलग-अलग भाषाएँ हैं ? इसका एक प्रमुख कारण यह है कि भाषिक भिन्नताएँ सापेक्षिक होती हैं तथा दो भिन्न भाषा क्षेत्रों के मध्य कोई सीधी एवं सरल विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। यही कारण है कि भाषिक-भूगोल पर कार्य करते समय बहुधा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। भारत का भाषा-सर्वेक्षण करते समय इसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव ग्रियर्सन को हुआ था। उन्होंने लिखा है कि '' सर्वेक्षण का कार्य करते समय यह निश्चित करने में कठिनाई पड़ी कि वास्तव में एक कथित भाषा स्वतंत्र भाषा है, अथवा अन्य किसी भाषा की बोली है। इस सम्बन्ध में इस प्रकार का निर्णय देना जिसे सब लोग स्वीकार कर लेंगे, कठिन है। भाषा और बोली में प्राय: वही सम्बन्ध है, जो पहाड़ तथा पहाड़ी में है। यह नि:संकोच रूप से कहा जा सकता है कि एवरेस्ट पहाड़ है और हालबर्न एक पहाड़ी, किन्तु इन दोनों के बीच की विभाजक रेखा को निश्चित रूप से बताना

कठिन है। सच तो यह है कि दो बोलियों अथवा भाषाओं में भेदीकरण केवल पारस्परिक वार्ता सम्बन्ध पर ही निर्भर नहीं करता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी दृष्टि में रखना आवश्यक है।

व्यावहारिक दृष्टि से जिस क्षेत्र में भाषा के विभिन्न भेदों में पारस्परिक बोधगम्यता होती है, वह क्षेत्र उस भाषा के विभिन्न भेदों का 'भाषा-क्षेत्र' कहलाता है। भिन्न भाषा-भाषी व्यक्ति परस्पर विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर पाते। इस प्रकार जब एक व्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से दूसरे भाषा-भाषी को भाषा के स्तर पर अपने विचारों, भावनाओं, कल्पनाओं, संवेदनाओं का बोध नहीं करा पाता, तब ऐसी स्थिति में उन दो व्यक्तियों के भाषा रूपों को अलग-अलग भाषाओं के नाम से अभिहित किया जाता है। इस बात में इस तथ्य से समझा जा सकता है कि जब कोई ऐसा तमिल-भाषी व्यक्ति जो पहले से हिन्दी नहीं जानता, हिन्दी-भाषी व्यक्ति से बात करता है, तो वह हिन्दी-भाषी व्यक्ति द्वारा कही गई बात को भाषा के माध्यम से नहीं समझ पाता, भले ही वह कही गई बात का आशय संकेतों, मुख मुद्राओं, भाव-भंगिमाओं के माध्यम से समझ जाए। इसके विपरीत यदि कन्नौजी बोलने वाला व्यक्ति अवधी बोलने वाले से बातें करता है, तो दोनों को विचारों के आदान-प्रदान करने में कठिनाइयाँ तो होती हैं, किन्तु फिर भी वे किसी न किसी मात्रा में विचारों का आदान-प्रदान कर लेते हैं। भाषा रूपों की भिन्नता अथवा एकता का यह व्यावहारिक आधार है। भिन्न भाषा रूपों को एक ही भाषा के रूप में अथवा अलग-अलग भाषाओं के रूप में मान्यता दिलाने में ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं उन भाषिक रूपों की संरचना एवं व्यवस्था आदि कारण एवं तथ्य अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, तथा कभी-कभी 'पारस्परिक बोधगम्यता' अथवा 'एक तरफा बोधगम्यता' के व्यावहारिक सिद्धांत की अपेक्षा अधिक निर्णायक हो जाते हैं। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ऐतिहासिक कारणों से वैनिशन (Venetian) तथा सिसिली (Sicily) को इटाली भाषा की बोलियाँ माना जाता है, यद्यपि इनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है। इसी प्रकार लैपिश (Lappish) को एक ही भाषा माना जाता है। इसके अन्तर्गत परस्पर अबोधगम्य भाषिक रूप समाहित हैं। इसके विपरीत राजनैतिक कारणों से डेनिश, नार्वेजियन एवं स्वेडिश को अलग-अलग भाषाएँ माना जाता है। इनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत वैनिशन (Vene-

tian) तथा सिसिली (Sicily) के पारस्परिक बोधगम्यता के प्रतिशत से कम नहीं है। भारतवर्ष के संदर्भ में हिन्दी भाषा के पश्चिमी वर्ग की उप-भाषाओं तथा बिहारी वर्ग की उप-भाषाओं के मध्य बोधगम्यता का प्रतिशत कम है। 'बिहारी वर्ग' की उप-भाषाओं पर कार्य करने वाले भाषा-वैज्ञानिकों ने उनमें संरचनात्मक भिन्नताएँ भी पर्याप्त मानी हैं। इतना होने पर भी सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक कारणों से भोजपुरी एवं मगही बोलने वाले अपने को हिन्दी भाषा-भाषी मानते हैं। ये भाषिक रूप हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत समाहित हैं। इसके विपरीत यद्यपि असमिया एवं बांग्ला में पारस्परिक बोधगम्यता एवं संरचनात्मक साम्यता का प्रतिशत कम नहीं है तथापि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से इनके बोलने वाले इन भाषा रूपों को भिन्न भाषाएँ मानते हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों का मत है कि भाषा क्षेत्र उस क्षेत्र के प्रयोक्ताओं की मानसिक अवधारणा है। भाषा-क्षेत्र में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियों के प्रयोक्ता अपने-अपने भाषिक-रूप की पहचान उस भाषा के रूप में करते हैं। विशेष रूप से जब वे किसी भिन्न भाषा-भाषी क्षेत्र में रहते हैं तो वे अपनी अस्मिता की पहचान उस भाषा के प्रयोक्ता के रूप में करते हैं।

यदि दो भाषा-क्षेत्रों के मध्य कोई पर्वत या सागर जैसी बड़ी प्राकृतिक सीमा नहीं होती अथवा उन क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के अलग-अलग क्षेत्रों में उनके सामाजिक सम्पर्क को बाधित करने वाली राजनैतिक सीमा नहीं होती तो उन भाषा क्षेत्रों के मध्य कोई निश्चित एवं सरल रेखा नहीं खींची जा सकती। प्रत्येक दो भाषाओं के मध्य प्रायः ऐसा 'क्षेत्र' होता है जिसमें निवास करने वाले व्यक्ति उन दोनों भाषाओं को किसी न किसी रूप में समझ लेते हैं। ऐसे क्षेत्र को उन भाषाओं का 'संक्रमण-क्षेत्र कहते हैं।

जिस प्रकार अपभ्रंश और हिन्दी के बीच किसी एक वर्ष की 'काल रेखा' निर्धारित नहीं की जा सकती, फिर भी एक युग 'अपभ्रंश-युग' कहलाता है और दूसरा हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि 'नव्यतर भारतीय आर्य भाषाओं का युग' कहलाता है उसी प्रकार यद्यपि हिन्दी और मराठी के बीच (अथवा अन्य किन्हीं दो भाषाओं के बीच) हम किलोमीटर या मील की कोई रेखा नहीं खींच सकते फिर भी एक क्षेत्र हिन्दी का कहलाता है और दूसरा मराठी का। ऐतिहासिक दृष्टि से अपभ्रंश और हिन्दी के बीच एव 'सन्धि-युग' है, जो इन दो भाषाओं के काल-निर्धारण का काम करता है। संकालिक दृष्टि से दो भाषाओं के बीच 'संक्रमण-क्षेत्र' होता है, जो उन भाषाओं के क्षेत्र को निर्धारित करता है।

प्रत्येक भाषा-क्षेत्र में भाषिक भेद होते हैं। हम किसी ऐसे भाषा क्षेत्र की कल्पना नहीं कर सकते जिसके समस्त भाषा-भाषी भाषा के एक ही रूप के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान करते हों। यदि हम वर्तमानकाल में किसी ऐसे भाषा-क्षेत्र का निर्माण कर भी लें जिसकी भाषा में एक ही बोली हो तब भी कालान्तर में उस क्षेत्र में विभिन्नताएँ विकसित हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि किसी भाषा का विकास सम्पूर्ण क्षेत्र में समरूप नहीं होता। परिवर्तन की गति क्षेत्र के अलग-अलग भागों में भिन्न होती है। विश्व के भाषा-इतिहास में ऐसा कोई भी उदाहरण प्राप्त नहीं है जिसमें कोई भाषा अपने सम्पूर्ण क्षेत्र में समान रूप से परिवर्तित हुई हो।

भाषा और बोली के युग्म पर विचार करना सामान्य धारणा है। सामान्य व्यक्ति भाषा को विकसित और बोली को अविकसित मानता है। सामान्य व्यक्ति भाषा को शिक्षित,शिष्ट, विद्वान एवं सुजान प्रयोक्ताओं से जोड़ता है और बोली को अशिक्षित, अशिष्ट, मूर्ख एवं गँवार प्रयोक्ताओं से जोड़ता है। भाषा-विज्ञान इस धारणा को अतार्किक और अवैज्ञानिक मानता है। भाषा-विज्ञान भाषा को निम्न रूप से परिभाषित करता है–'भाषा अपने भाषा-क्षेत्र में बोली जाने वाली समस्त बोलियों की समष्टि का नाम है'।

बदलते परिदृश्य में हिन्दी भाषा की स्वीकार्यता

हिन्दी एक आधुनिक भारत-आर्य भाषा है तथा यह भारतीय-यूरोपीय भाषाओं के परिवार से संबंधित भाषा है और संस्कृत की वंशज है, जो भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमाओं में आर्यन बसने वालों की बोली से उद्भूत है। समय की अवधि के साथ विकास के विभिन्न चरणों से गुजरती हुई शास्त्रीय संस्कृत से पाली-प्राकृत और अपभ्रंश तक, हिन्दी का उद्भव 10वीं शताब्दी में पाया जाता है।

हिन्दी को हिन्दवी, हिन्दुस्तान और खड़ी बोली के रूप में भी जाना जाता था। देवनागरी लिपि में लिखी गई हिन्दी (जो विश्व की वर्तमान लेखन प्रणाली के बीच सबसे वैज्ञानिक लेखन प्रणाली है) भारत गणराज्य की राष्ट्रीय आधिकारिक भाषा है और इसे दुनिया के सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्थान दिया गया है। इसके अलावा हिन्दी बिहार, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, उत्तर-प्रदेश और राजस्थान राज्य की राज्यभाषा भी है। दुनियाभर में लगभग 600 मिलियन लोग हिन्दी को पहली या दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं।

हिन्दी का साहित्यिक इतिहास 12वीं शताब्दी में पाया जाता है। भारतीय-आर्यन भाषाओं के विकास के 3 अलग-अलग चरणों को विद्वानों द्वारा सुझाया गया है। वे हैं-(i) प्राचीन (2400 ईसा पूर्व-500 ईसा पूर्व), (ii) मध्ययुगीन (500 ईसा पूर्व-1100 ईस्वी) और (iii) आधुनिक (1100-वर्तमान तक)। प्राचीनकाल वैदिक और शास्त्रीय संस्कृत की अवधि है जिसके परिणामस्वरूप मध्यकाल के दौरान पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। दक्षिण एशिया की अधिकांश आधुनिक भारत-आर्य भाषाएं, जैसे हिन्दी, बंगला, उड़िया, गुजराती, नेपाली, मराठी, पंजाबी, आधुनिक 'काल' में विकसित हुईं।

आज हम जो हिन्दी बोलते हैं, वह ब्रज भाषा एवं अवधी भाषा से परिवर्तित होकर इस स्वरूप में आई है। ब्रज भाषा का विस्तार अवधी भाषा से तुलनात्मक रूप से व्यापक है। बाद में ये भाषाएं अन्य पड़ोसी भाषाओं से प्रभावित हुईं। चूंकि मुगलों, तैमूर और अलेक्जेंडर के भारत पर हमले से भारत में नई संस्कृतियों का आविर्भाव हुआ एवं ब्रज भाषा पर उर्दू, अरब और फारसी भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। अवधी भाषा पर संस्कृत का बेहतर प्रभाव पड़ा। विश्वविद्यालयों और साहित्यिक समृद्ध क्षेत्रों के पास जैसे इलाहाबाद, वाराणसी, नालंदा, पाटलीपुत्र, गया आदि क्षेत्रों में प्रचलन के कारण अवधी भाषा (18वीं शताब्दी तक) संस्कृत मूल को बनाए रखने में सक्षम रही। 18वीं शताब्दी की शुरुआत तक नवाब युग की स्थापना हुई थी। इसके बाद उर्दू और फारसी भाषाओं ने अवधी को प्रभावित किया।

दुनिया का कोई भी देश भारत की भाषायी विविधता की बराबरी नहीं कर सकता। भारत में 'मातृभाषा' की संख्या 1,652 है (जैसा कि 1961 की जनगणना में सूचीबद्ध है)। भारत का संविधान किसी भी भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं देता है, हालांकि भारत गणराज्य की केंद्र सरकार की आधिकारिक भाषा हिन्दी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343, राजभाषा अधिनियम 1963 (यथा संशोधित 1967) के अनुसार 8वीं अनुसूची में 22 भाषाओं की सूची है जिन्हें अनुसूचित भाषाओं के रूप में संदर्भित किया गया है। इन भाषाओं को मान्यता, स्थिति और आधिकारिक प्रोत्साहन दिया गया है। इसके अलावा भारत सरकार ने 1500-2000 वर्षों के अपने लंबे इतिहास के कारण तमिल, संस्कृत, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम और उड़िया को शास्त्रीय भाषा का गौरव दिया है। सभी भारतीय भाषाएं इन 4 समूहों में से 1 में आती हैं-भारत-आर्य, द्रविड़ियन, चीनी-तिब्बती और अफ्रीका-एशियाटिक।

अंडमान द्वीपों की विलुप्त और लुप्तप्राय भाषाओं में 5वां परिवार है। हिन्दी दुनिया की दूसरी सबसे बोली जाने वाली भाषा है (अंग्रेजी और स्पेनिश के बाद)। डॉ. जयंतीप्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध अध्ययन 2005 के हवाले से लिखा है कि विश्व में हिन्दी जानने वालों की संख्या 1 अरब 2 करोड़ 25 लाख 10 हजार 352 (1,02,25,10,352) है जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल 90 करोड़ 4 लाख 6 हजार 614 (90,04,06,614) है। दुनिया की अन्य प्रमुख भाषाओं की तरह हिन्दी की देशभर में कई अलग-अलग बोली और भाषाएं हैं। ब्रज भाषा (खड़ी बोली) हरियाणवी, बुंदेली, अवधी (बाघेली), (कन्नौजी), (छत्तीसगढ़ी) प्रमुख हैं।

सोशल मीडिया पर हिन्दी भाषा के बढ़ते इस्तेमाल पर भारत में बहुत विवाद हैं। ये कटु सत्य है कि भाषा, भारत में एक विवादास्पद मुद्दा है। सन् 1963 में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में 'देवनागरी लिपि में हिन्दी' को भारत की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया था। देवनागरी लिपि संभवत: विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। यह जैसी लिखी जाती है, वैसी ही पढ़ी जाती है। इसमें अंग्रेजी के GO और TO तथा PUT और BUT जैसा उच्चारण-वैषम्य नहीं हैं। इसी प्रकार CALM और BALM जैसे शब्दों में स् के साइलेंट होने जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। हिन्दी में कैपिटल और स्माल लैटर का भी झंझट नहीं है। उच्चारण और एक्सेंट की समस्या नहीं है।

वैश्विक स्तर पर वही भाषा टिक पाएगी जिसका शब्द भंडार या शब्दकोश बड़ा हो। उस भाषा में औदात्य भी होना चाहिए ताकि वह अपने शब्द भंडार को निरंतर बढ़ाता जाए। इस लिहाज से हिन्दी का यह सौभाग्य रहा है कि भारत में अनेक विदेशियों ने आकर शासन किया जिनमें तुर्क, मंगोल, अफगान, मुगल, फ्रांसीसी, पुर्तगीज और विशेषकर अंग्रेज थे। इन शासकों ने अपनी भाषा में दरबार चलाया और देश पर शासन किया। फलस्वरूप हिन्दी भाषा शासकीय भाषाओं से प्रभावित हुई और उसका शब्द भंडार जो संस्कृत के प्रभाव से पहले ही अत्यधिक समृद्ध था, वह और भी संपन्न होता गया।

अंग्रेजी भारत में फैली हुई है और इसका व्यापक रूप से उपयोग भारत के अभिजात्य वर्ग, नौकरशाही और कंपनियों द्वारा किया जाता है। यह अपने लिखित रूप में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश दस्तावेजों के आधिकारिक संस्करण में अंग्रेजी का उपयोग किया जाता है। अधिकांश पैन-इंडियन लिखित संचार के साथ-साथ कई प्रमुख मीडिया आउटलेट अंग्रेजी

का उपयोग करते हैं। हालांकि बोले जाने वाले स्तर पर अंग्रेजी बहुत कम प्रचलित है और भारतीय भाषाओं का अधिक व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। हिन्दी अपने पूर्वोत्तर और दक्षिण को छोड़कर अधिकांश देश के लिए लिंगुआ फ्रैंका के रूप में उपयोग में लाई जाती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि लगभग 130 करोड़ भारतीयों या आबादी का लगभग 10 प्रतिशत अंग्रेजी बोल या समझ जाता है। इसका मतलब है कि लगभग 90 प्रतिशत भारतीय अंग्रेजी को समझते या बोलते नहीं हैं।

वैश्विक स्तर पर भाषा को जमने के लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण एवं किसी भी भाषा की सम्प्रेषणीय क्षमता के लिए आवश्यक शर्त है कि उस भाषा की निज अभिव्यक्ति क्षमता कितनी है। यदि भाषा विश्व के सभी लोगों को अपनी बात समझाने में असमर्थ है या यूं कहें कि उसमें सम्प्रेषणीयता का स्तर उच्च नहीं है, तो वैश्विक धरातल पर भाषा के टिके रहने का कोई आधार और औचित्य नहीं है।

हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा हिन्दी माध्यम में एमबीए का पाठ्यक्रम आरंभ किया गया। इसी तरह 'इकॉनॉमिक टाइम्स' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' जैसे अखबार हिन्दी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में आया कि 'स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अंग्रेजी में आरंभ हुए थे, वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णतः हिन्दी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही, 'ईएसपीएन' तथा 'स्टार स्पोर्ट्स' जैसे खेल चैनल भी हिन्दी में कमेंट्री देने लगे हैं।

विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लाखों लोगों को एक नई भाषा सिखाने के लिए समय और संसाधनों को नष्ट करना मूर्खता है। वास्तव में कितनी नौकरियों को अंग्रेजी के ज्ञान की आवश्यकता है? मेरे हिसाब से एकल इकाई के प्रतिशत से ज्यादा नहीं। भारत की वृद्धि अकेले सेवा उद्योग और कॉल सेंटर द्वारा संचालित नहीं की जा सकती है, भारतीयों का 1 प्रतिशत ऐसे उद्योगों में काम करता होगा, जो अपनी नौकरी के लिए कौशल के रूप में अंग्रेजी सीखते हैं। भारत के विकास के लिए यह जरूरी है कि जिस भाषा को आबादी का एक बड़ा हिस्सा बोलता हो उसे उसी में शिक्षित किया जाए ताकि वह अधिक कुशल बनकर अपनी आजीविका कमा सके।

बैंकिंग क्षेत्र में हिन्दी के विकास की बात है, तो वर्ष 2003-04 से लेकर अब तक (2007-08) की आरबीआई की वार्षिक रिपोर्ट तथा दिसंबर 2007 में प्रकाशित 'भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति संबंधी रिपोर्ट 2006-07' के हवाले से ज्ञात होता है कि सन् 1990 के दशक से ही विश्व बैंकिंग उद्योग में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। परिचालन, भूमंडलीकरण, विनियमन और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के सहारे यह क्षेत्र निरंतर प्रगति कर रहा है।

हिन्दी में तकनीकी प्रगति के साथ आय के नए तरीके भी सामने आ रहे हैं। हाल ही में हैदराबाद के गूगल ऑफिस में 'गुगल ब्लॉगर्स' की एक मीटिंग हुई। इस मीटिंग से आए 'टेक्नो स्पॉट डॉट नेट' के ऑनर आशीष मेहतो एवं मानव मिश्र ने बताया कि सिर्फ गूगल के हिन्दी ब्लॉगर्स की सालाना आय करोड़ों में होगी। सामान्य रूप से हर ब्लॉग्स का ऑनर जो महीने में 30 से 35 घंटे के लिए देखा जाता है, वह 25 से 200 डॉलर तक कमाई कर सकता है। इस तरह स्पष्ट है कि तकनीकी विकास से हिन्दी भाषा का विकास राष्ट्र का विकास और रोजगार के नए स्वरूपों का परिचायक है। भारत और हिन्दी के विकास के लिए शासन और समाज को हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति मित्रवत होना होगा ताकि जल्द से जल्द भारतीयों को यह एहसास हो कि आर्थिक और राजनीतिक सफलता के लिए अंग्रेजी आवश्यक नहीं है।

'वॉशिंगटन पोस्ट' के अनुसार हिन्दी 2050 तक अधिकांश व्यावसायिक दुनिया पर हावी रहेगी, इसके बाद स्पेनिश, पुर्तगाली, अरबी और रूसी। यदि आप अपनी भाषा पाठ्यक्रम से अधिक पैसा प्राप्त करना चाहते हैं तो ऊपर सूचीबद्ध भाषाओं में से एक का अध्ययन करना शायद एक सुरक्षित शर्त है।

केंद्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों की पहल के साथ कई सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाएं हिन्दी को एक लिंक भाषा के रूप में प्रसार के लिए काम कर रहे हैं। हिन्दी भाषी आबादी का बड़ा भाग विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के लिए एक आकर्षक बाजार बनाता है और इस बाजार का लाभ उठाने के लिए लोगों को भाषा से परिचित होने की जरूरत है।

इस तरह की भूमिका के लिए किसी भी भारतीय भाषा से लगभग कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होने के कारण देश के एक बड़े हिस्से पर एक लिंगुआ फ्रैंका के रूप में हिन्दी की पहले से मौजूद स्थिति उन लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र बनती जा रही है, जो अपने क्षेत्र के बाहर रोजगार के अवसर तलाशते हैं। कई स्वैच्छिक एजेंसियां हिन्दी के ज्ञान को फैलाने में व्यस्त हैं और फिल्मों और

रेडियो एवं सोशल मीडिया के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उनके कार्य में सहायता मिलती है।

हमें हिन्दी भाषा के अस्तित्व को बनाए रखना है तो सबसे पहले सैकड़ों बोलियों जैसे बुंदेलखंडी, भोजपुरी, गढ़वाली, अवधी, मगधी आदि की रक्षा करनी होगी। ऐसी क्षेत्रीय बोलियां ही हिन्दी की प्राणवायु हैं। आज हिन्दी का ज्ञान गैर-हिन्दी क्षेत्रों में फैल रहा है और देश में सार्वभौमिक लिंगुआ फ्रैंका के रूप में हिन्दी के उद्‌भव का सूर्य चमक रहा है।

मानकीकरण

हिंदी भारतीय गणराज की राजकीय और मध्य भारतीय-आर्य भाषा है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं, जबकि लगभग 42.20 करोड़ लोग इसकी 50 से अधिक बोलियों में से एक इस्तेमाल करते हैं। सन् 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था

मानक का अभिप्राय है–आदर्श, श्रेष्ठ अथवा परिनिष्ठित। भाषा का जो रूप उस भाषा के प्रयोक्ताओं के अलावा अन्य भाषा-भाषियों के लिए आदर्श होता है, जिसके माध्यम से वे उस भाषा को सीखते हैं, जिस भाषा-रूप का व्यवहार पत्राचार, शिक्षा, सरकारी काम-काज एवं सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में समान स्तर पर होता है, वह उस भाषा का मानक रूप कहलाता है।

मानक भाषा किसी देश अथवा राज्य की वह प्रतिनिधि तथा आदर्श भाषा होती है, जिसका प्रयोग वहाँ के शिक्षित वर्ग के द्वारा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यापारिक व वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में किया जाता है।

किसी भाषा का बोलचाल के स्तर से ऊपर उठकर मानक रूप ग्रहण कर लेना, उसका मानकीकरण कहलाता है।

मानकीकरण (मानक भाषा के विकास) के तीन सोपान निम्नलिखित हैं–

(i) प्रथम सोपान-'बोली'–पहले स्तर पर भाषा का मूल रूप एक सीमित क्षेत्र में आपसी बोलचाल के रूप में प्रयुक्त होने वाली बोली का होता है, जिसे स्थानीय, आंचलिक अथवा क्षेत्रीय बोली कहा जा सकता है। इसका शब्द भंडार सीमित होता है। कोई नियमित व्याकरण नहीं होता। इसे शिक्षा,

आधिकारिक कार्य-व्यवहार अथवा साहित्य का माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

(ii) द्वितीय सोपान-'भाषा'–वही बोली कुछ भौगोलिक, सामाजिकदृसांस्कृतिक, राजनीतिक व प्रशासनिक कारणों से अपना क्षेत्र विस्तार कर लेती है, उसका लिखित रूप विकसित होने लगता है और इसी कारण से वह व्याकरणिक साँचे में ढलने लगती है, उसका पत्राचार, शिक्षा, व्यापार, प्रशासन आदि में प्रयोग होने लगता है, तब वह बोली न रहकर 'भाषा' की संज्ञा प्राप्त कर लेती है।

(iii) तृतीय सोपान-'मानक भाषा'–यह वह स्तर है जब भाषा के प्रयोग का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। वह एक आदर्श रूप ग्रहण कर लेती है। उसका परिनिष्ठित रूप होता है। उसकी अपनी शैक्षणिक, वाणिज्यिक, साहित्यिक, शास्त्रीय, तकनीकी एवं कानूनी शब्दावली होती है। इसी स्थिति में पहुँचकर भाषा 'मानक भाषा' बन जाती है। उसी को 'शुद्ध', 'उच्च-स्तरीय', 'परिमार्जित' आदि भी कहा जाता है।

मानक भाषा के तत्त्व

- ऐतिहासिकता
- स्वायत्तता
- केन्द्रोन्मुखता
- बहुसंख्यक प्रयोगशीलता
- सहजता/बोधगम्यता
- व्याकरणिक साम्यता

छायावादी युग (1918-1937) व छायावादोत्तर युग (1936 के बाद) में हिन्दी के मानकीकरण की दिशा में कोई आंदोलनात्मक प्रयास तो नहीं हुआ, किन्तु भाषा का मानक रूप अपने आप स्पष्ट होता चला गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद (1947 के बाद) हिन्दी के मानकीकरण पर नये सिरे से विचार-विमर्श शुरू हुआ, क्योंकि संविधान ने इसे राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया, जिससे हिन्दी पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ पड़ा। इस दिशा में दो संस्थाओं का विशेष योगदान रहा-इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के माध्यम से 'भारतीय हिन्दी परिषद' का तथा शिक्षा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का।

भारतीय हिन्दी परिषद–भाषा के सर्वांगीण मानकीकरण का प्रश्न सबसे पहले 1950 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने ही उठाया। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई, जिसमें डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. ब्रजेश्वर शर्मा, डॉ. माता प्रसाद गुप्त आदि सदस्य थे। धीरेन्द्र वर्मा ने 'देवनागरी लिपि चिह्नों में एकरूपता', हरदेव बाहरी ने 'वर्ण विन्यास की समस्या', ब्रजेश्वर शर्मा ने 'हिन्दी व्याकरण' तथा माता प्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी शब्द-भंडार का स्थिरीकरण' विषय पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय–केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने लिपि के मानकीकरण पर अधिक ध्यान दिया और देवनागरी लिपि तथा 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' (1983 ई.) का प्रकाशन किया।

विश्व हिन्दी सम्मेलन–उद्देश्य-संयुक्त राष्ट्र की भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिलाना व हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना।

हिंदी की उप-भाषाएँ

हिंदी की उप-भाषा को 5 उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

(i) पश्चिमी हिंदी,
(ii) पूर्वी हिंदी,
(iii) बिहारी हिंदी,
(iv) राजस्थानी हिंदी,
(v) पहाड़ी हिंदी।

(1) पश्चिमी हिंदी–पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। उत्तरांचल-प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर-प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र-विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यत: पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

(i) कौरवी–प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी-बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी-बोली हिंदी का पर्याय रूप है। वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फर नगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ.प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुना नगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

(ii) ब्रजभाषा–इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य-प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है।

(iii) हरियाणवी–इसे बाँगा–या हरियानी नाम भी दिया जाता है। हरियाणा की सीमा उत्तर-प्रदेश, हिमाचल-प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

(iv) कन्नौजी–इसका प्रयोग फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत हैं इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रयोग होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य है। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

(v) बुंदेली–बुंदेलखंड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गयी हैं इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

(2) पूर्वी हिंदी–पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग प्राचीन कौशल राज्य के उत्तरी-दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर-प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य-प्रदेश के जबलपुर, रीवाँ आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं। यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियाँ हैं–अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

(i) अवधी-'अवध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है।

(ii) बघेली–इस बोली का केन्द्र रीवाँ हैं। मध्य-प्रदेश के दमोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर-प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है।

(iii) छत्तीसगढ़–'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़-प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है।

(3) बिहारी हिंदी–बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्‌भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है।

(i) भोजपुरी-भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर-प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में पूर्ण या आशिंक रूप में और बिहार के छपरा, चम्पारन तथा सारन में प्रयोग होता है।

(ii) मैथिली–मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरनगर, मुंगेर और भागलपुर में होता है।

(iii) मगही–'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके नाम की इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है।

(4) राजस्थानी हिंदी–राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं। राजस्थानी में चार प्रमुख बोलियों के रूप मिलते हैं-मेवाती, जयपुरी, मारबाड़ी और मालवी।

(i) मेवाती–मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर-पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है।

(ii) जयपुरी-इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और में होता है।

(iii) मारबाड़ी-राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुरानी मारवाड़ी डिंगल कहते थे।

(iv) मालवी-मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं।

(5) पहाड़ी हिंदी–इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है–पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

(i) पश्चिमी पहाड़ी–इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती हैं। यहाँ की बोलियों की संख्या तीस से अधिक है। ये मुख्यत: टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं।

(ii) मध्य पहाड़ी–नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते हैं। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य और संक्षिप्त-साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

बोलियाँ

हिन्दी का क्षेत्र विशाल है तथा हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उप-भाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यन्त उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना भी हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। ये बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उप-बोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परम्परा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन् स्वतन्त्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के विरुद्ध भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी की बोलियों में प्रमुख हैं–अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, बघेली, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि। किन्तु हिन्दी के मुख्य दो भेद हैं–पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी।

लिपि

हिन्दी को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। इसे नागरी के नाम से भी जाना जाता है। देवनागरी में 11 स्वर और 33 व्यंजन हैं। इसे बाईं से दाईं ओर लिखा जाता है।

शब्दावली

हिन्दी शब्दावली में मुख्यत: चार वर्ग हैं।

(i) तत्सम शब्द–ये वे शब्द हैं जिनको संस्कृत से बिना कोई रूप बदले ले लिया गया है। जैसे अग्नि, दुग्ध दन्त, मुख। (परन्तु हिन्दी में आने पर ऐसे शब्दों से विसर्ग का लोप हो जाता है जैसे संस्कृत 'नाम:' हिन्दी में केवल 'नाम' हो जाता है।)।

(ii) तद्भव शब्द–ये वे शब्द हैं जिनका जन्म संस्कृत या प्राकृत में हुआ था, लेकिन उनमें बहुत ऐतिहासिक बदलाव आया है। जैसे–आग, दूध, दाँत, मुँह।

(iii) देशज शब्द–देशज का अर्थ है–'जो देश में ही उपजा या बना हो'। तो देशज शब्द का अर्थ हुआ जो न तो विदेशी भाषा का हो और न किसी दूसरी भाषा के शब्द से बना हो। ऐसा शब्द जो न संस्कृत का हो, न संस्कृत-शब्द का अपभ्रंश हो। ऐसा शब्द किसी प्रदेश (क्षेत्र) के लोगों द्वारा बोल-चाल में यों ही बना लिया जाता है। जैसे-खटिया, लुटिया

(iv) विदेशी शब्द–इसके अतिरिक्त हिन्दी में कई शब्द अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि से भी आये हैं। इन्हें विदेशी शब्द कहते हैं।

जिस हिन्दी में अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्द लगभग पूर्ण रूप से हटा कर तत्सम शब्दों को ही प्रयोग में लाया जाता है, उसे 'शुद्ध हिन्दी' या 'मानकीकृत हिन्दी' कहते हैं।

हिन्दी आन्दोलन

हिन्दी आन्दोलन भारत में हिन्दी एवं देवनागरी को विविध सामाजिक क्षेत्रों में आगे लाने के लिये विशेष प्रयत्नशील हैं। यह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन में साहित्यकारों, समाजसेवियों नवीन चन्द्र राय, श्रद्धाराम फिल्लौरी, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पंडित गौरीदत्त, पत्रकारों एवं स्वतंत्रतता संग्राम-सेनानियों (महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि) का विशेष योगदान था।

भारतेन्दु के समय में हिन्दी की स्थिति बड़ी विकट हो गयी थी। अंग्रेज अपने 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अनुसार अल्पसंख्यकों को बढ़ावा देते थे। वे हिन्दी के राह में तरह-तरह के रोड़े अटकाते थे। उर्दू-प्रेमी साहित्यकार नई हिन्दी को अपने लिये बहुत बड़ा खतरा मानते थे। इसके अतिरिक्त हिन्दी के रूढ़िवादी साहित्यकार पुरानी काव्य-परम्पराओं से चिपके हुए थे। वे आधुनिक हिन्दी में गद्य के विकास के प्रति उदासीन थे।

बहुत से लोगों का विचार है कि मुसलमानों के भारत आने से नई भाषा 'उर्दू' का जन्म हुआ। ऐसा नहीं है। मुसलमानों के भारत आने से किसी नई भाषा का जन्म नहीं हुआ। दो धर्मों के पास आने से कोई नई भाषा जन्म नहीं लेती। मुसलमानों ने यूरोप पर भी आक्रमण किया था और सैकड़ों वर्षों तक उनसे लड़ाई

की थी किन्तु वहाँ किसी नई भाषा का जन्म नहीं हुआ। मुसलमानों का भारत में प्रवेश आठवीं शताब्दी से ही आरम्भ हो गया था किन्तु 'उर्दू' ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही सामने आया और जनपदीय बोलियों के शब्दों के व्यवहार का बहिष्कार इसी समय हुआ जब भारत पर अंग्रेजों की पकड़ मजबूत हो रही थी।

किसी एक ही धर्म के मानने वाले एक ही भाषा बोलें यह भी आवश्यक नहीं। अरब, ईरान, तुर्की तीनों मुसलमान देश हैं, किन्तु तीनों की भाषाएँ अलग-अलग ही नहीं, तीन भिन्न परिवारों की हैं। जब हम यह विचार करें कि भारत में मुसलमानों के आने से वहाँ की भाषाओं एवं संस्कृति में क्या परिवर्तन हुए, तो ये प्रश्न अवश्य पूछना चाहिए–ये मुसलमान कहाँ के निवासी थे? इनकी मातृभाषा क्या थी? दिल्ली में शासन करने वाले मुसलमान न इरानी थे न अरब।

हिन्दी का उर्दू से विलगाव इसलिये आवश्यक था कि उर्दू कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, रसखान आदि द्वारा प्रयुक्त देशी शब्दों की परम्परा से अपने को जानबूझकर अलग कर लिया था। ('मत:कात' का सिद्धान्त–अर्थात् भाषा में 'हिन्दीपन' के बदले फारसीपन का बोलबाला)। मत:कात के दो पहलू हैं–एक तो बहुत से प्रचलित शब्द 'गंवारू' कहकर छोड़ दिये गये, दूसरे उच्च साम्स्कृतिक शब्दावली के लिये केवल अरबी-फारसी से शब्द उधार लिये गये। बंगला, मराठी, तेलगू के विपरीत उर्दू में संस्कृत का तिरस्कार होता रहा।

उर्दू में जितने अरबी शब्द अंग्रेजों के राज में आये उतने मुसलमानों के राज में भी नहीं आये थे। 'उर्दू अलग जबान है', 'मजहब के आधार पर भी कौमें बनतीं हैं'–ये विचार अंग्रेजी राज में ही प्रचारित किये गये, मुसलमानों के शासनकाल में नहीं।

सांस्कृतिक आवश्यकता एवं अपरिहार्यता

उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश और बिहार की जनता अपनी सांस्कृतिक आवश्यकताएं किस प्रकार पूरी करती? समस्त भारतीय भाषाओं की लीक पर चलकर या उसे छोड़कर? फारसी लिपि अपनाकर, मत:कात का सिलसिला मानकर और संस्कृत शब्दावली का बहिष्कार करके?

यदि पटना, दिल्ली, उज्जैन के विशाल त्रिकोण में हिन्दी आन्दोलन न चलाया जाता, यदि यहाँ फारसी-लिपि और फारसी-अरबी के शिष्ट शब्द लेने की नीति को मान लिया जाता तो यह नीति केवल यहाँ की जनता के लिये ही

नहीं, वरन समस्त देश की जनता के लिये घातक होता। बंगला, मराठी, तेलुगू के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ने के बदले विशाल हिन्दी-भाषी क्षेत्र उन्हें पीछे ठेलता, उनकी प्रगति में बाधक बनता, उनके विकास को रोकता।

भारतेन्दु का यह युगान्तकारी महत्त्व है कि उन्होंने अपने प्रदेश के सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पहचाना, उन्होंने हिन्दी के लिये संघर्ष किया, सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में उसका व्यवहार सुदृढ़ किया, मत:कात का सिलसिला खत्म करके उन्होंने हिन्दी को उसी मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा दी जिस पर बंगला, मराठी, तेलुगू आदि पहले से ही बढ़ रहीं थीं।

हिन्दी का विकास हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिये आवश्यक और अपरिहार्य था। विशाल हिन्दी-प्रदेश का सांस्कृतिक विकास उर्दू के माध्यम से सम्भव न था। सन् 1928 में ख्वाजा हसन निजामी ने कुरान का हिन्दी अनुवाद कराया तो उन्होंने भूमिका में बताया कि उत्तर भारत के अधिकांश मुसलमान हिन्दी जानते हैं, उर्दू नहीं। भारतेन्दु ने जो हिन्दी आन्दोलन चलाया वह मुसलमानों के लिये भी उपयोगी था न केवल हिन्दुओं के लिये, ठीक उसी तरह जैसे बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बंगला-सेवा हिन्दू-मुसलमान सबके लिये थी।

परिणाम

हिन्दी आन्दोलन के कारण–

- हिन्दी क्षेत्र में एक नई सांस्कृतिक एवं राजनैतिक नवचेतना आयी।
- देश के सामने हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में उभरी।
- हिन्दी की पत्रकारिता बड़ी तेजी से विकास के रास्ते पर चल पड़ी और देश को आजाद कराने में इसकी अग्रणी भूमिका रही।

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी

इक्कीसवीं सदी बीसवीं शताब्दी से भी ज्यादा तीव्र परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है। विज्ञान एवं तकनीक के सहारे पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रही है और स्थलीय व भौगोलिक दूरियां अपनी अर्थवत्ता खो रहीं हैं। वर्तमान विश्व व्यवस्था आर्थिक और व्यापारिक आधार पर ध्रुवीकरण तथा पुनर्संघटन की प्रक्रिया से गुजर रही है। ऐसी स्थिति में विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों के महत्त्व का क्रम भी बदल रहा है।

बदलती दुनिया बदलते भाषिक परिदृष्य

यदि हम विगत तीन शताब्दियों पर विचार करें तो कई रोचक निष्कर्ष पा सकते हैं। यदि अठारहवीं सदी आस्ट्रिया और हंगरी के वर्चस्व की रही है तो उन्नीसवीं सदी ब्रिटेन और जर्मनी के वर्चस्व का साक्ष्य देती है। इसी तरह बीसवीं सदी अमेरिका एवं सोवियत संघ के वर्चस्व के रूप में विश्व नियति का निदर्शन करने वाली रही है। आज स्थिति यह है कि लगभग विश्व समुदाय दबी जुबान से ही सही, यह कहने लगा है कि इक्कीसवीं सदी भारत और चीन की होगी। इस सदी में इन दोनों देशों की तूती बोलेगी। इस भविष्यवाणी को चरितार्थ करने वाले ठोस कारण हैं। आज भारत और चीन विश्व की सबसे तीव्र गति से उभरने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से हैं तथा विश्व स्तर पर इनकी स्वीकार्यता और महत्ता स्वत: बढ़ रही है। इन देशों के पास अकूत प्राकृतिक संपदा तथा युवतर मानव संसाधन है जिसके कारण ये भावी वैश्विक संरचना में उत्पादन के बड़े स्रोत बन सकते हैं। अपनी कार्य निपुणता तथा निवेश एवं उत्पादन के समीकरण की प्रबल संभावना को देखते हुए ही भारत और चीन को निकट भविष्य की विश्व शक्ति के रूप में देखा जाने लगा है।

जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वत: महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अंतरराष्ट्रीय हैसियत हिंदी के लिए वरदान-सदृश है। यह सच है कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढ़ती उपस्थिति हिंदी की हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिंदी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में है।

भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ

आखिर, वे कौन सी विशेषताएँ हैं, जो किसी भाषा को वैश्विक संदर्भ प्रदान करती हैं। ऐसा करके हम हिंदी के विश्व संदर्भ का वस्तुपरक विश्लेषण कर सकते हैं। जब हम हिंदी को विश्व भाषा में रूपांतरित होते हुए देख रहे हैं और यथावसर उसे विश्वभाषा की संज्ञा प्रदान कर रहे हैं, तब यह जरूरी हो जाता है कि हम सर्वप्रथम विश्वभाषा का स्वरूप विश्लेषण कर लें। संक्षेप में विश्वभाषा के निम्नलिखित लक्षण निर्मित किए जा सकते हैं–

- उसके बोलने-जानने तथा चाहने वाले भारी तादाद में हों और वे विश्व के अनेक देशों में फैले हों।
- उस भाषा में साहित्य-सृजन की प्रदीर्घ परंपरा हो और प्रायः सभी विधाएँ वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध हों। उस भाषा में सृजित कम-से-कम एक विधा का साहित्य विश्वस्तरीय हो।
- उसकी शब्द-संपदा विपुल एवं विराट हो तथा वह विश्व की अन्यान्य बड़ी भाषाओं से विचार-विनिमय करते हुए एक-दूसरे को प्रेरित-प्रभावित करने में सक्षम हो।
- उसकी शाब्दी एवं आर्थी संरचना तथा लिपि सरल, सुबोध एवं वैज्ञानिक हो। उसका पठन-पाठन और लेखन सहज-संभाव्य हों। उसमें निरंतर परिष्कार और परिवर्तन की गुंजाइश हो।
- उसमें ज्ञान-विज्ञान के तमाम अनुशासनों में वाङ्मय सृजित एवं प्रकाशित हो तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने की क्षमता हो।
- वह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने-आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त हो।
- वह अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहक हो।
- वह जनसंचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर देश-विदेश में प्रयुक्त हो रही हो।
- उसका साहित्य अनुवाद के माध्यम से विश्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में पहुँच रहा हो।
- उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधा हो जिससे वह बहुभाषिक कम्प्यूटर की दुनिया में अपने समग्र सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, वह इतनी समर्थ हो कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों मसलन ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट तथा एस.एम.एस. एवं वेब जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा सके।
- उसमें उच्चकोटि की पारिभाषिक शब्दावली हो तथा वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभिव्यक्त करते हुए मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ हो।
- वह विश्व चेतना की संवाहिका हो। वह स्थानीय आग्रहों से मुक्त विश्व दृष्टि सम्पन्न कृतिकारों की भाषा हो, जो विश्वस्तरीय समस्याओं की समझ और उसके निराकरण का मार्ग जानते हों।

वैश्विक संदर्भ में हिंदी की सामर्थ्य

जब हम उपर्युक्त प्रतिमानों पर हिंदी का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि वह न्यूनाधिक मात्रा में प्राय: सभी निष्कर्षों पर खरी उतरती है। आज वह विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों–जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस है–में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है। वह विश्व के विराट फलक पर नवल चित्र के समान प्रकट हो रही है। आज वह बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। इस बात को सर्वप्रथम सन् 1999 में 'मशीन ट्रांसलेशन समिट' अर्थात् यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकड़े पेश करके सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के अनुसार विश्वभर में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है। अंग्रेजी तो तीसरे क्रमांक पर पहुँच गई है। इसी क्रम में कुछ ऐसे विद्वान अनुसंधित्सु भी सक्रिय हैं, जो हिंदी को चीनी के ऊपर अर्थात् प्रथम क्रमांक पर दिखाने के लिए प्रयत्नशील हैं। डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध अध्ययन 2005 के हवाले से लिखा है कि, विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या एक अरब दो करोड़ पच्चीस लाख दस हजार तीन सौ बावन (1, 02, 25, 10,352) है जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल नब्बे करोड़ चार लाख छह हजार छह सौ चौदह (90, 04,06,614) है। यदि यह मान भी लिया जाय कि आँकड़े झूठ बोलते हैं और उन पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया जा सकता तो भी इतनी सच्चाई निर्विवाद है कि हिंदी बोलने वालों की संख्या के आधार पर विश्व की दो सबसे बड़ी भाषाओं में से है। लेकिन वैज्ञानिकता का तकाजा यह भी है कि हम इस तथ्य को भी स्वीकार करें कि अंग्रेजी के प्रयोक्ता विश्व के सबसे ज्यादा देशों में फैले हुए हैं। वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा वैचारिक गतिविधियों को चलाने वाली सबसे प्रभावशाली भाषा बनी हुई है। चूंकि हिंदी का संवेदनात्मक साहित्य उच्चकोटि का होते हुए भी ज्ञान का साहित्य अंग्रेजी के स्तर का नहीं है अत: निकट भविष्य में विश्व व्यवस्था परिचालन की दृष्टि से अंग्रेजी की उपादेयता एवं महत्त्व को कोई खतरा नहीं है। इस मोर्चे पर हिंदी का बड़े ही सबल तरीके से उन्नयन करना होगा। उसके पक्ष में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज अंग्रेजी के बाद वह विश्व के सबसे ज्यादा देशों में व्यवहृत होती है।

आने वाली पीढ़ी की भाषा–वर्तमान उत्तर आधुनिक परिवेश में विशाल जनसंख्या भारत और चीन के साथ-साथ हिंदी और चीनी के लिए भी फायदेमंद सिद्ध हो रही है। हमारे देश में 1980 के बाद 65 करोड़ से ज्यादा बच्चे पैदा हुए हैं। जो विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षित प्रशिक्षित हो रहे हैं। वे सन् 2025 तक विधिवत प्रशिक्षित पेशेवर के रूप में अपनी सेवाएँ देने के लिए विश्व के समक्ष उपलब्ध होंगे। दूसरी ओर जापान की साठ प्रतिशत से ज्यादा आबादी साठ साल पार करके बुढापे की ओर बढ़ रही है। यही हाल आगामी पंद्रह सालों में अमेरिका और यूरोप का भी होने वाला है। ऐसी स्थिति में विश्व का सबसे तरुण मानव संसाधन होने के कारण भारतीय पेशेवरों की तमाम देशों में लगातार मांग बढ़ेगी। जाहिर है कि जब भारतीय पेशेवर भारी तादाद में दूसरे देशों में जाकर उत्पादन के स्रोत बनेंगे। वहाँ की व्यवस्था परिचालन का सशक्त पहिया बनेंगे तब उनके साथ हिंदी भी जाएगी। ऐसी स्थिति में जहाँ भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की प्रक्रिया में होगा वहाँ हिंदी स्वत: विश्वमंच पर प्रभावी भूमिका का वहन करेगी। इस तरह यह माना जा सकता है कि हिंदी आज जिस दायित्व बोध को लेकर संकल्पित है वह निकट भविष्य में उसे और भी बड़ी भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान करेगा। हिंदी जिस गति तथा आंतरिक ऊर्जा के साथ अग्रसर है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि सन् 2020 तक वह दुनिया की सबसे ज्यादा बोली व समझी जाने वाली भाषा बन जाएगी।

समर्थ भाषा और वैज्ञानिक लिपि–यदि हम इन आँकड़ों पर विश्वास करें तो संख्याबल के आधार पर हिंदी विश्वभाषा है। हाँ, यह जरूर संभव है कि यह मातृभाषा न होकर दूसरी, तीसरी अथवा चौथी भाषा भी हो सकती है। हिंदी में साहित्य-सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। वह 8वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान 21वीं शताब्दी तक गंगा की अनाहत-अविरल धारा की भाँति प्रवाहमान है। उसका काव्य साहित्य तो संस्कृत के बाद विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की क्षमता रखता है। उसमें लिखित उपन्यास एवं समालोचना भी विश्वस्तरीय है। उसकी शब्द संपदा विपुल है। उसके पास पच्चीस लाख से ज्यादा शब्दों की सेना है। उसके पास विश्व की सबसे बड़ी कृषि विषयक शब्दावली है। उसने अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है और जो शब्द अप्रचलित अथवा बदलते जीवन संदर्भों से दूर हो गए हैं उनका त्याग भी कर दिया है। आज हिंदी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य

अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है।

जहाँ तक देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का सवाल है तो वह सर्वमान्य है। देवनागरी में लिखी जाने वाली भाषाएँ उच्चारण पर आधारित हैं। हिंदी की शाब्दी और आर्थी संरचना प्रयुक्तियों के आधार पर सरल व जटिल दोनों है। हिंदी भाषा का अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि उसमें संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है। हिंदी और देवनागरी दोनों ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन व मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हैं जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है। हम जानते हैं कि विश्व मानव की बदलती चिंतनात्मकता तथा नवीन जीवन स्थितियों को व्यंजित करने की भरपूर क्षमता हिंदी भाषा में है बशर्ते इस दिशा में अपेक्षित बौद्धिक तैयारी तथा सुनियोजित विशेषज्ञता हासिल की जाए। आखिर, उपग्रह चैनल हिंदी में प्रसारित कार्यक्रमों के जरिए यही कर रहे हैं।

मीडिया और वेब पर हिंदी–यह सत्य है कि हिंदी में अंग्रेजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा हिंदी माध्यम में एम.बी.ए.का पाठ्यक्रम आरंभ किया गया। इसी तरह 'इकोनामिक टाइम्स' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' जैसे अखबार हिंदी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में आया कि 'स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अंग्रेजी में आरंभ हुए थे वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णत: हिंदी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही, 'ई.एस.पी.एन' तथा 'स्टार स्पोर्ट्स' जैसे खेल चैनल भी हिंदी में कमेंट्री देने लगे हैं। हिंदी को वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह-चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। वह जनसंचार-माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।

आज विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढा-लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्त्व को समझ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाडी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह

चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। आज मॉरीशस में हिंदी सात चैनलों के माध्यम से धूम मचाए हुए है। विगत कुछ वर्षों में एफ.एम. रेडियो के विकास से हिंदी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है। हिंदी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिंदी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं।

माइक्रोसाफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिंदी प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिंदी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिंदी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिंदी के शब्दकोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।

राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में हिंदी

जहाँ तक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विनिमय के क्षेत्र में हिंदी के अनुप्रयोग का सवाल है तो यह देखने में आया है कि हमारे देश के नेताओं ने समय-समय पर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में भाषण देकर उसकी उपयोगिता का उद्घोष किया है। यदि अटल बिहारी वाजपेयी तथा पी.वी.नरसिंहराव द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में दिया गया वक्तव्य स्मरणीय है तो श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राष्ट्र मंडल देशों की बैठक तथा चन्द्रशेखर द्वारा दक्षेस शिखर सम्मेलन के अवसर पर हिंदी में दिए गए भाषण भी उल्लेखनीय हैं। यह भी सर्वविदित है कि यूनेस्को के बहुत सारे कार्य हिंदी में सम्पन्न होते हैं। इसके अलावा अब तक विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस, त्रिनिदाद, लंदन, सुरीनाम तथा न्यूयार्क जैसे स्थलों पर सम्पन्न हो चुके हैं जिनके माध्यम से विश्व स्तर पर हिंदी का स्वर सम्भार महसूस किया गया। अभी आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव बान की मून ने दो-चार

वाक्य हिंदी में बोलकर उपस्थित विश्व हिंदी समुदाय की खूब वाह-वाही लूटी। हिंदी को वैश्विक संदर्भ और व्याप्ति प्रदान करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रीय भूमिका रही है, जो विश्व के अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई है। इन विश्वविद्यालयों में शोध स्तर पर हिन्दी अध्ययन अध्यापन की सुविधा है जिसका सर्वाधिक लाभ विदेशी अध्येताओं को मिल रहा है।

विदेशों में हिंदी–हिंदी विश्व के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण देशों के विश्व विद्यालयों में अध्ययन अध्यापन में भागीदार है। अकेले अमेरिका में ही लगभग एक सौ पचास से ज्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। आज जब 21वीं सदी में वैश्वीकरण के दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएँ आदान-प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुजर रही हैं तो हिंदी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर सकती है। उसके पास पहले से ही बहु सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है जिससे वह अपेक्षाकृत ज्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थिति में है। हिंदी सिनेमा अपने संवादों एवं गीतों के कारण विश्व स्तर पर लोकप्रिय हुए हैं। उसने सदा-सर्वदा से विश्वमन को जोड़ा है। हिंदी की मूल प्रकृति लोकतांत्रिक तथा रागात्मक संबंध निर्मित करने की रही है। वह विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की ही राष्ट्र भाषा नहीं है बल्कि पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, फिजी, मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद तथा सुरीनाम जैसे देशों की सम्पर्क भाषा भी है। वह भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के बीच खाड़ी देशों, मध्य एशियाई देशों, रूस, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मैक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों में रागात्मक जुड़ाव तथा विचार-विनिमय का सबल माध्यम है।

यदि निकट भविष्य में बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था निर्मित होती है और संयुक्त राष्ट्र संघ का लोकतांत्रिक ढंग से विस्तार करते हुए भारत को स्थायी प्रतिनिधित्व मिलता है तो वह यथाशीघ्र इस शीर्ष विश्व संस्था की भाषा बन जाएगी। यदि ऐसा नहीं भी होता है तो भी वह बहुत शीघ्र वहाँ पहुँचेगी। वर्तमान समय भारत और हिंदी के तीव्र एवं सर्वोन्मुखी विकास का द्योतन कर रहा है और हम सब से यह अपेक्षा कर रहे हैं कि हम जहाँ भी हैं, जिस क्षेत्र में भी कार्यरत हैं वहाँ ईमानदारी से हिंदी और देश के विकास में हाथ बँटाएँ। सारांश यह कि हिंदी विश्व भाषा बनने की दिशा में उत्तरोत्तर अग्रसर है।

गुण और परिमाण में समृद्ध भाषा

आज स्थिति यह है कि गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से हिंदी का काव्य साहित्य अपने वैविध्य एवं बहुस्तरीयता में संपूर्ण विश्व में संस्कृत काव्य को छोड़ कर सर्वोपरि है। 'पद्मावत', 'रामचरित मानस' तथा 'कामायनी' जैसे महाकाव्य विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है। वर्तमान समय में हिंदी का कथा साहित्य भी फ्रेंच, रूसी तथा अंग्रेजी के लगभग समकक्ष है। हाँ, इतना जरूर है कि जयशंकर प्रसाद को छोड़ कर हिंदी के पास विश्वस्तरीय नाटककार नहीं हैं। इसकी क्षतिपूर्ति हिंदी सिनेमा द्वारा भली-भाँति होती है। वह देश की सभ्यता, संस्कृति तथा बदलते संदर्भों एवं अभिरुचियों की अभिव्यक्ति का बड़ा ही सफल माध्यम रहा है। आज हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में जितने रचनाकार सृजन कर रहे हैं उतने बहुत सारी भाषाओं के बोलने वाले भी नहीं हैं। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही दो सौ से अधिक हिंदी साहित्यकार सक्रिय हैं जिनकी पुस्तकें छप चुकी हैं। यदि अमेरिका से 'विश्व', हिंदी जगत तथा श्रेष्ठतम वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' हिंदी की दीपशिखा को जलाए हुए हैं तो मॉरीशस से विश्व हिंदी समाचार, सौरभ, वसंत जैसी पत्रिकाएँ हिंदी के सार्वभौम विस्तार को प्रामाणिकता प्रदान कर रही हैं। संयुक्त अरब इमारात से वेब पर प्रकाशित होने वाले हिंदी पत्रिकाएँ अभिव्यक्ति और अनुभूति पिछले ग्यारह से भी अधिक वर्षों से लोकमानस को तृप्त कर रही हैं और दिन पर दिन इनके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

आज जरूरत इस बात की है कि हम विधि, विज्ञान, वाणिज्य तथा नवीनतम प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पाठ्यसामग्री उपलब्ध कराने में तेजी लाएँ। इसके लिए समवेत प्रयास की जरूरत है। यह तभी संभव है जब लोग अपने दायित्वबोध को गहराइयों तक महसूस करें और सुदृढ़ इच्छाशक्ति के साथ संकल्पित हों। आज समय की माँग है कि हम सब मिलकर हिंदी के विकास की यात्रा में शामिल हों ताकि तमाम निकषों एवं प्रतिमानों पर कसे जाने के लिये हिंदी को सही मायने में विश्व भाषा की गरिमा प्रदान कर सकें।

2

हिन्दी का विकासशील स्वरूप

विकासशीलता भाषा का प्रकृत गुण है, उसकी जीवंतता का लक्षण है। जीवन के नानाविष व्यापारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत होने वाली वह प्रत्येक भाषा जो अपना संसर्ग दूसरी भाषाओं से बनाए रखती है और ज्ञान के नित नूतन संदर्भों से जुड़ती रहती है, अपनी जीवंतता बनाए रखती है और विकसित होती रहती है। दूसरे शब्दों में, व्यवहारधर्मिता और गतिमयता भाषा की विकासशीलता को सूचित करने वाली दो प्रमुख विशेषताएं हैं।

पदार्थ अथवा विकास की दो गतियां अथवा दिशाएं हैं–

प्रौढ़ अथवा शसक्त होते जाना और प्रकृति द्वारा निर्धारित ऊँचाई तक बढ़ना। चूंकि मनुष्य बुद्धि सम्पन्न चेतन प्राणी है, उसकी प्रौढ़ता और विकास का पता उसके बुद्धि कौशल, विवेक, चितन, आचार व्यवहार और उसकी सभ्यता से लगता है और दूसरी ओर उसके अंगों की माप से उसके शारीरिक विकास का निश्चय होता है। दोनों का समुचित विकास ही सच्चा व्यक्तित्त्व निर्माता है।

भाषा का विकास भी इसी प्रकार की दो दिशाओं में होता है। एक ओर वह प्रौढ़ होती चलती है और दूसरी ओर उसका प्रसार होता जाता है। पहली स्थिति उसकी अर्थगर्भिता की सूचक है और दूसरी उसकी व्यापक स्वीकृति की। पहली से यदि उसके अंतरंग विकास का द्योतन होता है तो दूसरी से बहिरंग का। दोनों के सम्मिलन से भाषा समृद्ध और विशेष प्रभावशालिनी बनती है।

हिन्दी के विकासशील होने का अर्थ भी यही है कि वह एक ओर अपने अंतरंग का विकास करती चले और दूसरी ओर व्यापक स्वीकृति पाती जाए। यों सामान्यत: यह आशा किसी भी भाषा से की जानी चाहिए, किंतु हिन्दी पर इसका

विशेष दायित्व इसलिए है कि भारतीय संविधान के अनुसार उसे संघ की राजभाषा और विभिन्न प्रदेशों के बीच सम्पर्क भाषा की भूमिका भी निभानी है। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठे कि हिन्दी किन दिशाओं में और कितनी विकसित है या कि उससे विकास के लिए क्या अपेक्षाएं हो सकती हैं। हिन्दी इन अपेक्षाओं को कहां तक पूरा कर पा रही है, या उसके लिए कौन से साधक या बाधक तत्त्व हैं और उनसे कैसे निपटा जाए।

भाषा के विकास की जिन दो स्थितियों की ऊपर चर्चा की गई है, उन्हें हम क्रमशः गुणात्मक विकास तथा संख्यात्मक विकास भी कह सकते हैं। निसंदेह संख्यात्मक विकास भी किसी भाषा के इतिहास में, उसके अधिकार का निश्चायक होता है, किंतु उसकी स्थिति एक ऐसे उपकारक तत्त्व की सी है जिसकी सत्ता किसी दूसरे तत्त्व की तुलना में गौण महत्त्व की होती है। भाषा के संदर्भ में गुणात्मक ही प्रधान रूप से महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना कोई भाषा अधिकारिक प्रयोक्ताओं को सहयोग प्राप्त नहीं कर सकती। हिन्दी के पक्ष में संख्यात्मकता का बड़ा बल रहा है, और आज भी वह है, किंतु न तो सदैव उसी को एकमात्र आधार मानकर उस पर निर्भर रहा जा सकता है और न इसे भुलाया जा सकता है कि उसके संख्यात्मक विकास में पहले भी उसका गुणात्मक विकास ही कारण था। आज की स्थिति में उस दिशा में उसका विकास और भी अधिक वांछित है।

- गुणात्क विकास की दो विशेषताएं हो सकती हैं,
- ललित साहित्य के रूप में उसकी प्रौढ़ता का विकास और
- ज्ञानात्मक साहित्य की रचना और उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास।

आज जिस संदर्भ में हिन्दी का विचार किया जा रहा है, उसमें ललित साहित्य के रूप में उसकी प्रौढ़ता का दर्शन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह बात इस संदर्भ में बहुत प्रासंगिक नहीं है कि हिन्दी राष्ट्र की इस या उस भाषा की तुलना में कम सशक्त और प्रौढ़ है। राष्ट्र के सामने जो चुनौती है वह ललित साहित्य को लेकर नहीं है, व्यावहारिक धरातल पर भाषिक संपर्क और उसके माध्यम से पारस्परिक सहयोग की भूमि तैयार करने की है।

ललित साहित्य हो अथवा ज्ञानात्मक, दोनों ही संदर्भों में, किसी भाषा को दो स्तरों पर विकसित होना ओर अपनी क्षमता का परिचय देना पड़ता है। एक के अंतर्गत साहित्य की नाना प्रकार की विधाएं रखी जा सकती हैं और देखा जा

सकता है कि उसमें अधिकाधिक कितनी विधाओं में रचना हो रही है, दूसरा है विशेष विधाओं के लिए उपयुक्त भाषा और शब्दावली का विधान। हिन्दी के विकास के प्रसंग में भी इन दोनों बातों का समान महत्त्व है।

मनुष्य की बुद्धि ने जीवन और जगत के रहस्य को जानने और और उसकी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करने का सदियों पहले से जो उपक्रम किया है उसके परिणाम स्वरूप अनेकविष ज्ञान शाखाओं के द्वार उन्मुक्त हुए हैं। दर्शन, गणित, ज्योतिष आयुर्वेद, कला शिल्प तथा खगोल विद्या आदि अनेक विद्या शाखाओं तक मनुष्य की पहुँच बहुत पहले ही हो चुकी थी। कालापसरण के साथ ज्यों-ज्यों मनुष्य के रागात्मक संबंध बनते बिगड़ते गये उसके जीवन की संकुलता बढ़ती गई और प्रकृति तथा मानव जीवन को लेकर स्वयं मनुष्य नए रहस्यों में उलझता और नए आविष्कार करता चला गया। यंत्र युग ने मनुष्य की अनेक पुरानी अवधारणाओं को बदला और उनकी जगह नई विधाओं तथा नई तकनीक ने ले ली। परिणामत: न केवल अनेक नई शाखाओं का विकास हुआ, या किसी एक विद्याशाखा के अन्तर्गत गृहीत विचारों में से कुछ स्वतुत्र विद्या शाखा के रूप में अधिकाधिक बढ़ता गया। तात्पर्य यह है कि आज ज्ञान के अनंत विस्तार को वाणी देने का काम सरल नहीं रह गया है। आज की विकासशील भाषा को इन सबको समेटते चलना है। पूछा जा सकता है कि क्या हिन्दी ऐसा कर पाई है?

आश्चर्यजनक नहीं होगा, यदि इस प्रश्न का उत्तर हिन्दी के पक्ष से नकारात्मक रूप में दिया जाये। जिस भाषा को सदियों विदेशी भाषाओं के शासन ने दबोच कर रखा और शिक्षा तथा कार्य व्यवहार में माध्यम के रूप में उभरने नहीं दिया है, उससे यह आशा की ही कैसे जा सकती है? यांत्रिक युग का यह एक बड़ा दूषण है कि मनुष्य पूंजी और व्यवसायिकता की दृष्टि से अपने कार्य कलाप को नियमित या नियंत्रित करता है। अतएव आधुनिक युग में जब यांत्रिकता के कारण यह संभव था कि हिन्दी का विकास हो तब भी शिक्षा तथा कार्य व्यवहार में माध्यम के रूप में उस स्थान न मिलने के कारण व्यवसायिक जगत में उसकी अर्थोपयोगिता सिद्ध नहीं हो पाई और इसलिए वांछित दिशाओं में बढ़ने का अवसर नहीं मिला। स्वतंत्रता पाने के बाद कुल 35 वर्षों के काल में जिन विषयों से वह शिक्षण माध्यम से जुड़ी उनमें उसका पर्याप्त विकस हुआ है। 'पर्याप्त' से तात्पर्य यह है कि स्नातक कक्षाओं तक विषय को समझने समझाने के लिए समाजशास्त्रीय और कुछ वैज्ञानिक विषयों में भी पुस्तकें अब उपलब्ध हैं और हिन्दी माध्यम से कला, वाणिज्य और विज्ञान में शिक्षा दी जा

सकती है। दी जा रही है, यह कहना अधिक ठीक होगा। यह शिक्षा मात्र हिन्दी प्रवेश तक सीमित हो ऐसा नहीं है। आंध्र-प्रदेश में उसकी राजधानी हैदराबाद नगर में तीनों संकायों का हिन्दी माध्यम महाविद्यालय वर्षों से सफलतापूर्वक चल रहा है। फिर भी यह स्वीकार कर लेने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि इन विषयों में भी हिन्दी अभी पूर्णतय: स्वाबलंबिनी नहीं बन सकी है। साथ ही तकनीकि और विधि या आयुर्विज्ञान जैसे क्षेत्र प्राय: अछूते पड़े हैं।

इस स्थिति के प्रति असंतोष व्यक्त करते समय यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि एक तो जिन विषयों में अंग्रेजी तथा दूसरी विदेशी भाषाओं में विपुल साहित्य प्रकाशित हो चुका है, जिनमें नित नूतन आविष्कार और परिष्करण हो रहा है, जिनमें प्रचार-प्रसार के लिए पत्र-पत्रिकाओं की अच्छी सुविधा उपलब्ध है और जिन विषयों की अभिव्यक्ति की एक बंधी सधी सिद्ध भाषा न केवल बन चुकी है, बल्कि उन विषयों में शिक्षित प्रयोक्ता जिनका अभ्यस्त बन चुका है और विदेशी भाषा का अभ्यास करते-करते जिसे अपनी भाषा पर अधिकार नहीं रह गया है और इसलिए यह अनजानी और अटपटी लगने लगी है, उनके विषय में यह आशा करना कि तीस पैंतीस वर्ष के अन्तराल में किसी भाषा में उनकी नींव भी पड़ जायेगी और स्रोत भाषा जैसा समृद्ध साहित्य भी तैयार हो जायेगा, दुराशा मात्र ही होगा। अनुवाद का ही सहारा लिया जाए तो भी वैसा होना संभव नहीं है। भारत जैसे विशाल देश में जहां बहुसंख्यक प्रादेशिक भाषाओं को भी विकसित होना है और जिसे तकनीकी, औद्योगिक, और वैज्ञानिक विकास में यंत्र-युग की एक नई शक्ति बनने का चाव है। जहाँ दरिद्रता और अशिक्षता के दबाव में एक तो यों ही मनुष्य अनुपयोग या अपव्यय हो रहा हो और दूसरे अन्य सारे विकास की तुलना में शिक्षा का विकास एक गौण विषय बन गया हो, इस प्रकार के विकास में त्वरित सिद्धि की संभावना कम ही है। ऐसी स्थिति में संपूर्ण साहित्य को अपने में समेट कर चलने की अपेक्षा उचित यह होगा कि लक्ष्य भाषा की ऐसी आधारभूत सामग्री तैयार की जाए जिससे उसमें वांछित विषय की अभिव्यक्ति सुकर हो सके और आगे के लिए मौलिक चिंतन और लेखन की नींव पड़ सके। तैयारी इस बात की करनी है कि अब से अपनी बात अपने देश की भाषा में कहनी है इस बात की नहीं कि सबसे नाता तोड़ कर अपने आप में सिमट और सिकुड़ जाना है। अपने से अधिक सम्पन्न, समृद्ध और विकसित देशों की होड़ में खड़े होने के लिए न केवल यंत्रों की उपलब्धि काफी है, बल्कि उस साहित्य की जानकारी भी जरूरी है जिसमें उनकी उपयोगिता और

संभावनाएँ भी वर्णित हैं। स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में स्रोत भाषा से जी नहीं चुराया जा सकता। आज का युग अंतराबलंबन का है और विकसित देशों में भी अपनी समृद्ध भाषा में लिखे गये साहित्य के अतिरिक्त इतर देशीय भाषाओं में लिखित साहित्य से लाभ उठाया जाता है। फिर यह समझना कि हिन्दी में अपना कार्यव्यवहार आरंभ कर देने पर उसे छोड़ कर कोई दूसरी भाषा सामने रह ही नहीं जायेगी बड़ी भारी भूल है। हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने पर भी उससे उससे अधिक समृद्ध और विकसित भाषा या भाषाओं का उपयोग बना रहेगा और विचारों के आदान-प्रदान के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसकी आवश्यकता भी बनी रह सकती है, किंतु उस स्थिति में आज की तरह हमारा सारा बल उस विदेशी भाषा को उसकी सारी सूक्ष्मताओं में पकड़ने और उसका हर दृष्टि से अधिकारी बनने पर नहीं होगा, बल्कि परकीय और दूसरी भाषा की तरह उसे जानने और उससे सार ग्रहण कर लेने पर होगा। हिन्दी को इसी धर्म में विकासशील बने रहना है, सर्वथा किसी द्वार को चंद करके अपना अधिराज कायम कर लेना उसका अभीष्ट नहीं है, क्योंकि वैसा करने से स्वयं उसके विकास को ठेस पहुँचती है।

विधागत विशेष ज्ञान के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ हिन्दी को अंतर्देशीय व्यवहार की भाषा के रूप में भी पनपना और विकसित होना है। यहां भी उसका संबंध विभिन्न विषयों से रहेगा, किन्तु विधा या विषय की गहन सूक्ष्म विवेचवना को अभिव्यक्ति देने की अपेक्षा यहां पारस्परिक व्यवहार के अपने तकाजे होते हैं। भाषा के संदर्भ में ये तकाजे उसकी रूप रचना से संबंध रखते हैं। रूप रचना से हमारा तात्पर्य भाषा की शब्द सम्पत्ति, परिभाषिक शब्दावली का गठन, अभिव्यक्ति की सरलता या बोधगम्यता, पथ्यपरकता, लाघव और विषय सम्बद्धता से है। व्यावहारिक धरातल पर विकसित होने वाली किसी भी भाषा को इन या ऐसे ही अनेक तत्त्वों को अपने में समाहित करना पड़ता है। ध्यान रखना चाहिए कि व्यावहारिकता का अर्थ भाषा में कोई अंतर्विरोध है। इस प्रकार की स्वतंत्रता बोली रूप की सीमा से आगे नहीं बढ़ती। अपएव व्यवहार दृष्टि से किसी भाषा की तैयारी का अर्थ है उसके मानक रूप का सर्व सुलभ और सहज बोधगम्य रूप में तैयार होना। इसी संदर्भ में हिन्दी की स्थिति भी विचारणीय है।

व्यवहार्य भाषा के रूप में हिन्दी की सिद्धता का सबसे पहला आधार उसकी शब्दावली और शब्द संपति ही हो सकता है। यहां हमारा सामना 4 मुख्य प्रश्नों से होता है।

क्या हिन्दी के पास सब प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए शब्दावली है? क्या वह शब्दावली इतनी व्यापक है कि जिन भाषा-भाषियों के बीच उसे महत्वपूर्ण होना है उन्हें भी उसमें कुछ परिचित सा लगे और यथाप्रसंग अपनी भाषा के शब्दों को उसमें प्रयुक्त देखकर वे न केवल इस बात का आत्मतोषलाभ कर सकें कि उनका सहयोग भी उस भाषा को प्राप्त है, बल्कि यह भी अनुभव करें कि उसका प्रयोग उनके लिए एकदम सहज न भी हो तो भी वह कठिन नहीं है।

जहां तक सब प्रकार की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, मोटे तौर पर किसी भी भाषा से यह अपेक्षा की जा सकती है कि उसमें सूक्ष्म, जटिल और गहन भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने और उन्हें सुबोध बनाने के लिए अनुकूल शब्दावली हो, साथ ही उसमें उक्त लाघव भी हो। यों तो विद्वानों की राय में सभी भाषाएं विकसित होती रहती हैं, आवश्यकता अनुसार उनमें नए शब्दों का आदान या उनकी रचना में रूपांतरण होता रहता है। किंतु विकासशील भाषाओं की यह समस्या कुछ अधिक गम्भीर होती है। जिस व्यवहार से होकर वे गुजरी हीं नहीं उसकी भरपूर अभिव्यक्ति की शक्ति भी उनमें नहीं हो सकती। फिर यदि उन भाषाओं को केवल शाब्दिक अनुवाद की भाषा का रूप दे दिया जाये तो वे न केवल अप्रकृत हो उठेंगीं, अपितु उनकी सहज संभावनाएं भी कुंठित हो जांएगी। आरंभिक संक्रमण कालीन स्थिति में उसका उपयोग इसी शाब्दिक जरूरी नहीं है। हिन्दी का यह दुर्भाग्य रहा है कि प्रशासनिक व्यवहार में उसका उपयोग इसी शाब्दिक अनुवाद के लिए किया गया है अपने प्रकृत स्वभाव को छोड़कर अंग्रेजी वाक्य विन्यास और शब्दावली के पीछे मक्खीमार रूप में भटकने के कारण उसका एक ऐसा कृत्रिम रूप उभरा है, जो सर्वजनबोध्य होना तो दूर स्वयं हिन्दी भाषियों के लिए भी दुर्बोध और कष्ट साध्य जान पड़ता है। उससे एक प्रकार की निरर्थक जटिलता उत्पन्न हुई है। यह निश्चय ही उसके विकासशीलता के लिए धातक है। साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी ने सूक्ष्म, जटिल और गहन भावों की अभिव्यक्ति की पर्याप्त क्षमता अर्जित की है और उसका उपयोग व्यवहार भाषा के धरातल पर भी किया जा सकता है, किंतु यदि नए चिंतन, नए आविष्कार और नए अभिव्यक्ति कौशल के कारण वह कहीं-कहीं अंग्रेजी की समकक्षता में नहीं खड़ी हो पाती, तो उसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी संभावनाओं को भी अनदेखा कर दिया जाये। उसकी प्रकृति की रक्षा करते हुए उसके विकास और संवर्द्धन के दूसरे उपायों का सहारा लेना चाहिए।

दूसरे प्रश्न का उत्तर इन्हीं दो उपायों में समाहित है। भाषा भावों विचारों की वाहिका होती है। किंतु कोई भी भाषा संपूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं होती। उसकी क्षमता ग्रहण से बढ़ती है। उसी से उसमें व्यापकता आती है। हिन्दी को अपनी क्षमता बढ़ाने और उक्त प्रकार की अभिव्यक्ति का लक्ष्य भेद करने के लिए इसी ग्रहण उपाय से काम लेना होगा। भाषा का व्यापार विचित्र प्रकार का होता है। वह दूसरों की ऋणी होकर ही धनी होती है और उदार कहलाती है। हिन्दी को जिन भाषाओं के सहचर्य में बढ़ना और बड़ा होना है, उनसे शब्द ग्रहण करना उसके हित में है। इन हितकारियों में सबसे ऊँचा स्थान अपने देश की सहचरी भाषाओं का होना चाहिए, उसके बाद अंग्रेजी का। तात्पर्य यह है कि जहां तक किसी अभिव्यक्ति के लिए अपने देश की भाषा में शब्द मिल सकते हैं, उन्हें स्वीकार करते चलना चाहिए। कारण यह कि उससे परस्पर बंधुता बढ़ती है, पारस्परिक संवाद की भूमि तैयार होती है और हिन्दी में उन शब्दों की नई रचना की संभावनाएं बनी रहती है। लेकिन अंग्रेजी से शब्द ग्रहण करने और अपने देश की भाषाओं से शब्द ग्रहण करने में अभी इस बात का अंतर बना रहेगा कि चूंकि अंग्रेजी इस देश में भी शिक्षितों के बीच सार्वजनिक भाषा बनाकर रही है और अपने देश की भाषाओं के बीच इस प्रकार का संपर्क बहुत ही क्षीण रहा है, अतएव अंग्रेजी शब्दों को जितनी शीघ्रता से व्यापक स्वीकृति मिल सकती है उतनी शीघ्रता से वैसा एकमत्य प्रादेशिक भाषाओं के संबंध में, कम से कम आरंभ में, संभव न होगा। दूसरी अंग्रेजी शब्द सीधे हिन्दी में किए जा सकते हैं, किंतु भारतीय भाषाओं के बीच हुई आपसी दूरी के कारण यह काम सीधे हिन्दी भाषियों द्वारा नहीं किया जा सकता है। इसके लिए इन दूसरी भाषाओं को अपनी ओर से प्रदाता की भूमिका अपनानी पड़ेगी और यह तभी संभव है जब हिन्दीतर भाषा-भाषियों द्वारा हिन्दी का व्यवहार हो। वे ही आवश्यकता होने पर अपनी भाषा के शब्दों को हिन्दी की बुनावट में ढाल सकेंगे। यह काम और तीव्र गति से संभव हुआ होता यदि हिन्दी प्रदेशों में त्रिभाषा सूत्र को अपनाकर इतर भाषाओं को आत्मसात कर लिया होता।

फिर भी यह ध्यान रखना होगा कि शब्द ग्रहण अनियंत्रित गति से नहीं होता। यह नहीं है कि मनमाने ढंग से चाहे जिस शब्द को प्रयुक्त कर दिया जाए। जिन शब्दों में जितनी ही अधिक अर्थव्यंजकता, संक्षिप्तता, उच्चारण सुकरता और सुखद नादमयता होगी वे उतने ही अधिक शीघ्रता से ग्रहण किये जा सकते हैं। किंतु एक तो इस प्रकार का ग्रहण तब तक नहीं होता जब तक कि मूल भाषा

में योग्य शब्द मिलते रहते हैं, दूसरे जब कभी ग्रहण के प्रति खिन्नता बरती जाती है तो वह ऐसे स्थलों पर जहां दूसरी भाषा केवल व्यापक बनने के नाम पर किसी दूसरी भाषा के इतने अधिक शब्द नहीं ले सकती कि वह उनसे शक्ति पाते-पाते स्वयं दुर्बल और अक्षम प्रमाणित होन लगे। हमारे अंग्रेजी जब-जब बात बात में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करते हैं और क्रिया, सर्वनाम या अव्यय को छोड़कर जब पूरा वाक्य अंग्रेजी के शब्दों से लद जाता है तो वह हिन्दी का गौरव नहीं बढ़ाता न उसे विशेष अर्थमय बनाता है, बल्कि इसके विपरीत या तो उसकी या उसके प्रयोक्ता की अक्षमता की प्रमाणित करता है और दोनों को उपहास का विषय बनाता है। अतएव आदान की भी एक सीमा है और मूल भषाओं की सम्भावनाओं की खत्म करके वैसा नहीं किया जा सकता। आदान प्रवाह आपतित शब्दों का ही होता है, और वह भी उसकी व्यंजकता आदि को उपयोगी पाकर ही। हिन्दी में न तो ऐसे शब्दों का ग्रहण अनुचित होगा और न ही ऐसे शब्दों का होगा जो भारतीय अन्यान्य भाषाओं में एक ही अर्थ में प्रचलित हैं और थोड़े बहुत रूप भेद के रहते भी सबोधता की दृष्टि से उपयोगी हैं।

किसी भाषा की शक्ति और सम्पन्नता केवल इस बात पर ही निर्भर नहीं होती कि वह अपने शब्दकोष में कितने शब्द संभाले हुए है, बल्कि यह भी उसके लिए अनिवार्य है कि उसमें नवीन शब्दों की रचना की शक्ति हो। यह रचना शक्ति जहां प्रकृति प्रत्यय के योग से आती हैं, वहीं तत्सम, देशज और इतर शब्दों के तद्भवीकरण और रूपांतरीकरण से भी सिद्ध होती है। अनेक बार भाषा देशज शब्दों को ही उनके मूल रूप में अथवा उन्हें व्याकरण सिद्ध करके ऐसा रूप दे देती है कि वे उन्नत होकर तुल्यबल वाले और सम्मानीय बन जाते हैं। विकासशील भाषा के लिए यह गुण अमृत तुल्य है। हिन्दी में भी यह सद्गुण है, पर उसका झुकाव तत्समता की ओर है। मध्यकालीन कवियों में अरबी फारसी के कितने ही शब्दों को अपनी भाषा में न केवल ज्यों का त्यों खपा लिया था, बल्कि उनको अपने रूप में भी ढाल लिया था। वह क्रम चलते रहना चाहिए था, किंतु तत्समता के साथ-साथ मूल उच्चारण की सुरक्षा का आधुनिक काल में ऐसा प्रवाह आया कि क्रम भंग हो गया। हम समझते हैं कि हिन्दी को अपनी उस शक्ति का उपयोग करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। केवल तत्समीकरण उपयोगी न होगा।

हिन्दी में इस समय दोनों प्रवृत्तियां चल रहीं है। एक पक्ष है, जो तत्सम संस्कृत शब्दावली का प्रयोग करता है और दूसरा पक्ष समाजवादी या जनवादी है,

जो उर्दू शब्दों के मिश्रण से उभरती भाषा का अपने लेखन में प्रयोग कर रहा है। हिन्दी आलोचना में तो यह स्थिति है, किंतु अन्य विषयों में अभी दूसरी शैली का प्रयोग नहीं हो रहा है। वहां अभी चूंकि हिन्दी का प्रायः अनुवाद भाषा के रूप में प्रयोग हो रहा है और अर्थशास्त्र आदि के लेखक मूलतः या तो अभी भी अंग्रेजी में सोंचने के अभ्यस्थ हैं या अपने लेखन में आधारा ग्रंथों के रूप में उन्हें अंग्रेजी ग्रंथों से ही सहारा मिलता है, और हमारी पारिभाषिक शब्दावली भी संस्कृतनिष्ठ है, वे संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग कर रहे हैं। भविष्य में यदि हिन्दी का ऐसा रूप निखर सके जो संस्कृतनिष्ठ तो हो पर जिसमें हिन्दी की अपनी सरल अभिव्यक्ति को दबाकर कठिन संस्कृत पदावली का या इसी तरह अरबी फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग न हो और आवश्यकता होने पर इतर भारतीय भाषाओं के शब्दों का मेल हो, तो हितकर होगा।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दाबली का बहुत कुछ निर्माण हो चुका है। फिर भी भाषा के विचार के साथ नई-नई शब्दावली भी बनती रहती हैं, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी इस क्षेत्र में किसी अन्तिम सीमा पर पहुँच गई है। किंतु यह हिन्दी के ही क्यों, संसार की किसी भी भाषा के विषय में नहीं कहा जा सकता। एक बार पारिभाषिक शब्दावली की नींव पड़ जाने पर उस क्रम को आगे बढ़ाते जाना सहज और सरल हो जाता है, यदि विचार और अभिव्यक्ति भी उसी भाषा में हो। चूंकि इस प्रकार की शब्दावली की रचना में संक्षिप्तता को एक विशेष सद्‌गुण माना जाता है अतएव हिन्दी के लिए यही सबसे सुगम और सहज मार्ग माना गया कि उसकी शब्दावली को संस्कृत का आधार दिया जाये ताकि उसकी सामसिकता, संधि और इतर विधियों का लाभ मिले। साथ ही यह भी माना गया है कि संस्कृत पर आधारित शब्दावली को अन्यान्य भाषा-भाषी भी ग्रहण कर सकेंगें और वह शब्दावली सबके लिए सहज माध्यम हो सकेगी। सहज संपर्क के लिए देश में एक ही पारिभाषिक शब्दावली का होना आवश्यक है। किंतु इस विषय में भी मतभेद और आपत्तियों की कमी नहीं है। भिन्न प्रदेशों में संस्कृत के ही शब्दों से एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए भिन्न शब्दों का निर्माण, प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों अपनाने की आकांक्षा, नवनिर्मित शब्दों का अनभ्यस्त कानों को अटपटा लगना, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बोध और संप्रेषण के लिए उपयोगिता और अपनी-अपनी भाषा में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के द्वारा उसकी समृद्धि की चिंता ने हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली की स्वीकृति के विपक्ष में अनेक समस्याएं उत्पन्न की हैं, जिससे उसका विकास प्रभावित

हुआ है। यहां तक कि तब तो रेडियो की तुलना में आकाशवाणी शब्द भी खीझ और उपेक्षा का विषय हो गया है।

हम यहां भाषा की राजनीति में न जाकर केवल यह मानकर चलते हैं कि हिन्दी को अपने ही हित के लिए दृढ़ता से उस नीति का अनुसरण करना है जिससे वह समृद्ध और सशक्त होती जाये और उसकी सर्वग्राह्यता बनी रहे। इसमें संदेह नहीं है कि पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के विषय में संस्कृत का आधार ही लेना होगा, किंतु उसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाए कि मनुष्य को अतीत की स्मृति सताती तो बहुत है और वह उसे वर्तमान की अपेक्षा सुखद भी मान लिया करता है फिर भी कोई वर्तमान को छोड़कर वही जीवन नहीं जीना चाहता। अतीत तो उसे केवल शक्ति और संतोष देता है, उसके संस्कार बड़ी सूक्ष्मता से उसके वर्तमान में तार-तार बिंधे रहते हैं, लेकिन नए संदर्भ में अपनी उपयोगिता सिद्ध करते हुए। भाषा का व्यवहार भी कमोवेश वैसा ही होता है। वर्तमान में जो हमारे स्वभाव बन गया है और जिस भाषा का प्रयोग शिक्षितों के बीच होता आ रहा है, उसे सहसा त्यागकर संस्कृत की ओर लौटने की कल्पना सुखद तो हो सकती है, लेकिन उतनी ही दूर तक जहां तक वह हमारे वर्तमान और अभ्यास के मेल में रहे। अतएव हम समझते हैं कि पारिभाषिक शब्दों में सबसे पहले सम्मानीय और स्वीकार्य तो वे हैं, जो संस्कृत और अरबी फारसी से आकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी खप गये हैं और जिनकी अलग से पहचान कराने की किसी को आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे वे हैं, जो आधुनिक ज्ञान की सही अभिव्यक्ति के लिए हमारे यहां दर्शन, धर्म नीति और साहित्य आदि से अभी भी लिए जा सकते हैं और अपना उच्चारण सौंकर्य के कारण सहज ग्राह्य होने की सम्भावना रखते हैं। तीसरे वे हैं, जो वर्तमान में अंग्रेजी के माध्यम से आये हैं और जिनको हम अपनी भाषा के उच्चारण में ढाल कर अपने लिए और वैसे ही दूसरों के लिए भी, सह्य और अर्थवान बनाए रह सकते हैं। चौथे वे हैं जिन्हें भिन्न पर्याय के रूप में भारतीय भाषाओं में प्रचलित देखते हैं और जिनके बीच से अधिक प्रचलन और अधिक स्वीकृति या सहमति के आधार पर चयन किया जा सकता है। पांचवें जो कई शब्दों के योग के कारण उच्चारण में उत्पन्न असुविधा या विलम्ब से बचने के लिए संकेत शब्दावली के रूप में अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में समान रूप से मान्य हैं। और छठे तथा अंतिम वे हैं, जो न तो किसी रूप में ढाले जा सकते हैं, न जिनके लिए कोई सरल और अर्थवान पर्याय हम दे सकते हैं। उन्हें ज्यों का त्यों लेना ही पड़ेगा और उस

दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जिस दिन वे घिसपिट कर या तो हमारे अनुकूल हो जाएंगे या उस ज्ञान शाखा में बढ़ते बढ़ते किसी दिन इस धरती का कोई नया शब्द सहसा जन्म ले लेगा।

भाषा की रूप रचना का संबंध पारिभाषिक अथवा अन्य प्रकार की शब्दावली के अतिरिक्त उसके व्याकरण, उसके लाघव और उसकी जटिलता या सरलता से भी है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है सूक्ष्म और सही अर्थाभिव्यक्ति। व्याकरण भाषा का नियामक है और उसे परिनिष्ठित बनाता है। भाषा में वह एक रूपता लाता है और उसे निरंकुशता से बचाता है। एकरूपता सरलता की वाहिका भी होती है। और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की सहायिका भी। अन्यथा अनेक शब्द रूपों और संबंध तत्त्वों के एक ही बात के लिए प्रचलन से सुनिश्चित और अटपटापन बना रहता है और अर्थ की दुविधा बनी रहती है। अन्य भाषा-भाषियों को किसी भी दूसरी भाषा के सीखने में व्याकरण की भिन्नता के कारण सामान्यतः कुछ कठिनाई का अनुभव होता ही है, पर उससे कोई भाषा इस तरह प्रभावित नहीं होती कि अपने मूल रूप को परिवर्तित कर दे। परिवर्तन आता है कुछ लोगों के विशिष्ट प्रयोगों के प्रचलन से। उन प्रयोंगों की भी अर्थ की दृष्टि से कोई न कोई सार्थकता होनी चाहिए अतः हिन्दी के व्याकरण को भी बदला जा सकता है तो इस प्रकार के सार्थक और विशिष्ट प्रयोगों से ही भाषा को सीखने में व्याकरण को बाधक मानकर उसे सहज गति से लेना चाहिए और उस के माध्यम से हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए। हिन्दी के विकास के लिए उसमें अनावश्यक जोड़-तोड़ करने से भाषा की एकरूपता सिद्ध होगी न उस जोड़-तोड़ की कोई सीमा रहेगी। व्याकरण की सीमा में रहते हुए भाषा के संबंध तत्त्वों के ग्रहण त्याग, शब्द संगठन, सूक्ष्म भेद, पुनुरुक्ति अथवा विस्तार में से बचत और स्पष्ट किंतु पैने और एकदम लक्ष्यानुसारी हिन्दी के लेखन का प्रयत्न जितना उसके विकास में साधक हो सकता है, उतना दूसरा तत्त्व नहीं। हमारी समझ से विषय और रूप की उस सन्निधि की उपलब्धि में ही हिन्दी का विकास निहित है। यहां इस विषय में अधिक विस्तार के लिए अवकाश नहीं है, अन्यथा वास्तविकता यह है कि उक्त बातों को कुछ और अधिक स्पष्टता से प्रस्तुत करना उचित होता।

हिन्दी का सरलीकरण

भाषा विज्ञान किसी भाषा को सरल या कठिन नहीं मानता, भाषा को केवल भाषा मानता है। सरलता कठिनता की बात भाषेत्तर तत्त्व करते हैं। 'जाकी

रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन वैसी। के अनुसार हिन्दी की कठिनाईयाँ भी अपनी-अपनी भावना से प्रसूत हैं। इसलिए उनका कोई समाधान संभव नहीं है।

एक वर्ग संस्कृत निष्ठता के कारण हिन्दी को कठिन कहता है। इस वर्ग में उर्दूदाँ आते हैं। हिन्दी और उर्दू के व्याकरण में कोई अन्तर नहीं है। अतः इस वर्ग का असंतोष व्याकरण को लेकर नहीं हिन्दी के शब्द भंडार को लेकर हैं। इस वर्ग को देश कठिन मालूम होता है, मुल्क आसान, प्रजातंत्र कठिन, जमहूरियत आसान, जनता कठिन, अवाम आसान, उन्नति कठिन, तरक्की आसान, उत्सव कठिन, जलसा आसान। हिन्दी के शब्दों के बदले यदि अरबी फारसी के शब्द रख जाएँ तो इस वर्ग को हिन्दी से कोई शिकायत नहीं होगी।

हिन्दी को कठिन कहने वाला दूसरा वर्ग उनका है, जो अंग्रेजीदाँ है अर्थात् बाबू या साहब हैं। ये लोग अंग्रेजी शासन-तंत्र के अंग रहे अंग्रेजी पढ़ी ही इसलिए कि वह शासन की भाषा रही। इन्हें दफ्तर की भाषा की बनी बनाई लीक का अभ्यास हो गया है, इसलिए उसमें काम करने में इन्हें असुविधा नहीं होती। अभ्यस्त लीक से जरा भी इधर-उधर चलने में इन्हें असुविधा होने लगती है। हिन्दी शब्दों के प्रयोग में जो थोड़ा बहुत आयास अपेक्षित है, वह इन्हें कष्टकर प्रतीत होता है। अतएव ये हिन्दी का विरोध करते हैं। इन्हें प्रेसिडेंट, प्राइम मिनिस्टर, पार्लियामेंट, मिनिष्ट्री आफ एक्सटर्नल अफेएर्स, मिनिस्ट्री ऑफ अनफारमेशन एंड ब्राडकास्टिंग, मिनिस्ट्री आफ ट्रांसपोर्ट एंड कम्यूनिकेशन, एसेम्बली, कौंसिल, डिपार्टमेंट, सेक्रेटरी, डायरेक्टर, कमेटी, मीटिंग, सेशन, फाइल, आर्डर आदि शब्द इतने मंजे हैं कि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, संसद, विदेश मंत्रालय, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, परिवहन और संचार मंत्रालय, परिवहन, सचिव, निदेशक, समिति, बैठक, सत्र, संचिका, आदेश आदि शब्द अजनबी अर्थात् कठिन लगते हैं। अंग्रेजी को कायम रखने के लिए यही वर्ग सब से अधिक सचेष्ट है और चूँकि अधिकार इन्हीं के हाथों में है, इसलिए हिन्दी की प्रगति को रोकना इनके लिए आसान भी है।

इस वर्ग में वे अध्यापक भी हैं, जो अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा पाए हुए हैं और अंग्रेजी में पढ़ाते भी हैं। दर्शन, अर्थशास्त्री, मनोविज्ञान, भौतिकविज्ञान, जीवविज्ञान, आयुर्विज्ञान, अभियांत्रिका आदि विषयों की अपनी-अपनी पारिभाषिक शब्दावली है, जो वर्षों के सतत प्रयोग से इन्हें आत्मसात हो चुकी है। अब अंग्रेजी को छोड़ हिन्दी को अपनाने का अर्थ है उस समस्त शब्दावली का परित्याग और

नवीन शब्दावली पर अधिकार करने का प्रयास, जो स्पष्ट ही श्रमसाध्य है और श्रम से बचना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति होती है।

हिन्दी की कठिनाई का तीसरा आधार है उसका व्याकरण। हिन्दी को इस दृष्टि से कठिन कहने वाले वे लोग हैं, जो हिन्दीतर भाषा-भाषी है। इनके अनुसार हिन्दी की जटिलता में दो उल्लेख है एक तो 'ने' का प्रयोग और दूसरी लिंग व्यवस्था।

कुछ लोगों को लिपि के कारण भी हिन्दी कठिन प्रतीत होती है। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता को लेकर आज तक दो रायें नहीं हुई। संसार में आज जितनी भी लिपियाँ प्रचलित हैं, उनमें देवनागरी सर्वोत्तम मानी जाती है। स्वनिम और संकेत का अर्थात् ध्वनि और लेखन का निर्भात सहसबंध भी बहुतों को देवनागरी का दोष प्रतीत होता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इनमें एक भी वास्तविक कठिनाई नहीं है। अपने-अपने संस्कार, परम्परा और अभ्यास के आधार पर ये कल्पित या आरोपित हैं।

इन बातों की पृष्ठभूमि में सरलीकरण संबंधी कुछ प्रश्न उठते हैं–

1. सरलीकरण का अर्थ क्या है?
2. सरलीकरण किसके लिए?
3. सरलीकरण कौन करे?

हमने ऊपर देखा कि हिन्दी कोई एक कठिनाई नहीं है। कठिनाई एक न होने से सरलीकरण का मार्ग भी एक नहीं हो सकता। जिन्हें अरबी-फारसी के शब्द अभिमत हैं, उन्हें अंग्रेजी के शब्दों से संतोष नहीं होगा और जिन्हें अंग्रेजी शब्दों का अभ्यास है, उनकी कठिनाई अरबी-फारसी के शब्दों से नहीं मिटेगी, फिर भारत की सभी भाषाएँ, संस्कृति निष्ठ हैं क्योंकि संस्कृत यहाँ के साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला, इतिहास की भाषा रही है। इसलिए हिन्दी की संस्कृतनिष्ठता उसकी बोधगम्यता की अनिवार्य पक्ष है। इसका यह अर्थ नहीं कि अरबी फारसी या अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को भी हटा कर उनकी जगह अप्रचलित शब्दों का व्यवहार किया जाए किंतु मूलतः भाषा संस्कृतनिष्ठ ही रखनी होगी।

कठिनाई की चर्चा के प्रसंग में एक बात प्रायः भुला दी जाती है कि भाषा का रूप विषय के अनुसार सरल या कठिन हुआ करता है। जिस प्रकार तरल वस्तु का अपना कोई आकार नहीं होता, उसे जैसे पात्र में रखा जाता है वैसा ही उसका

आकार हो जाता है, उसी प्रकार भाषा का भी निश्चित रूप नहीं होता। दर्शन की भाषा वैसी नहीं होती जैसे अखबार की और न साहित्यालोचन की भाषा वह होती है, जो विज्ञापन की। लेखक की रुचि, प्रवृति, संस्कार, अध्ययन आदि से भी भाषा में रूपभेद हुआ करता है। प्रेमचंद और प्रसाद दोनों हिन्दी के लेखक हैं, पर गोदान और तितली की भाषा का अंतर किसी पाठक से छिपा नहीं है।

सरलता के आग्रही यह भी भूल जाते हैं कि सरलता किसके लिए? जिस तरह लेखकों का एक स्तर नहीं होता उसी तरह पाठकों का भी एक स्तर नहीं होता। तब किस स्तर के पाठक को ध्यान में रखकर सरलीकरण किया जाए? साक्षर से लेकर विद्वान तक पाठकों की श्रेणी में आते हैं। और भी भाषा सरल कर देने से ही विषय सरल हो जाएगा? अद्वैतवाद, विर्वतवाद, परिणामवाद, सपेक्षवाद, रसवाद आदि को चालू भाषा में इन्हें क्या लिखा भी जा सकता है? जब भी विचित्र विरोधाभास है कि सरलीकरण की अर्थात् भाषा का स्तर गिराने की तो माँग की जाती है, किंतु पाठक का स्तर उठाने की चिंता किसी को नहीं है। प्रत्येक अंग्रेजी भाषी हवाइटहेड का दर्शन और इलियट की कविता नहीं समझता पर हिन्दी में जो कुछ लिखा जाए, उसे सभी समझ जाएँ, यह ऐसा अव्यावहारिक आग्रह है, जिसका कोई समाधान नहीं। वस्तुतः सरलीकरण शब्द सुनने में जितना सरल मालूम होता है, उतना सरल है नहीं। सच तो यह है कि लेखक, पाठक और विषय से निरपेक्ष उसकी सत्ता ही नहीं है। एक बात और याद रखनी चाहिए। भाषा कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे, जैसे चाहें, काट-छांट दें। भाषा की अर्थात् उसके शब्द भंडार की, व्याकरण की एक विकास परंपरा होती है, जो बहुत कुछ जैव (आर्गेनिक) विकास से मिलती-जुलती है। जैसे किसी मनुष्य का सरलीकरण उसके हाथ, पैर या सिर काट कर नहीं कर सकते, वैसे ही भाषा का सरलीकरण भी से बिना विकलांग किए संभव नहीं है। अंग्रेजी की कठिनाइयाँ हिन्दी की तुलना में कहीं अधिक है वर्तनी की अवैज्ञानिकता और अस्वाभाविकता तो सर्वसम्मत है—पर उसके सरलीकरण की आवाज किसी ने कभी नहीं उठाई, न इस देश में और न उन देशों में जहाँ की वह भाषा है, क्योंकि भाषा का सरलीकरण ऐसा वायवीय प्रश्न है जिसे ठोस रूप देना आशंका है।

तीसरा प्रश्न कि सरलीकरण कौन करे? कोई व्यक्ति, संस्था या सरकार? किसी व्यक्ति का कहना, वह कितना भी समर्थ क्यों न हो, नहीं चल सकता। महात्मा गाँधी जैसे व्यक्ति ने भाषा के संबंध में जो कुछ कहा, उसे साहित्यिकों ने तो नहीं माना, स्वयं उनके अनुयायियों में भी अनेक ने नहीं माना। जब महात्मा

गाँधी का कहना नहीं चल सका तो किसका चलेगा? अब रही बात किसी संस्था की, तो इसमें भी वही कठिनाई है। संस्थाएँ अनेक हैं और परस्पर रागद्वेष की भी कमी नहीं है। यह भार कौन उठाए और उठाए भी तो उसके नियमन की बाध्यता क्या है? बची सरकार, तो उसके निर्णयों का भी विरोध होता है, जोरदार विरोध होता है। और जिसे सरकार कहते हैं वह व्यक्तियों के समूह के अतिरिक्त है भी क्या? इसलिए ले दे कर बात वहीं की वहीं रह जाती है। तात्पर्य कि सरलीकरण की माँग सैद्धांतिक रूप में चाहे जितनी भी सरल हो, व्यावहारिक रूप में उतनी ही कठिन है।

राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास

भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से प्रत्येक प्राणी अपने विचारों को दूसरों पर अभिव्यक्त करता है। यह ऐसी दैवी शक्ति है, जो मनुष्य को मानवता प्रदान करती है और उसका सम्मान तथा यश बढ़ाती है। जिसे वाणी का वरदान प्राप्त होता है, वह बड़े से बड़े पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है और अक्षय कीर्ति का अधिकारी भी बन सकता है। किंतु, इस वाणी में स्खलन या विकृति आने पर मनुष्य निंदा और अपयश की भी भागी बनता है। यही नहीं अवांछनीय वाणी, उसके पतन का भी कारण बन सकती है। अत: वाणी या भाषा का प्रयोग बहुत सोच-विचार करना चाहिए। इसलिए राजकीय कार्यों में पूर्ण सोच-विचार के बाद उपयुक्त भाषा का प्रयोग करने की परंपरा रही है।

राज्य या प्रशासन की भाषा को राज्य भाषा कहते हैं। इसके माध्यम से सभी प्रशासनिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। यूनेस्को के विशेषज्ञों के अनुसार 'उस भाषा को राज्य भाषा कहते हैं, जो सरकारी कामकाज के लिए स्वीकार की गई हो और जो शासन तथा जनता के बीच आपसी संपर्क के काम आती हो' जब से प्रशासन की परंपरा प्रचलित हुई है, तभी से राजभाषा का प्रयोग भी किया जा रहा है। प्राचीन काल में भारत में संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश आदि भाषाओं का राजभाषा के रूप में प्रयोग होता था। राजपूत काल में तत्कालीन भाषा हिन्दी का प्रयोग राजकाज में किया जाता था। किंतु भारतवर्ष में मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद धीरे-धीरे हिन्दी का स्थान फारसी और अरबी भाषाओं ने ले किया। इस बीच में भी राजपूत नरेशों के राज्य क्षेत्र में हिन्दी का प्रयोग बराबर प्रचलित रहा। मराठों के राजकाज में भी हिन्दी का प्रयोग किया जाता था। आज भी इन राजाओं के दरबारों से हिन्दी

अथवा हिन्दी-फारसी, द्विभाषिक रूप में जारी किए गए फरमान बड़ी संख्या में उपलब्ध है। यह इस बात का द्योतक है कि हिन्दी राजकाज करने के लिए सदैव सक्षम रही है। किंतु केंद्रीय शक्ति के मुसलमान शासकों के हाथ में चले जाने के कारण उसे वह अवसर प्राप्त नहीं हुआ, जिससे सभी क्षेत्रों में उसकी क्षमता एवं सामर्थ्य का पूर्ण विकास हो पाता।

अंग्रेजी ने अपने शासन काल में तत्कालीन प्रचलित राजभाषा फारसी को ही प्रश्रय दिया। परिणामस्वरूप भारत के आजाद होने के कुछ समय बाद तक भी फारसी भारत के अधिकांश भागों में कचहरियों की भाषा बनी रही। इस बीच 1855 में लॉर्ड मैकाले ने अंग्रेजी को भारत की शिक्षा और प्रशासन की भाषा के रूप में स्थापित कर दिया था। धीरे-धीरे वह न केवल पूर्णतः भारतीय प्रशासन की भाषा बन गई, बल्कि शिक्षा, वाणिज्य, व्यापार तथा उद्योग धंधों की भाषा के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गई। इनता ही नहीं वह भारत के शिक्षित वर्ग के व्यवहार की भी भाषा बन गई। फिर भी, अंग्रेजी शासक यह महसूस करते रहे कि भारत की भाषाओं को बहुत दिनों तक दबाया नहीं जा सकता, अतः उन्होंने हिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी को और अन्य प्रदेशों में, वहां की भाषाओं को प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम बनाया। इस श्रीगणेश का शुभ परिणाम यह हुआ कि हिन्दी और भारतीय भाषाएं विकसित होने लगीं और वे उच्च शिक्षा का माध्यम बनी। इतना ही नहीं स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने भारतीय भाषाओं और विशेषकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा के रूप में प्रचलित करने का प्रयास प्रारंभ किया। इस राष्ट्रीय जागरण के परिणाम स्वरूप हिन्दी का उत्तरोत्तर प्रसार होने लगा और यह मत व्यक्त किया जाने लगा कि देश के अधिकांश लोगों की बोली होने के कारण हिन्दी को भी भारत की राष्ट्रभाषा बनाया जाना चाहिए। देश के कोने-कोने से अनेक अहिन्दी भाषी राष्ट्रीय नेताओं ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये।

महात्मा गांधी ने एक बार यह विचार व्यक्त किया था कि राष्ट्रभाषा बनने के लिए किसी भाषा में नीचे दिए गए पांच गुण होने आवश्यक होने चाहिए–

- उसे सरकारी अधिकारी आसानी से सीख सकें
- वह समस्त भारत में धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संपर्क के माध्यम के रूप में प्रयोग के लिए सक्षम हो,
- वह अधिकांश भारतवासियों द्वारा बोली जाती हो,
- सारे देश को उसे सीखने में आसानी हो,

- ऐसी भाषा को चुनते समय अरजी या क्षणिक हितों पर ध्यान न दिया जाए।

उनका विचार था कि भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें उपर्युक्त सभी गुण मौजूद हैं। महात्मा गांधी तथा अन्य नेताओं के उद्‌गारों का परिणाम यह हुआ कि जब भारतीय संविधान सभा में संघ सरकार की राजभाषा निश्चित करने का प्रश्न आया तो विशद विचार मंथन के बाद 14 सितंबर, 1949 को हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया गया। भारत का संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ और तभी से देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी विधिवत भारत संघ की राजभाषा है।

किसी भी स्वाधीन देश के लिए, जो महत्त्व उसके राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का है, वही उसकी राजभाषा का है। प्रजातांत्रिक देश में जनता और सरकार के बीच भाषा की दीवार नहीं होनी चाहिए और शासन का काम जनता की भाषा में किया जाना चाहिए। जब तक विदेशी भाषा में शासन होता रहेगा, तब तक कोई देश सही आर्थों में स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा में ही स्पष्टता और सरलता से अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकता है। नूतन विचारों का स्पंदन और आत्मा की अभिव्यक्ति, मातृभाषा में ही सम्भव है। राजभाषा देश के भिन्न-भिन्न भागों को एक सूत्र में पिराने का कार्य करती है इसके माध्यम से जनता न केवल अपने देश की नीतियों और प्रशासन को भली-भांति समझ सकती है, बल्कि उसमें स्वयं भी भाग ले सकती है। प्रजातंत्र की सफलता के लिए ऐसी व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। विश्व के सभी स्वतंत्र देश और नवोदित राष्ट्रों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उनका उत्थान, उनकी अपनी भाषाओं के माध्यम से ही सम्भव है। रूस, जापान, जर्मनी, आदि सभी राष्ट्र इसके प्रमाण हैं। भारतीय संविधान सभा इस तथ्य से पूर्णतयः परिचित थी। इसलिए यद्यपि अंग्रेजी के समर्थकों ने उसकी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति और समृद्धि की बड़ी वकालत की, फिर भी राष्ट्रीय नेताओं ने देश के बहुसंख्यक वर्ग द्वारा बोली जाने वाली और देश के अधिकांश भाग में समझी जाने वाली भाषा हिन्दी को ही भारत संघ की राजभाषा बनाया।

हिन्दी का संघ की राजभाषा 1950 में ही घोषित कर दिया गया था, किंतु केंद्र सरकार के कामों में हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान देने के लिए गंभीरता से प्रयास केंद्र सरकार द्वारा 1960 ओर विशेषकर राजभाषा अधिनियम, 1963 के पास होने के बाद से प्रारंभ किया गया। उस समय यह अनुभव किया गया कि

हिन्दी के माध्यम से प्रशासन का कार्य चलाने के लिए कुछ प्रारंभिक तैयारियों की आवश्यकता पड़ेगी, जैसे–

- प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकि एवं विधि शब्दावली का निर्माण।
- प्रशासनिक एवं विधि साहित्य का हिन्दी में अनुवाद।
- अहिन्दी–भाषी सरकारी कर्मचारियों का हिन्दी प्रशिक्षण।
- हिन्दी टाइपराइटरों एवं अन्य यांत्रिक साधनों की व्यवस्था आदि।

शब्दावली का निर्माण

शब्दावली निर्माण के लिए शिक्षा मंत्रालय ने सन् 1950 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी बोर्ड की स्थापना की थी। इसके मार्गदर्शन में शिक्षा मंत्रालय के हिन्दी विभाग ने तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य चालू किया था। बाद में हिन्दी विभाग का विस्तार होते होते सन् 1960 में केंद्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना हुई। इसके कुछ समय बाद 1961 में राष्ट्रपति के आदेशानुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई। निदेशालय तथा आयोग ने अब तक विज्ञान, मानविकी, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी, कृषि तथा प्रशासन आदि के 4 लाख अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय प्रकाशित कर दिये हैं। इसी प्रकार राजभाषा (विधायी) आयोग तथा राजभाषा खंड ने विधि शब्दावली का निर्माण कार्य लगभग पूरा कर लिया है। सन् 1979 में प्रकाशित विधि शब्दावली इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। इसमें लगभग 34000 विधिक शब्दों के हिन्दी पर्याय प्रकाशित किए गए हैं।

प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद

केंद्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों के मैनुअलों, संहिताओं, फार्मों आदि का अनुवाद कार्य पहले शिक्षा मंत्रालय के केंद्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा किया जाता था। मार्च, 1971 से यह कार्य गृह मंत्रालय (राजभाषा विभाग) के आधीन स्थापित केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो को सौंपा गया है। ब्यूरो ने निदेशालय द्वारा अनूदित साहित्य के अतिरिक्त अब तक लगभग 3 लाख मानक पृष्ठों का अनुवाद करके विभिन्न मंत्रालयों को उपलब्ध करा दिया है। इस समय ब्यूरो मंत्रालयों, विभागों के अतिरिक्त अन्य सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों आदि के मेनुअलों का भी अनुवाद कर रहा है। इसी प्रकार विधि मंत्रालय के राजभाषा खंड ने भी अब तक 13000 मानक पृष्ठों के 1000 से अधिक केंन्द्रीय अधिनियमों

का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है और यह कार्य निरंतर चल रहा है। इसके अतिरिक्त नियमों तथा अन्य विधिक साहित्य का भी अनुवाद किया गया है।

हिन्दी शिक्षण योजना

केंद्रीय सरकार के हिन्दी न जानने वाले सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी शिक्षण का कार्य शिक्षा मंत्रालय की देखरेख में सन् 1952 में प्रारंभ हुआ था, किंतु बाद में लिए गए निर्णय के अनुसार अक्टूबर, 1955 से यह कार्य गृह मंत्रालय के तत्त्वाधान में हो रहा है। प्रारंभ में यह प्रशिक्षण पाठ्यक्रम उन लोंगों के लिए था, जा अपनी इच्छा से हिन्दी पढ़ना चाहते हैं बाद में अप्रैल 1960 में राष्ट्रपति के आदेश के अधीन हिन्दी का सेवाकालीन प्रशिक्षण उन सभी केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए अनिवार्य कर दिया गया जो 01-01-1961 को 45 वर्ष के नहीं हुए थे। फिर भी, स्वेच्छा से हिन्दी सीखने वालों की तादाद आधिकतर जगहों पर इतनी पर्याप्त है कि राजभाषा विभाग ने अभी तक इस अनिवार्यता का प्रयोग नहीं किया है और हिन्दी प्रशिक्षण का कार्य सारे देश में स्वेच्छा तथा प्रोत्साहन के आधार पर चल रहा है।

इसी प्रकार टंककों और आशुलिपिकों के लिए भी हिन्दी टाइपिंग और हिन्दी आशुलिपि का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई है। इस समय देश भर में हिन्दी प्रशिक्षण के 149 केंद्र चल रहे हैं, जिनमें 73 पूर्णकालिक और 76 अंशकालिक हैं। इन केंद्रों के माध्यम से जून, 1981 तक लगभग 4,37,360 कर्मचारियों ने हिन्दी की विभिन्न परीक्षाएं तथा 34, 531 कर्मचारियों ने हिन्दी टाइपिंग और हिन्दी आशुलिपिक की परीक्षाएं पास कर ली हैं।

यांत्रिक साधनों की व्यवस्था

कुछ वर्ष पहले देवनागरी के टाइपराइटरों का उत्पादन मांग के अनुसार नहीं था। किंतु अब औद्योगिक विकास विभाग, पूर्ति तथा निपटान महानिदेशालय एवं टाइपराटर बनाने वाली कंपनियों के प्रतिनिधियों के सहयोग से देवनागरी टाइपराइटरों के उत्पादन में प्रगति हुई है। इस समय देवनागरी टाइपराइटरों का उत्पादन मांग के अनुसार है। वर्ष 1978 में 11,573 1979 में 13,686 तथा 1980 में 12,754 देवनागरी टाइपराइटरों का उत्पादन हुआ। वर्ष 1981 में विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों के पास कुल 1367 देवनागरी टाइपराइटर थे।

कम्प्यूटर

कम्प्यूटर में देवनागरी लिपि तथा भारतीय भाषाओं के प्रयोग की सुविधा के विकास के संबंध में इलेक्ट्रॉनिकी विभाग तथा इलेक्ट्रॉनिकी आयोग क्षरा विशेष कदम उठाए जा रहे हैं। कुछ वर्ष पहले ई. सी. आई. एल हैदराबाद ने कम्प्यूटर में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग के संबंध में एक प्रोटोटाइप बनाया था। उसे और उपयोगी बनाने के लिए कदम उठए जा रहे हैं। हाल ही में बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी एंड साइंस, पिलानी ने भी ऐसे ही एक कम्प्यूटर का प्रोटोटाइप बनाया है। इसके अलावा टाटा ब्रदर्स, बंबई की एक फर्म ने भी इस प्रकार के कम्प्यूटर प्रोटोटाइप बनाया है। कंप्यूटर में देवनागरी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग करने की दृष्टि से कोड निर्धारित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिकी आयोग द्वारा कर्रवाई की जा रही है।

इलैक्ट्रॉनिक टेलीप्रिंटर

संचार मंत्रालय के अधीन एक सरकारी उपक्रम हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर लि. द्वारा इलेक्ट्रानिक टैलीप्रिंटर्स बनाए जाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे है। इलेक्ट्रॅनिकी के लिए एक समिति का गठन किया जा चुका है। इसी प्रकार हिन्दी के बिजली से चलने वाले टइपराइटरों, पतालेखी मशीनों और पिनप्वाइंट टाइपराइटरों के निर्माण के लिए भी कार्रवाई की जा रही है।

हिन्दी की मुद्रण क्षमता में वृद्धि

भारत सरकार के प्रेसों की हिन्दी मुद्रण क्षमता कुछ समय पहले संतोषजनक नहीं थी। आवास तथा निर्माण मंत्रालय के सहयोग से मुद्रण निदेशालय ने हिन्दी मुद्रण क्षमता बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास किये हैं, जिससे इस दिशा में काफी प्रगति हुई है। पहले हिन्दी मुद्रण क्षमता केवल 400 पृष्ठ प्रतिदिन थी, अब यह बढ़कर 1200 पृष्ठ प्रतिदिन तक पहुँच गई है।

राजभाषा के संबंध में कानूनी व्यवस्थाएं

राजभाषा नीति को लागू करने के लिए 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित किया गया और इसमें 1976 में संशोधन किया गया। इसकें कुछ प्रमुख उपबंध इस प्रकार हैं–

अधिनियम की धारा 3 के अनुसार (क) संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए 26 जनवरी, 1965 से तत्काल पूर्व अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था और (ख) संसद में कार्य निष्पादन के लिए 26 जनवरी, 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकेगा।

केंद्र सरकार और हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले किसी राज्य के बीच पत्राचार अंग्रेजी में होगा, बशर्ते उसे राज्य ने इसके लिए हिन्दी का प्रयोग करना स्वीकार न किया हो। इसी प्रकार, हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें ऐसे राज्यों की सरकारों के साथ अंग्रेजी में पत्राचार करेगी और यदि वे ऐसे राज्यों को कोई पत्र हिन्दी में भेजती हैं तो साथ-साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजेंगी। पारस्पिरिक समझौते से यदि कोई भी दो राज्य आपसी पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

केंद्रीय सरकार के कार्यालयों, आदि के बीच पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। लेकिन जब तक संबंधित कार्यालयों आदि के कर्मचारी हिन्दी का कार्य साधक ज्ञान प्राप्त न कर लें, तब तक पत्रादि का दूसरी भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाता रहेगा।

राजभाषा अधिनियम की धारा 3 के अनुसार निम्नलिखित कागजपत्रों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य है-1. संकल्प, 2. सामान्य आदेश, 3. नियम, 4. अधिसूचनाएँ, 5. प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट, 6. प्रेस विज्ञप्तियाँ, 7. संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्टें एवं 8. सरकारी कागजपत्र, 9. संविदाएँ, 10. करार, 11. अनुज्ञप्तियाँ, 12. अनुज्ञापत्र, 13. टेंडर नोटिस और 14. टेंडर फार्म।

धारा 3 (4) के अनुसार अधिनियम के अधीन नियम बनाते समय यह सुनिश्चित कर लेना होगा कि यदि केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी में से किसी एक ही भाषा में प्रवीण हो, तब भी वह अपना सरकारी कामकाज प्रभावी ढंग से कर सके और केवल इस आधार पर कि वह दोनों भाषाओं में प्रवीण नहीं है, उसका कोई अहित न हो।

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 द्वारा अधिनियम की धारा 3 (5) के रूप में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त विभिन्न कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तब तक जारी रहेगी, जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले सभी राज्यों के विधान मंडल अंग्रेजी का प्रयोग खत्म करने के लिए आवश्यक संकल्प पारित न करें और इन संकल्पों पर

विचार करने के बाद संसद का प्रत्येक सदन भी इसी आशय का संकल्प पारिनत न कर दें।

अधिनियम की धारा 7 के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अथवा पारित किसी निर्णय, डिक्री अथवा आदेश के लिए, अंग्रेजी भाषा के अलावा, हिन्दी अथवा राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है। तथापित यदि कोई निर्णय डिक्री या आदेश अंग्रेजी से किसी भिन्न किसी भाषा में दिया या पारित किया जाता है तो उसके साथ-साथ संबंधित उच्च न्यायालय के प्राधिकार से अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी दिया जाएगा। अब तक उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश और बिहार के राज्यपालों ने अपने उच्च न्यायालयों में उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए राष्ट्रपति से हिन्दी के प्रयोग की अनुमति ली है।

राजभाषा संशोधन अधिनियम पारित करने के साथ-साथ दिसंबर, 1967 में संसद के दोनों सदनों नले सरकार की भाषा नीति के संबंध में एक सरकारी संकल्प भी पारित किया था। इस संकल्प के पेरा 1 के अनुसार केंद्रीय सरकार हिन्दी के प्रसार तथा विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए उसके प्रयोग में तेजी लाने के लिए एक अधिक गहन और विस्तृत कार्यक्रम तैयार करेगी और उसे कार्यान्वित करेगी। इसके अतिरिक्त इस संबंध में किए गए उपायों तथा उसमें हुई प्रगति का ब्यौरा देते हुए एक वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद के सदनों के सभापटल पर प्रस्तुत करेंगी। सन् 1968 से निरंतर वार्षिक कार्यक्रम बनाया जा रहा है, जिसमें केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों एवं विभाग से अनुरोध किया जाता है कि हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए उसके अनुसार कार्रवाई करें। अब तक इस प्रकार की 10 रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की जा चुकी हैं और 11वीं रिपोर्ट मुद्रणाधीन है।

राजभाषा अधिनियम, 1976

सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए सन् 1976 में राजभाषा नियम बनाया गया है। यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था, जिससे हिन्दी के प्रयोग में काफी सहायता मिली है। इस नियम की महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाएँ इस प्रकार है: (क) केंद्र सरकार के कार्यालयों के 'क' क्षेत्र के लिए राज्य व संघ राज्य क्षेत्र (उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश राज्य और संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली) को ऐसे राज्यों में स्थित किसी अन्य कार्यालय या

व्यक्ति को भेजे जाने वाले पत्र आदि हिन्दी में भेजे जाएँगे। यदि किसी खास मामलें में कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ भेजा जाएगा। (ख) केंद्र सरकार के कार्यालयों से 'ख' क्षेत्र के किसी राज्य व संघ राज्य क्षेत्र (पंजाब, गुजरात, और महाराष्ट्र तथा चंडीगढ़ और अंडमान निकोबार द्वीप समूह संघ राज्य क्षेत्र) के प्रशासनों को भेजे जाने वाले पत्र आदि सामान्यत: हिन्दी में भेजे जाएँगे। यदि ऐसा कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ भेजा जाएगा। इन राज्यों में रहने वाले किसी व्यक्ति को भेजे जाने वाले पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी, किसी भी मात्रा में हो सकते हैं। (ग) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से 'ग' क्षेत्र के किसी राज्य व संघ राज्य क्षेत्र ('क' और 'ख' क्षेत्र में शामिल न होने वाले सभी राज्य और संघ राज्य क्षेत्र) के किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाएँगे। यदि ऐसा कोई पत्र हिन्दी में भेजा जाता है तो उसका अंग्रेजी अनुवाद साथ भेजा जाएगा। (घ) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्र व्यवहार हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकता है, किंतु केंद्र सरकार के किसी मंत्रालय/विभाग और 'क' क्षेत्र में स्थिति संबंद्ध और अधीनस्था कार्यालयों के बीच होने वाला पत्र व्यहार सरकार द्वारा निर्धारित अनुपात में हिन्दी में होगा। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार कम से कम दो तिहाई पत्र व्यवहार हिन्दी में होना चाहिए। 'क' क्षेत्र में स्थित केंद्र सरकार के किन्ही दो कार्यालयों के बीच सभी पत्र व्यवहार हिन्दी में ही किए जाने का प्रावधान है। (ड.) हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर अनिवार्य रूप से हिन्दी में ही दिए जाएँगे। हिन्दी में लेख या हिन्दी में इस्ताक्षर किए गए आवेदनों या अभ्यावेदनों के उत्तर भी हिन्दी में दिए जाएंगे। (च) राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाएगा और इसे सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति की होगी। (छ) केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी फाइलों में हिन्दी या अंग्रेजी में टिप्पणी या मसौदे लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में भी प्रस्तुत करें। (ज) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएँ और अन्य प्रक्रिया साहित्य हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों में द्विभाषिक रूप में तैयार और प्रकाशित किए जाएँगे। सभी फार्मों और रजिस्टरों के शीर्ष, नामपट्ट, स्टेशनरी, आदि की अन्य मदें भी हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में होगी। (ण) प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक

प्रधान का यह दायित्व होगा कि वह राजभाषा अधिनियम और उसके अधीन बने नियमों का समुचित रूप से अनुपालन सुनिश्चित करें।

राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों पर है। इस नीति के समन्वय का कार्य राजभाषा विभाग करता है। यह विभाग समन्वय के लिए वार्षिक कार्यक्रमों को जारी करने के अलावा कई प्रकार की समितियों का गठन करके यह कार्य कर रहा है, जिनका विवरण इस प्रकार है:

(1) केंद्रीय हिन्दी समिति–हिन्दी के विकास और प्रसार तथा सरकारी कामकाज में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के संबंध में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे कार्यक्रमों का समन्वय करने और नीति संबंधी दिशा निर्देश देने वाली यह सर्वोच्च समिति है। प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में गठित इस समिति में केंद्रीय सरकार के 11 मंत्री तथा राज्य मंत्री, राज्यों के 8 मुख्यमंत्री, 7 संसद सदस्य तथा हिन्दी के 10 विशिष्ट विद्वान् शामिल है। राजभाषा विभाग के सचिव एवं भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार इसके सदस्य सचिव हैं।

(2) हिन्दी सलाहकार समितियाँ–सरकार का यह निर्णय है कि राजभाषा नीति का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने और इस संबंध में आवश्यक सलाह देने के लिए जनता के साथ अधिक संपर्क में आने वाले विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में हिन्दी सलाहकार संमितियाँ गठित की जाएँ। इस निर्णय के अनुसार 25 मंत्रालयों में उनके मंत्रियों की अध्यक्षता में हिन्दी सलाहकार समितियों का गठन किया गया है, जिनमें संसदस्यों तथा हिन्दी के विशिष्ट विद्वानों के अतिरिक्त मंत्रालय विशेष के वरिष्ठ अधिकारी शामिल होते हैं। वे अपने मंत्रलाय में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के संबंध में आवश्यक विचार-विर्मश करके निर्णय लेते हैं।

(3) राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ–केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों की संख्या (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को छोड़कर) 25 या इससे अधिक है, वहाँ राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ बनाई गई हैं। मंत्रालयों व विभागों की राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के अध्यक्षों को मिला कर एक केंद्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति बनाई गई है, जो उसकी समस्याओं पर आंतरिक रूप से विचार करके उनका समाधान ढूँढ़ती है। सन् 1976 में लिए गए एक निर्णय के अनुसार ऐसे 55 नगरों में भी, जहाँ 10 या इनसे अधिक केंद्रीय कार्यालय है, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है।

उपर्युक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों विभागों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ा है। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में कुल 423990 पत्र हिन्दी में प्राप्त हुए। इनमें से 233030 पत्रों का उत्तर हिन्दी में दिया गया तथा केवल 5088 पत्रों का उत्तर अंग्रेजी में। इसी अवधि में विभिन्न मंत्रालयों/विभागों से 345899 पत्र मूल रूप से हिन्दी में भेजे गए। इसी प्रकार अधीनस्थ कार्यालयों में भी हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा हे। राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) के अनुसार सामान्य आदेश (जिनमें परिपत्र भी शामिल है) संकल्प, नियम, अधिसूचनाएँ, प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट, प्रेस विज्ञप्तियाँ, संविदा, करार, अनुज्ञप्ति आदि द्विभाषी रूप में जारी किए जाने चाहिए। इस संबंध में राजभाषा विभाग की ओर से सभी मंत्रालयों व विभागों से यह कहा गया है कि वे उन्हें अनिवार्य रूप से द्विभाषी रूप में जारी करें। अधिकतर मंत्रालय व विभाग ऐसा ही कर रहे हैं। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में जारी होने वाले विभाग ऐसा ही कर रहे हैं। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में जारी होने वाले इन कागज पत्रों की कुल संख्या 73341 थी। इनमें 61297 कागजपत्र द्विभाषी रूप में जारी हुए। इसके अतिरिक्त सभी मंत्रालयों व विभागों द्वारा हिन्दी में प्राप्त पत्रों के उत्तर प्राय: हिन्दी में दिए जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होगा कि राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास, प्रचार और प्रयोग में पर्याप्त वृद्धि हुई है, किंतु अभी भी हम अपेक्षित लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके हैं। इसका कारण यह है कि जो सरकारी कर्मचारी हिन्दी जानते भी हैं, वे भी द्विभाषिक रूप में कार्य करने की छूट होने के कारण हिन्दी के बजाय अंग्रेजी में काम करना पसंद करते हैं, क्योंकि एक तो वे पहले से अंग्रेजी में काम करने के अभ्यस्त रहे हैं दूसरे हिन्दी में काम करने में वे कुछ हीनता अथवा संकोच का अनुभव करते हैं। यह हीनता और संकोच की भावना इस समय सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग करने के लिए अभी जितने यांत्रिक साधन और सुविधाएँ उपलब्ध है, वे हिन्दी में सुलभ नहीं है। इससे विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग अपेक्षित रूप में नहीं हो पा रहा है। अत: विभिन्न प्रकार के टाइपराइटरों, कंप्यूटरों आदि की अपेक्षित सुविधाएँ हिन्दी में सुलभ कराने के लिए पर्याप्त प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। हिन्दी भाषी राज्य सरकारें भी, जहाँ अधिकांश कर्मचारी हिन्दी जानते हैं, अभी तक संपूर्ण कार्य हिन्दी में नहीं कर पा रही है। इससे अन्य राज्यों में हिन्दी का प्रयोग करने पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यद्यपि राजभाषा अधिनियम एवं राजभाषा नियम के अनुसार अनेक कागज पत्रों एवं प्रकाशनों को द्विभाषिक रूप में अथवा केवल हिन्दी में जारी करना पड़ता है। किंतु सरकारी प्रेसों की हिन्दी की मुद्रण-क्षमता अभी भी संतोषजनक नहीं है। इससे न तो हिन्दी के प्रकाशन समय पर निकल पाते हैं और न ही समुचित मात्रा में हिन्दी का प्रयोग बढ़ पाता है। यह भी देखा गया है कि राजभाषा नीति के कार्यन्वयन के लिए अभी तक मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों आदि में समुचित हिन्दी स्टाफ की व्यवस्था नहीं हो पाई है। हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा उपयुक्त वातावरण न होने की है। प्रायः सभी सही सोचते हैं कि उनके बजाय किसी और को हिन्दी में काम करना है। फिर भी, विविध प्रयासों के परिणामस्वरूप हिन्दी का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। भारत सरकार के सभी मंत्रालयों विभागों, कार्यालयों, उपक्रमों आदि में वार्षिक कार्यक्रमों को पूरा करने का भरकस प्रयास किया जा रहा है। हिन्दी में सर्वाधिक काम करने वाले मंत्रालयों व विभागों को शील्ड देने की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में पर्याप्त काम करने वाले को आर्थिक प्रोत्साहन देने की योजना भी विचाराधीन है। राजभाषा विभाग अपने विभिन्न प्रकाशनों के माध्यम से राजभाषा नीति, राजभाषा अधिनियम तथा राजभाषा नियमों की जानकारी देने का पूरा प्रयास कर रहा है। विभिन्न मंत्रालयों की हिन्दी सलाहकार समितियाँ तथा राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए आवश्यक कदम उठा रही है। हिन्दी कार्यशालाओं के आयोजन से भी कर्मचारियों की झिझक दूर करके उन्हें हिन्दी में काम करने का प्रोत्साहन दिया जा रहा है। तात्पर्य यह है कि हिन्दी में काम करने का वातावरण बनाने के लिए हर संभव उपाय किए जा रहे हैं। यद्यपि हमारी मंजिल कुछ दूर अवश्य है, किंतु हम सब का सहयोग लेते हुए सशक्त और संतुलित कदमों से उसकी तरफ बढ़ रहे हैं। हमें आशा है, हम देर सवेर अपनी मंजिल तक अवश्य पहुँचेंगे।

सांस्कृतिक भाषा के रूप में हिन्दी का विकास

सांस्कृतिक भाषा के दो अर्थ हो सकते हैं–

(1) संस्कार की गई भाषा अर्थात् परिष्कृत भाषा और

(2) संस्कृति विशेष के व्यापक तत्त्वों को समाहित करने वाली भाषा।

प्रस्तुत संदर्भ में सांस्कृतिक भाषा का दूसरा अर्थ ग्रहण किया जा रहा हे। विगत सौ वर्षों में, मुख्यतः स्वातंयोत्तर काल में हिन्दी भाषा का एकाधिक दृष्टियों

से विकास हुआ है। राष्ट्रभाषा के रूप में तो इसके विकास से सभी परिचित है। किंतु विशेष प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने के कारण आज 'राजभाषा हिन्दी', 'कामकाजी हिन्दी', तकनीकी हिन्दी जैसे अनेक शब्द चल पड़े हैं, जो उसके निरंतर विकासमान स्वरूप के परिचायक हैं। हिन्दी के ये सभी रूप उसके मानक रूप के आधार पर निर्मित हुए हैं जिनसे भाषा की आंतरिक संरचना भी प्रभावित हुई है।

देखना यह है कि सांस्कृतिक प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए हिन्दी का किस प्रकार प्रयोग हुआ है और इन प्रयोगों ने उसकी संरचना को कहाँ तक प्रभावित किया है।

भारतीय संस्कृति के एकाधिक तत्त्वों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति हिन्दी में प्राचीन काल से ही लक्षित होने लगती है। इसी गुण के कारण मध्ययुगीन साधु संतों से उसे सार्वदेशिक रूप प्रदान किया था। ब्रजभाषा गुजरात से लेकर असम तक भारतीय संस्कृति की संवाहिका बनी थी और अवधी कोसल जनपद को लाँघकर छत्तीसगढ़ तक फैल गई थी। आधुनिक काल में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा होने पर इसने भी सार्वजनिक होने का प्रयास किया और यह अखिल भारतीय राजकाज की भाषा बन गई। इस समय यह 'नागर संस्कृति' के साथ-साथ 'लोक संस्कृति' को भी उजागर करती है। आधुनिक हिन्दी लेखन द्वारा खड़ी बोली हिन्दी के इस सांस्कृतिक स्वरूप का जो निखार और परिष्कार हुआ है, उसी का यहाँ पर्यवेक्षण किया जा रहा है।

सांस्कृतिक भाषा के रूप में हिन्दी के विकास पर दो दृष्टियों से विचार कर सकते हैं–

(1) इतिहास की दृष्टि से, और

(2) साहित्यिक रचनाओं की दृष्टि से।

इतिहास की दृष्टि से इस विषय पर भारतेंदु काल से विचार करना समीचीन होगा क्योंकि उसके पूर्व हिन्दी गद्य का विकास हो जाने पर भी लेखकों की सांस्कृतिक चेतना उद्‌बुद्ध नहीं हुई थी। जब भारतेंदु ने सन् 1873 में लिखा कि 'हिन्दी नई चाल में ढली' तो उनका तात्पर्य हिन्दी की ऐसी सर्वांगीण उन्नति से था जिसके उदाहरण 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' तथा 'भारतेंदु ग्रंथावली' में मिलते हैं। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की अरबी फारसी मिश्रित हिन्दी तथा राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृत प्रधान हिन्दी को अनुपयुक्त समझ कर उन्होंने जनसाधारण की भाषा का पक्ष लिया था। सन् 1879 में प्रकाशित 'कवि वचन सुधा' की एक

विज्ञप्ति से ज्ञात होता है कि उन्होंने भारत की उन्नति के लिए विविध उपायों में से उच्चस्तरीय कविताओं के अतिरिक्त लोकगीत रचना पर ध्यान दिया था जिनसे ग्राम ग्राम तक नव जागृति का संदेश सुनाया जा सके।

भारतेंदु मंडल के लेखकों ने इसी उद्देश्य से अनुप्राणित होकर साहित्य रचना करते हुए हिन्दी भाषा पर अपने विचार प्रकट किए थे। प्रताप नारायण मिश्र ने 'निज देश' तथा 'निज भाषा' के लिए तन-मन-धन न्यौछावर करने की कामना की थी। 'प्रेमघन' ने उर्दू की व्युत्पत्ति देते हुए नागरी हिन्दी की प्रशंसा की थी और कचहरी आदि कार्यों के लिए हिन्दी को योग्य ठहराया था। ये लेखक चूंकि जनसाधारण को उनकी वास्तविक दशा से परिचत कराना चाहते थे, अतः इसके लिए सरल भाषा ही उपयुक्त हो सकती थी। इस स्थिति ने हिन्दी को सांस्कृतिक भाषा बनने की दिशा में उन्मुख किया।

भाषा राष्ट्रीय चेतना का अनिवार्य अंग होती है, वह मनुष्य के विचारों को ही अभिव्यक्त नहीं करती बल्कि देश के संगठित रूप का भी बोध कराती है। भारत जैसे बहुजातीय, बहुवर्गीय देश में, जिसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'महा मानव समुद्र' कहा है, एकमात्र हिन्दी ही एकता का प्रतीक हो सकती है—इसे तत्कालीन लेखक समझ गए थे। उनके साथ राष्ट्रीय आंदोलनों के पुरस्कर्ता नेताओं ने जब अंग्रेजी का विरोध करते हुए हिन्दी का पक्ष लिया और राष्ट्रीय जागरण के लिए हिन्दी का शंख फूँका तो इसके सांस्कृतिक विकास को गति मिलना स्वाभाविक था।

सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना होने पर उसकी कार्रवाई बहुत वर्षों तक अंग्रेजी में चलती रही। अदालतों की भाषा उर्दू थी और जैसा किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा है कि हिन्दी में अर्जी देने पर वह फाड़ कर फेंक दी जाती थी। ऐसी स्थिति में पंजाब के लाला लाजपत राय, महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक, बंगाल के शादराचरण मिश्र, गुजरात के स्वामी दयानंद जेसे विद्धानों ने स्वतंत्रता आंदोलन के साथ राष्ट्रभाषा के प्रश्न को जोड़कर हिन्दी की जो अविस्मरणीय सेवा की, वह भारतीय इतिहास का गौरवपूर्ण अध्याय है।

शारदाचरण मिश्र ने हिन्दी, बंगला, गुजराती के लेखें को नागरी लिपि में प्रकाशित करने की योजना बनाई थी। उनके एक निबंध से ज्ञात होता है कि वे किस प्रकार हिन्दी को राष्ट्रीय सम्मिलन की एकमात्र शक्ति मानते थे। उन्होंने लिखा था हिन्दी समस्त आर्यावर्त (भारत) की भाषा है। कलकत्ता की एक लिपि विस्तार परिषद् समस्त भारतवर्ष में एक नागरी लिपि के प्रचार करने में तन मन

से लगी हुई है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ, तथापित मेरे दफ्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था में मेरे लिए यह गौरव का दिन होगा जिस दिन में हिन्दी स्वच्छंदता के साथ्ज्ञ बोलने लगूँगा और प्लेटफार्म के ऊपर खड़ा होकर हिन्दी में वक्तृता दूँगा। उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा, जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ साधु हिन्दी में वार्तालाप करूँगा।

बीसवीं शताब्दी के पूर्व में मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे राष्ट्र नेताओं के अथक प्रयत्नों द्वारा तथा नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभी जैसी अखिल भारतीय संस्थाओं द्वारा हिन्दी भाषा का क्षेत्र उत्तरोत्तर व्यापक होता गया। वह कचहरी, शिक्षा, व्यवसाय, दैनिक पत्राचार आदि के लिए निरंतर स्वीकृत होती गई। दूसरी ओर जो हिन्दी लेखक राष्ट्रीय आंदोलन के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े थे, वे उसे आंतरिक रूप से पल्लावित करते रहे। वे मूलत: लेखक थे और व्यवहार से देशभक्त थे। ये लोग उस समय किस प्रकार हिन्दी को अखिल भारतीय स्तर विकसित करना चाहते थे, यह महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा नीति से स्पष्ट होता है।

कहा जाता है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा परिष्कार का लक्ष्य निर्धारित करने के कारण हिन्दी के सहज बोलचाल वाले रूप की उपेक्षा की। भाषा को कांटा छांट कर उन्होंने हिन्दी को परिनिष्ठित किया। किंत यह बात संभवत: बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि उन्होंने विभिन्न भाषा-भाषियों कों एक संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी सीखने का परामर्श दिया था। 'सरस्वती' का संपादन ग्रहण करने के कुछ समय पश्चात् उन्होंने गुजराती, बंगला, मराठी आदि भाषा-भाषियों से हिन्दी अपनाने का आग्रह किया था। द्विवेदी जी के मतानुसार देशव्यापी भाषा के लिए केवल इतना आवश्यक है कि हमारे यहाँ जो भिन्न-भिन्न भाषाएँ प्रचलित है, उनके उत्तम ग्रंथ का प्रतिबिंब देशव्यापी भाषा में उतरना चाहिए। अर्थात् वे हिन्दी को सफल अनुवाद की भाषा के रूप में देखना चाहते थे। कहना न होगा कि सफल अनुवाद की भाषा किसी देश की सांस्कृतिक भाषा ही बन सकती है।

आगे चलकर जिस गति से राजनीतिक क्षितिज पर राष्ट्रीय आंदोलन गहराजा गया, उसी गति से राष्ट्रभाषा का संघर्ष तीव्र होता गया। हिन्दी के ही नहीं, अन्य भाषी लेखक भी उसकी अभिव्यंजना को निखारने लगे। सन् 1935 के ऊपरांत 'प्रगतिवाद' के आंदोलन ने हिन्दी के सांस्कृतिक विकास को एक नई दिशा प्रदान

की। जैसा कि सभी जानते हैं 'प्रगतिवाद' एक विशिष्ट जीवन दर्शन है, जो समाज के विकासशील तत्त्वों को विविध अंर्तविरोधों से उत्पन्न मानता है। उसने एक और राजनीतिक धरातल पर उग्रवादी चिंतनधारा को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप राजनेताओं के समाज सुधार संबंधी उद्‌गार अब असहयोग तथा अधिकारपूर्ण माँगें में बदलने लगे। दूसरी ओर उसने भाषा, साहित्य के धरातल पर लेखकों का ध्यान भारत के विस्तीर्ण ग्रामीण अंचलों तथा उनके समस्याओं की ओर आकर्षित किया। यहीं से उस जनपदीय आंदोलन का सूत्रपात हुआ जिसकी चर्चा राहुल सांकृत्यायन, बनारसीदास चतुर्वेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे विद्वानों ने समय समय पर विस्तारपूर्वक की।

हिन्दी भाषा को इससे सर्वाधिक लाभ यह हुआ कि अब जनपदीय भाषाओं के संपर्क में आने पर उसकी अभिव्यक्ति के नए द्वार खुल गए। अभी तक वह उर्दू, फारसी, अंग्रेजी जैसे विदेशी भाषाओं से अथवा बंगला, मराठी, गुजराती, जैसी समकक्ष भारतीय भाषाओं से अपने सांस्कृतिक कलेवर को संवारती थी। अब उसने अपनी जनपदीय बोलियाँ बुंदेली, भोजपुरी, अवधी, कुमाँऊनी आदि से सांस्कृतिक तत्त्व ग्रहण करने प्रारंभ किए जिसके सुपरिणाम छायावादोत्तर काल में परिलक्षित होते हैं। प्रेमचंद, दिनकर, गुलाबराय, माखनलाल चतुर्वेदी की भाषा में यदि पहले प्रकार के तत्त्व प्रमुख हैं तो वृंदावनलाल वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन की रचनाओं में दूसरे प्रकार के तत्त्व अधिक दिखाई देते हैं।

राष्ट्रीय आंदोलनों की चरम परिणति विदेशी शासन के पराभाव में हुई। इसने एक राष्ट्रव्यापी जीवन दृष्टि का विकास किया जिसके आधार पर संपूर्ण देश का पुनर्गठन किया गया। विगत 35 वर्षों में देश की भावनात्मक एकता के लिए हमारे नेताओं ने पर्याप्त ध्यान दिया है। और इसके माध्यम भाषा के रूप में हिन्दी को ही स्वीकार किया है।

स्मरण रखना चाहिए कि इस अवधि में हिन्दी की सांस्कृतिक समृद्धि का दायित्व केवल हिन्दी भाषी लेखकों तक सीमित नहीं रहा। हिन्दीत्तर प्रदेशों के एकाधिक लोगों ने इसमें उच्चकोटि के ग्रंथ लिखे तथा इसी के माध्यम से भारत की जटिल सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार किया। अन्य भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाओं के हिन्दी अनुवादों से भाषा की नई-नई अर्थ छायाओं (शेड्स आफ मीनिंग) का ज्ञान होता है। हिन्दी की सांस्कृतिक समृद्धि के लिए यह एक शुभ लक्षण है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होगा कि आधुनिक काल में सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दी भाषा का क्रमिक विकास तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्तियाँ वस्तुत एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अब साहित्यिक रचनाओं के आधार पर हिन्दी भाषा के सांस्कृतिक विकास को सरलतापूर्वक समझा जा सकेगा।

भारतेंदु मंडल के लेखकों पर प्राय: दोषपूर्ण भाषा लिखने का आक्षेप किया गया है। भारतेंदु की भाषा में अनगढ़ शब्दावली की, प्रतापनारायण मिश्र की भाषा में पूर्वीपन की, 'प्रेमधन' की भाषा में पंडिताऊपन की ओर बालमुंकद गुप्त की भाषा में उर्दूपन की बात कही गई है। यह बात हिन्दी के मानस स्वरूप को आधार बनाकर की जाती है और व्याकरण की दृष्टि से विचारणीय है। किंतु सांस्कृतिक दृष्टि से देखने पर यह उनकी भाषागत शिथिलता का नहीं, बल्कि व्यंजनशाशक्ति का विरोध कराती हैं। इन लेखकों ने बोलचाल के मुहावरों तथा लोकोक्तियों का जो चमत्कारपूर्ण प्रयोग किया है, अरबी फारसी के साथ अंग्रेजी के शब्दों को स्वीकार किया, वह उनकी व्यापक दृष्टि का परिचायक है।

भारतेंदु ने स्वयं बनारसी शैली पर लगभग 30 'कजलियाँ' और 100 से अधिक 'होलियाँ' लिखी थीं जिनमें या तो राधारानी की चाकरी वर्णित है अथवा विशुद्धश्रृंगार की व्यंजना हुई है। उर्दू काव्य से प्रेरणा लेकर उन्होंने एक 'सेहरा' भी लिखा जो कलापूर्ण होने के साथ-साथ इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि उनकी दृष्टि प्रारंभ से ही अन्य भाषाओं के लोक तत्त्वों से अपने साहित्य को पुष्ट करने की ओर गई थी।

प्रतापनारायण मिश्र को लोकगीतों की धुनें विशेष आकर्षित करती थी। राधाचरण गोस्वामी ने स्वरचित एक 'लावनी' में ब्रिटिश शासन की तीखी आलोचना करते हुए लोक-प्रचलित भाषा का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया था। 'प्रेमघन' ने स्वयं 250 के ऊपर कजलियाँ लिखी और 'कबीर लोक छंद में भंग पीने, नशा करने के बुरे परिणामों का उल्लेख किया। इन लेखकों ने 'मुकरियाँ 'पहेलियाँ' तक लिखकर हिन्दी भाषा को बोलचाल के निकट लाने का प्रयत्न किया ताकि उसके द्वारा नवीन विचारों की अभिव्यक्ति हो सके। तत्कालीन मानक हिन्दी और बोलचाल की हिन्दी में कदाचित कोई अन्तर नहीं था।

द्विवेदी काल में सुधारात्मक प्रवृत्ति प्रमुख होने के कारण भाषा के परिमार्जन की ओर विशेष ध्यान दिया गया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी का एक परिनिष्ठित रूप उभरने लगा जो लोकभाषा के सहज प्रभाव से पर्याप्त दूर था।

तत्कालीन साहित्यिक निबंधों में 'हिन्दी की वर्तमान व्यवस्था', 'अनुप्रास का अन्वेषण हमारी शिक्षा किस भाषा में हो 'हिन्दी लिग विचार' (द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी) जैसे विषयों की प्रधानता दिखाई देती है। 'कछुआ धरम' मोरिस माँहि कुठाऊ' (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) जैसे ललित निबंध अपवाद स्वरूप लिख गए हैं।

काव्य के भीतर छायावादी कवियों ने खड़ी बोली को सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति का साधान बनाने के लिए बड़ा श्रम किया जिससे अमूर्त का मूर्तीकरण तो संभव हुआ किंतु हिन्दी लाक्षणिक प्रयोगों में उलझकर रह गई। इसके साहित्यिक परिष्कार के कारण सांस्कृतिक विकास की धारा अवरुद्ध जैसे होने लगी। कहानी, उपन्यास और निबंध के क्षेत्रों में प्रेमचंद ने इस अवरोध को दूर करने के लिए हिन्दी को 'हिन्दुस्तानी' बनाया। वे कुछ दूर तक इस उद्देश्य में सफल हुए। किंतु प्रेमचंद की भाषा लोक प्रचलित होने पर भी भारतीय संस्कृति के सभी आयामों को स्पर्श नहीं कर सकी और यही उसकी सीमा थी। ग्रामीण अंचलों से दूर वनवासी अंचलों तक उसकी पहुँच नहीं थी। सांस्कृतिक दृष्टि से इस अभाव की पूर्ति सन् 1935 के बाद संभव हुई जिसका कारण ऊपर बतलाया जा चुका है।

प्रगतिवादी साहित्य सर्जना के साथ हिन्दी लेखक भारतीय ग्रामों के सुदूरवर्ती अंचलों से अन्यान्य शाब्दिक प्रयोग लेकर हिन्दी को समृद्ध करने लगे। जिसके प्रचुर उदाहरण छायावादोत्तर हिन्दी कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी और गद्य की नवीन विधाओं में मिलते हैं। परंपरा तथा आधुनिकता के आधार पर इन सभी साहित्यिक रचनाओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है–

(1) नगर बोध की रचनाएँ

(2) ग्रामीण आंचलिक परिवेश की रचनाएँ।

नगर बोध की रचनाएँ मनुष्य के जिस तनाव, संत्रास, घुटन, आक्रोश, कुंठा, आत्मरति, यौन विकृति आदि को मुखरित करती हैं वे मानव संस्कृति का अंग होने पर भी व्यक्ति के अलगाव की रचनाएँ हैं, से सामाजिक मनोवेत्ता के लिए अधिक उपादेय सामग्री प्रदान करती हैं। इसके विपरीत ग्रामीण आंचलिक परिवेश की रचनाएँ हैं। वे सामाजिक मनोवेत्ता के लिए अधिक उपादेय सामग्री प्रदान करती हैं। इसके विपरीत ग्रामीण आंचलिक परिवेश की रचनाएँ समाजनिष्ठ होने के कारण किसी भाषा के सांस्कृतिक विकास को स्पष्ट करने में अधिक सहायक है। अतः यही रचनाएँ प्रस्तुत संदर्भ में विचारणीय हैं। यहाँ हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों, यात्रा विवरणों, ललित

निबंधों तथा अन्य भारतीय भाषाओं से अनूदित साहित्य के आधार पर अपनी बात स्पष्ट की जा सकती है।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों में नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, देवेंद्र सत्यार्थी, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, बलभद्र ठाकुर, शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी की रचनाएँ विशेष उल्लेखीय हैं जिन्होंने अल्प ज्ञात और अज्ञात क्षेत्रों की जीवन प्रणालियों से हिन्दी जगत को परिचित कराया। नागार्जुन ने बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, वरुण के बेटे, दुख मोचन उपन्यासों द्वारा बिहार के मिथिला दरभंगा अंचलों के रहन-सहन, वेशभूता, लोक विश्वास, त्यौहार-पर्व, नृत्य-गीत रीति-रिवाज, राजनीतिक, आर्थिक चेतना आदि का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए स्थानीय जातियों का जीवन मूर्तिमान किया।

रेणु ने मैला आंचल, परती परिकथा, उपन्यास लिखकर बिहार के पूर्णिया जिले को साकार कर दिया। मैला आंचल की भाषागत विशेषता यह है कि उसमें स्थानीय नृत्यों एवं गीतों को हिन्दी शब्दों द्वारा बाँधने की चेष्ट की गई है। बोलचाल के लंबे-लंबे उदाहरण आंचलिक परिवेश (लोकल कलर) को उभारने के लिए रख गए हैं। उच्चारण के अनुसाद एक ही शब्द की भिन्न-भिन्न वर्तनी मिलती है, जो देशगत संस्कारों को रूपायित करती है। भाषा की यही विशेषता 'परती परिकथा-की है। उच्चारण के अनुसार एक ही शब्द की भिन्न-भिन्न वर्तनी मिलती है। जो देशगत संस्कारों को रूपायित करती है। भाषा की यही विशेषता 'परती परिकथा' की है जिसका एक उदाहरण देखा जा सकता है।

''दिल बहादुर अपनी सुनहली दंत पंक्तियों की आभा विखरा कर हंसा परबतिया बाला में बोला, पानी माँ म्यागुते हेरेरे काऊँ राउँ छ मीत! म त छक्क पने ... अचरज से घुड़कती हुई आँखे दिल बहादुर की ..... पानी में मेढकों को देखकर मीत उत्तेजित होकर चैन खुलवाने के लिए काऊँ काऊँ चिल्लाता है। दिल बहादुर अचरज में है! बेचारा मीत पहली बार गाँव की वर्षा देख रहा हैघ..... पोखरे में नहाते समय जब तैरता है, मीत, ठीक सुलहले बतक जैसा!

भैरवप्रसाद गुप्त ने 'सती मैया का चोरा' और गंगा मैया लिखकर उत्तर-प्रदेश के गाँव की बदलती हुई सामाजिक स्थिति का चित्रण किया। इसमें बोलचाल की भाषा अवसर के अनुकूल बदलती है जिससे तत्सम-तद्भव शब्द घुलमिल जाते हैं। गंगा मैया उस ग्राम चेतना को उभारती है, जो धीरे-धीरे चारों और फैल रही वार्तालाप करते समय सहज अंग्रेजी शब्द प्रयुक्त हो जाते हैं। संस्कृति का परिवेशगत चित्रण करते हुए भी इन उपन्यासों की भाषा 'रेणु' के

प्रयोगों की भाँति आंचलिक नहीं है। समग्र वातावरण का अंकन प्रमुख होने के कारण इनकी भाषा ग्रामीण जीवन को नागर जीवन से जोड़ती हुई प्रतीत होती है। प्रकारांतर से यह प्रेमचंद की भाषा का विकास माना जा सकता है।

शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास अलग-अलग वैतरिणी भोजपुरी अंचल की संस्कृति को प्रतिबिंबित करता है। हिन्दी में भोजपुरी को पुट तथा स्थानीय मुहावरों, कहावतों का अत्यधिक प्रयोग इसकी विशेषता है। उत्तर-प्रदेश के पर्वतीय अंचल कुमाऊँ की पृष्ठभूमि पर शैलेश मटियानी ने चिट्ठी रसैन, हौलदार, चौथी मुट्ठी जैसे सांस्कृतिक उपन्यास लिखकर अपनी पहचान बनाई। एक उपन्यास उगते सूरज की किरन में लोक गाथा (फोक इथिक) के मूल शिल्प को कथाकृति में उतारना एक अभिनव प्रयोग है जिससे ग्रामीण अंचलों की सांस्कृतिक रुचि का ज्ञान होता है। इस भाषा शिल्प का एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

'एहो, सुजनो! सुमंगला जो धरिंणी होती है, उसके क्या लक्षण होते हैं? पूरब दिशा खुलती है कि सुमंगला है कि सुमंगला धरिणी की पलकें उघड़ती हैं, बालकों के मुँह, पितरों के पाँवों को जोड़ी को हेरती हैं कि अन्नपूर्णा बहू सी आशीष देती है, सौ आशीष लेती है। जाई चमेली की कलियाँ हाथ में लेती है। हाथ हथेलियों को संगम देती है: परमेश्वर हो, दाहिने हो जाना, मेरी गोदी के छोनों को! इनके अदिन मेरे आंचल लगे, कि इनकी कुंडली में मेरे सुदिन जोड़ देना।

देवेंद्र सत्यार्थी और बलभद्र ठाकुर ने उत्तर पूर्वी सीमांत को अपने चित्रण का विषय बनाया जिससे हिन्दी का साक्षात्कार हिन्दीतर प्रदेशों से हुआ। देवेन्द्र सत्यार्थी ने ब्रह्मपुत्र में असम प्रदेश के लोकजीवन का चित्रण किया तथा वहाँ के निवासियों की धार्मिक एवं सामाजिक विषमताओं को उभारा। 'रथ के पहिए', 'दूधगाछ' उपन्यास लिखकर उन्होंने लोक संस्कृति द्वारा अन्यान्य पक्षों पर बल दिया। बलभद्र ठाकुर ने 'मुक्तावली' उपन्यास द्वारा मणिपुर के लोक विश्वासों, त्यौहारों, वस्त्राभूषण संबंधी शब्दावली से परिचित कराया। 'आदित्य नाथ' में कुलूवासियों का वर्णन करते हुए तथा नेपाल की वो बेटी' में सीमावर्ती दूसरे राज्य की समस्याओं को लेकर उनकी शब्द छटा लाने का प्रयत्न किया। इससे हिन्दी के शब्द भंडार की वृद्धि हुई। शब्द भंडार से भाषा की संग्रह शक्ति लक्षित होती है।

उदयशंकर भट्ट ने सागर लहरें और मनुष्य लिखकर बंबई के तटवर्ती मछलीमारों का सजीव वर्णन तो किया हो, वहाँ प्रचलित मराठी-गुजराती मिश्रित हिन्दी का प्रभावशाली प्रयोग भी किया। इस उपन्यास में मछुओं के वार्तालाप से

'जास्ती', 'बरोबर', 'चांगला' 'नक्की' जैसे मराठी शब्द हिन्दी में चले आए। भौगोलिक अंचलों की लीक से हट कर रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में नट जाति के आचार-विचारों का चित्रण किया। उन्होंने इसकी भूमिका में लिखा है।

असली भारत गांवों में जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों से ग्रस्त हें वे विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियंत्रित हैं। मैंने उनको प्रकट करने का यत्न किया है। हो सकता है कुछ विशेषताएँ राजस्थान की हों। इस से स्पष्ट है कि लेखक का उद्देश्य अन्य उपन्यासकारों की भाँति मात्र आंचलिकता को उभारना नहीं था। इस कारण सामान्य शब्दों की अपेक्षा नटों के आचार-विचार संबंधी शब्दों को प्रमुखता दी गई हे।

राजेन्द्र अवस्थी के दो उपन्यास 'सूरज किरन की छांव' और 'जंगल के फूल' वस्तर जिले की जनजातीय पृष्ठभूमि पर लिखे जाने के कारण उल्लेखनीय हैं। इसमें गोंड जाति के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन को उभार कर आदि जातियों की भूमि, जंगल संबंधी नीतियों पर प्रकाश डाला गया है। गोंडों के जीवन का केंद्र घोटुला है, जिसका चित्रण जंगल के फूल की विशेषता है। भाषा पूर्णत: आंचलिक रंग में रंगी है। ऐसी भाषा हिन्दी के सांस्कृतिक परिवेश को सचमुच उजागर करती है। एक वर्णन द्रष्टव्य है जिसमें पोरंद, झोरिया, पेडगा, गीकी जैसे नए शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

गढ़ बंगाल का धोटुला! नारायनपुर से सिर्फ तीन मील दूर दक्षिण में नाले के पार गांव से लगा, पर गांव के बाहर! दिन भर सोता रहता है। चिड़िया भी नजर नहीं आती पोरद पच्छिम की पहाड़ी से आँख मूदता है, इसके भाग जाग जाते हैं। नीद टूट जाती है। झोरिया आता है उसके साथ दो-तीन साथी। सब खरहरा उठाते हैं। घोटुला का कोना-कोना साफ कर जाते हैं। उसे जगा जाते हैं। वह आँख खोले किसी की प्रतीक्षा करता है। जब चाँद कुछ ऊपर आ जाता है, गाँव के कुत्ते रह रह कर भूँकने लगते हैं, तो गाँव की हर गैल घोटुल को जाती है। गाँव का हर पेड़गा और हर पेड़गी बगल में गीकी दबाकर घोटुक पहुँचता है।

जब तक यात्रा विवरणों का संबंध है, ये एक ओर तो दूर देशों रीति रिवाजों से परिचित कराते हैं, दूसरे हिन्दी की भाषा शैली को निखारते हैं। इन्होंने नई-नई शब्दावली दी है। राहुल सांकृत्यायन ने 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिखकर इस विषय का जीवन दर्शन प्रस्तुत किया था। इस प्रकार की रचनाओं में पैरा में पंख बांध-बांध कर' (रामवृक्ष बेनीपुरी) 'ठेले पर हिमालय' (धर्मवीर भारती), 'अरे खायावर

रहेगा याद' (अज्ञेय), 'हरी घाटी' (रघुवंश), 'आखिरी चट्टान' (मोहन राकेश), 'सुबह के रंग'(अमृत राय) आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इन विवरणों के माध्यम से भिन्न-भिन्न स्थापनों के रहन-सहन, भूगोल, संस्कृति संबंधी शब्दावली का अनायास समाकेश होता गया।

ललित निबंधों में भाषा की दृष्टि से पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शांतिप्रिय द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र आदि का योगदान महत्त्वपूर्ण है, फिर भी हजारीप्रसाद द्विवेदी इन सब में अग्रगण्य हैं। वे साधारण विषय से लेकर गम्भीर विषय तक समान अधिकार से लिख लेते थे। विषय चाहे जैसा हो, वे उसे भारतीय संस्कृति के उदात्त पक्ष से जोड़ देते थे। भारतीय संस्कृति की देन, मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है, हम क्या करें? 'राष्ट्रीय संकट और हमारा दायित्व शीर्षक उनके निंबध आज तक भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, द्विवेदी जी सदा सहज भाषा लिखने का समर्थन करते थे। वे मानते थे कि जब मनुष्य तपस्या, त्याग और आत्मबलिदान से सहज होता है तभी सहज भाषा का प्रयोग कर सकता है। देखा जाए तो एक प्रकार से उन्हीं की भाषा सांस्कृतिक हिन्दी का सर्वोत्तम उदाहरण उपस्थित करती है। कुबेरनाथ राय, विवेकीराय ने उनकी परंपरा को अग्रसर किया है।

विगत वर्षों में भारतीय साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवादों से हिन्दी भाषा का सांस्कृतिक रूप और पुष्ट हुआ है। उदाहरणार्थ, गणदेवता (ताराशंकर बंदोपाश्याय), अमृत संतान (गोपानाथ महाती), मूकज्जी (शिवराम कारंत), चित्राप्रिय (अखिलन), मृत्युजय (वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य), कथा एक प्रांतर की (एस. के. पोटेक्काट) जैसे प्रसिद्ध ग्रंथ लिए जा सकते हैं जिन्होंने बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु, असम और केरल के आंतरिक जन जीवन से हिन्दी भाषियों को परिचित कराया है 'गणदेवता' की कथावस्तु बंगाल के जिस ग्रामीण परिवेश से जुड़ी है उसकी गंध समूचे भारत की धरती तक व्याप्त है। इसे भारतीय नव जागरण का महाकाव्य ठीक ही कहा गया है। अनुवादक हंसकुमार तिवारी ने बंगला के देहाती मुहावरों को यथार्थ हिन्दी पर्याय दिए क्योंकि वे उस जीवन से संपृक्त थे।

इसी प्रकार 'अमृत संतान' लोक जीवन पर आधारित उड़िया भाषा का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास माना जाता है। 'मृत्युंजय सन् 1942 के स्वतंत्रता संग्राम में असम की भूमिका पर लिखित बहुचर्चित रचना है। उसके सामाजिक परिवेश से हिन्दी को कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। 'कथा एक प्रांतर की' यद्यपि केरल

प्रदेश के एक छोर पर बसने वाले व्यक्तियों के समाज और जीवन की कहानी है, किंतु वह विगत 50 वर्षों से बदलते हुए परिवेश की झाँकी प्रस्तुत करती है। ऐसी कृतियों के अनुवादों से हिन्दी भाषा की समाहार शक्ति बढ़ी है।

हिन्दी की सांस्कृतिक विशेषताओं को निखारने में हिन्दीतर लेखकों की हिन्दी रचनाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है जिसकी चर्चा न होने पर यह पर्यवेक्षण अधूरा रह जाएगा। मौलिक साहित्य सर्जना की दृष्टि से पंजाबी, मराठी, गुजराती, तेलुगु और तमिल भाषी साहित्यकारी हिन्दी में आगे रहे हैं। विगत दो-तीन दशकों से बंगला, उड़िया, असमिया, कन्नड़, और मलयालम के कवि, नाटककार, कथाकार, निबंधकार भी इधर अग्रसर हुए हैं। मराठी के अनंत गोपाल शेवड़े उपन्यास लेखन में अग्रणी थे जिसकी 'ज्वालामुखी', 'भंग्न मंदिर', 'मृगजल', 'अमृतकुंभ' नामक कृतियाँ कई बार पुरस्कृत हुई। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन करने में उनका प्रमुख योगदान था।

पंजाबी के सुदर्शन, यशपाल, देवेद्र सत्यार्थी, अश्क, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती हिन्दी लेखक के कारण विशेष समादूत हुए हैं। तेलुगु भाषी लेखकों में आरिगपूडि तथा बालशौरि रेड्डी ने एकाधिक उपन्यास, कहानियाँ लिखी हैं। जी. सुंदर रेड्डी, भीमसेन निर्मल, संगमेशम् ने संदर निबंध लिखे हैं। तमिल के शंकरराजू नायडू, एस. एन. गणेशन, न.वी. राजगोपालन्, सरस्वती रामनाथन ने हिन्दी मौलिक लेखक में ख्याति प्राप्त की है। 'इधर असमिया के चित्र महंत, मलयालम के चंद्रशेखरन नायर, कन्नड़ के नागप्पा, गुजराती के नित्यानंद पटेल आदि के लेखों से हिन्दी के विकासोन्मुख स्थिति का परिचय मिलता है। इन लेखकों ने अपने-अपने क्षेत्रीय परिवेश को विशेष रूप से उभारने का प्रयत्न किया है जिस कारण हिन्दी को कुछ नए मुहावरे प्राप्त हुए हैं।

अब देखना यह है कि विभिन्न सांस्कृतिक तत्त्वों को लेकर विकसित यह हिन्दी भाषिक संरचना की दृष्टि से कहाँ तक प्रभावित हुई है? यहाँ पर हिन्दी के अर्थात् खड़ी बोली हिन्दी के मानक स्वरूप को सामने रख कर उसके साथ हिन्दी के इस सांस्कृतिक स्वरूप की तुलना करनी होगी। यह तुलना शब्द भंडार के धरातल पर, ध्वन्यात्मक धरातल पर की जा सकती है। यहाँ इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है।

फिर भी इतना संकेत कर देना चाहिए कि भारतीय भाषाओं के विभिन्न सांस्कृतिक तत्त्वों ने हिन्दी के शब्द भंडार को जितना प्रभावित किया है उतना उसके वाक्य विन्यास को प्रभावित नहीं किया। हिन्दी ने लोक भाषाओं की

विशिष्ट शब्दावली, आंचलिक, गीतकथा शिल्प, मुहावरों, कहावतों, आदि को पर्याप्त ग्रहण किया है, किंतु उनकी लयात्मक पदावली और मूल प्रयोगों को अपेक्षाकृत कम ग्रहण किया है।

इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दी अपने मानक रूप में विभिन्न सांस्कृतिक तत्त्वों को स्वीकार करते समय बोलचाल की भाषा के निकट आती जा रही है, किंतु अब वह बोली मात्र नहीं रह गई है। भारतेंदुकालीन हिन्दी से भिन्न एक-दूसरे स्तर पर, श्रेष्ठ साहित्य के सर्जनात्मक स्तर पर, वह बोलचाल के समीप पहुँच रही है। वह अन्यान्य बोलियों के देशगत प्रयोगों के रचनात्मक तत्त्व लेकर समन्वित हो रही है।

राष्ट्रीय धरातल पर हिन्दी की संग्राहिका शक्ति बढ़ाने से उसका सांस्कृतिक पक्ष अधिक परिपुष्ट होता है। उसके विकास की अभी अपार संभावनाएँ हैं जिसे प्रति लेखक निरंतर सचेष्ट हैं। सांस्कृतिक भाषा ही किसी देश की संपर्क भाषा होती है, इसमें कोई संदेह नहीं और वर्तमान संदर्भ में हिन्दी ने इसके पर्याप्त गुण अर्जित कर लिए हैं। निश्चय ही हिन्दी भाषा की यह समाहार शक्ति हमारे देश की भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने में सहायक होगी।

3

हिंदी व्याकरण

हिंदी व्याकरण, हिंदी भाषा को शुद्ध रूप में लिखने और बोलने संबंधी नियमों का बोध कराने वाला शास्त्र है। यह हिंदी भाषा के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें हिंदी के सभी स्वरूपों का चार खंडों के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है, यथा–वर्ण विचार के अंतर्गत ध्वनि और वर्ण तथा शब्द विचार के अंतर्गत शब्द के विविध पक्षों संबंधी नियमों और वाक्य विचार के अंतर्गत वाक्य संबंधी विभिन्न स्थितियों एवं छंद विचार में साहित्यिक रचनाओं के शिल्पगत पक्षों पर विचार किया गया है।

व्याकरण का अर्थ

व्याकरण का अर्थ है व्यांक्रियन्ते। व्याकरण के द्वारा किसी भी विषय को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। व्याकरण किसी विषय को भली प्रकार से समझने के लिए किया जाता है। जो विषय छात्रों की समझ से बाहर होता है उसको व्याकरण के माध्यम से सीखा जाना अति लाभदायक सिद्ध होता है। व्याकरण भाषा का ही एक रूप है। व्याकरण को भाषा न कहकर भाषा का ही एक स्वरूप कहा जाता है। यह भाषा शासक के रूप में बल्कि अनुशासक के रूप में हिन्दी शिक्षण कला में प्रयुक्त की जाती हैं।

व्याकरण की परिभाषा

पंतजलि के अनुसार–''महाभाष्य में व्याकरण (शब्दानुशासन) कहा है।''

डॉ. स्वीट के अनुसार–''व्याकरण भाषा का व्यवहारिक विश्लेषण अथवा उसका शरीर विज्ञान है।''

जैगर के अनुसार–''प्रचलित भाषा संबंधी नियमों की व्याख्या ही व्याकरण है।''

व्याकरण की विशेषताएँ

- व्याकरण भाषा की शुद्धता का साधन है साध्य नही।
- व्याकरण भाषा का अंगरक्षक तथा अनुशासक है।
- व्याकरण वास्तव में 'शब्दानुशासन' ही है।
- व्याकरण भाषा के स्वरूप की सार्थक व्यवस्था करता है।
- व्याकरण भाषा का शरीर विज्ञान है तथा व्यावहारिक विश्लेषण करता है।
- गद्य साहित्य का आधार व्याकरण है।
- भाषा की पूर्णता के लिए-पढ़ना, लिखना, बोलना तथा सुनना चारों कौशलों की शुद्धता व्याकरण के नियमों से आती हैं।
- भाषा की मितव्ययिता भी व्याकरण से होती है।
- वाक्य की संरचना शुद्धता उस भाषा के व्याकरण से आती है।
- व्याकरण से नवीन भाषा को सीखने में सरलता एवं सुगमता होती है।

व्याकरण शिक्षण की आवश्यकता

व्याकरण की शिक्षा, भाषा-शिक्षण का अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण अंग है। व्याकरण भाषा का दिशा-निर्देशन करता है और उसे सरलता से अपेक्षित लक्ष्य तक पहुँचाता है।

व्याकरण के नियमों का ज्ञान, छात्रों में 'मौलिक' वाक्य संरचना की योग्यता का विकास करता है। भाषा की मितण्ययिता के आधार हेतु व्याकरण के नियमों का ज्ञान आावश्यक है। छात्रों में भाषा शुद्ध, लिखने, बोलने के कौशल का विकास करती है।

भाषा का शुद्ध रूप पहचानने में छात्रों को सक्षम बनाना ही व्याकरण का मुख्य उद्देश्य है। व्याकरण-शिक्षा से मातृभाषा के प्रयोग-लिखने, बोलने में शुद्धता आती है। मातृभाषा में व्याकरण के उपयोग से शुद्ध एवं स्पषट व्यवहार आता है। शुद्ध सम्प्रेषण व्याकरण के उपयोग पर निर्भर होता है।

भावों की स्पषटता भाषा पर निर्भर है और भाषा की शुद्धता व्याकरण पर। व्याकरण भाषा का संगठन करता है। व्याकरण की जानकारी के बिना भाषा शुद्ध नहीं हो सकती। इसी कारण व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है।

व्याकरण के प्रकार

आज ज्ञान के क्षेत्र में विस्फोट हो रहा है। समस्त अध्ययन क्षेत्रों में ज्ञान में वृद्धि अधिक तीव्रता से हो रही है। इसका प्रभाव व्याकरण के ज्ञान पर भी हुआ है। भाषा वैज्ञानिक 'चौमस्की' में एक नवीन व्याकरण का विकास किया है जिसे'व्यावहारिक व्याकरण' की संज्ञा दी जाती है इस प्रकार के व्याकरण में नियमों के अनुसरण की अपेक्षा 'व्यवहारिकता' अथवा प्रचलन को विशेष महत्त्व दिया है।

शास्त्रीय या सैद्धांन्तिक व्याकरण

विद्वानों ने वाक्य संरचना, ध्वनि, स्वर आदि के व्याकरण के नियमों एवं सिद्धांतों की रचना की है उनका ज्ञान छात्रों को दिया जाता है। तथा छात्रों को भी अवसर देते हैं वे भी वाक्य संरचना में उनका प्रयोग करें तथा वाक्य की संरचना में घटकों-कर्ता, क्रिया, कर्म, विशेषण, संज्ञा सर्वनाम, क्रिया-विशेषण की पहिचान करे। व्याकरण के नियमों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसमें भाषा की शुद्धता को प्राथमिकता दी जाती हैं।

प्रासंगिक व्याकरण

इस प्रकार के व्याकरण में शुद्ध स्पषट अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाता है। इसमें भाषा की दृष्टि से अशुद्धियाँ रहती है, परन्तु अपेक्षाकृत कम रहती है। गद्य साहित्य में कहानीकार अपितु सम्प्रेषण की प्रभावशीलता एवं अभिव्यक्ति पर विशेष ध्यान देते हैं।

हिन्दी वर्णमाला

हिन्दी भाषा में जितने वर्ण प्रयुक्त होते हैं, उन वर्णों के समूह को 'हिन्दी-वर्णमाला' कहा जाता है।

स्वर–स्वतंत्र रूप से बोले जाने वाले वर्ण स्वर कहलाते हैं।

व्यंजन–स्वरों की सहायता से बोले जाने वाले वर्ण व्यंजन कहलाते हैं।

शब्द वर्ण-समूह या ध्वनि-समूह को 'शब्द' कहते हैं।

शब्द दो प्रकार के होते हैं-सार्थक और निरर्थक।

सार्थक शब्द–किसी निश्चित अर्थ का बोध कराने वाले शब्दों को सार्थक शब्द कहा जाता है।

जैसे-आना, ऊपर, जाना, पाना आदि।

निरर्थक शब्द–किसी निश्चित अर्थ का बोध नहीं कराने वाले शब्दों को निरर्थक शब्द कहा जाता है।

विकारी शब्द–वह शब्द जो लिंग, वचन, कारक आदि से विकृत हो जाते हैं विकारी शब्द होते हैं।

जैसे-मैं, मुझ, मुझे, मेरा, अच्छाघ अच्छे आदि।

अविकारी शब्द

वह शब्द जो लिंग, वचन, कारक आदि से कभी विकृत नहीं होते हैं अविकारी शब्द होते हैं।

इनको 'अव्यय' भी कहा जाता है।

संज्ञा

यह सार्थक वर्ण–समूह शब्द कहलाता है। किंतु जब इसका प्रयोग वाक्य में होता है तो वह व्याकरण के नियमों में बँध जाता है और इसका रूप भी बदल जाता है।

शब्द और पद

सार्थक वर्ण-समूह शब्द कहलाता है, किंतु जब इसका प्रयोग वाक्य में होता है तो वह व्याकरण के नियमों में बँध जाता है और इसका रूप भी बदल जाता है। जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होता है तो उसे शब्द न कहकर पद कहा जाता है। हिन्दी में पद पाँच प्रकार के होते हैं–

- संज्ञा
- सर्वनाम
- विशेषण
- क्रिया
- अव्यय

संज्ञा

किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु आदि तथा नाम के गुण, धर्म, स्वभाव का बोध कराने वाले शब्द को संज्ञा कहते हैं। जैसे–'याम, आम, मिठास, हाथी आदि।

संज्ञा सार्थक शब्दों के आठ भेदों में एक भेद है।

व्याकरण में संज्ञा एक विकारी शब्द है।

संज्ञा के प्रकार

संज्ञा के तीन भेद हैं–

- व्यक्तिवाचक संज्ञा।
- जातिवाचक संज्ञा।
- भाववाचक संज्ञा।

व्यक्तिवाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से किसी विशेष, व्यक्ति, प्राणी, वस्तु अथवा स्थान का बोध हो उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–जयप्रकाश नारायण, श्रीकृष्ण, रामायण, ताजमहल, कुतुबमीनार, लालकलिा, हिमालय आदि।

जातिवाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से उसकी संपूर्ण जाति का बोध हो उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–मनुष्य, नदी, नगर, पर्वत, पशु, पक्षी, लड़का, कुत्ता, गाय, घोड़ा, भैंस, बकरी, नारी, गाँव आदि।

भाववाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से पदार्थों की अवस्था, गुण-दोष, धर्म आदि का बोध हो उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–बुढ़ापा, मिठास, बचपन, मोटापा, चढ़ाई, थकावट आदि।

कुछ विद्वान अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव के कारण संज्ञा शब्द के दो भेद और बतलाते हैं–

- समुदायवाचक संज्ञा।
- द्रव्यवाचक संज्ञा।
- समुदायवाचक संज्ञा

जिन संज्ञा शब्दों से व्यक्तियों, वस्तुओं आदि के समूह का बोध हो उन्हें समुदायवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–सभा, कक्षा, सेना, भीड़, पुस्तकालय, दल आदि।

द्रव्यवाचक संज्ञा–जिन संज्ञा-शब्दों से किसी धातु, द्रव्य आदि पदार्थों का बोध हो उन्हें द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–घी, तेल, सोना, चाँदी, पीतल, चावल, गेहूँ, कोयला, लोहा आदि।

भाववाचक संज्ञा बनाना

भाववाचक संज्ञाएँ चार प्रकार के शब्दों से बनती हैं। जैसे–

जातिवाचक संज्ञा से

दास = दासता
पंडित = पांडित्य
बंधु = बंधुत्व
क्षत्रिय = क्षत्रियत्व
पुरुष = पुरुषत्व
प्रभु = प्रभुता
पशु = पशुता,पशुत्व
ब्राह्मण = ब्राह्मणत्व
मित्र = मित्रता

सर्वनाम से संज्ञा बनाना

अपना = अपनापन, अपनत्व
निज = निजत्व,निजता
पराया = परायापन
स्व = स्वत्व
सर्व = सर्वस्व

विशेषण से संज्ञा बनाना

मीठा = मिठास
चतुर = चातुर्य, चतुराई
मधुर = माधुर्य
सुंदर = सौंदर्य, सुंदरता

क्रिया से संज्ञा बनाना

खेलना = खेल
थकना = थकावट
लिखना = लेख
हँसना = हँसी

सर्वनाम–संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द को सर्वनाम कहते हैं। संज्ञा की पुनरुक्ति न करने के लिए सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। जैसे–मैं, तू, तुम, आप, वह, वे आदि।

सर्वनाम सार्थक शब्दों के आठ भेदों में एक भेद हैं।

व्याकरण में सर्वनाम एक विकारी शब्द हैं।

सर्वनाम के भेद

सर्वनाम के छह प्रकार के भेद हैं–

पुरुषवाचक सर्वनाम।

निश्चयवाचक सर्वनाम।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम।

संबंधवाचक सर्वनाम।

प्रश्नवाचक सर्वनाम।

निजवाचक सर्वनाम।

पुरुषवाचक सर्वनाम

जिस सर्वनाम का प्रयोग वक्ता या लेखक द्वारा स्वयं अपने लिए अथवा किसी अन्य के लिए किया जाता है, वह 'पुरुषवाचक सर्वनाम' कहलाता है। पुरुषवाचक सर्वनाम तीन प्रकार के होते हैं–

उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला स्वयं के लिए करता है, उसे उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम कहा जाता हैं। जैसे–मैं, हम, मुझे, हमारा आदि।

मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला श्रोता के लिए करे, उसे मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे–तू, तुम, तुझे, तुम्हारा आदि।

अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला श्रोता के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के लिए करे, उसे अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-वह, वे, उसने, यह, ये, इसने, आदि।

निश्चयवाचक सर्वनाम

जो (शब्द)सर्वनाम किसी व्यक्ति, वस्तु आदि की ओर निश्चयपूर्वक संकेत करें वे निश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। जैसे-'यह', 'वह', 'वे'

सर्वनाम शब्द किसी विशेष व्यक्ति का निश्चयपूर्वक बोध करा रहे हैं, अत: ये निश्चयवाचक सर्वनाम है।

उदाहरण

- यह पुस्तक सोनी की है।
- ये पुस्तकें रानी की हैं।
- वह सड़क पर कौन आ रहा है।
- वे सड़क पर कौन आ रहे हैं।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

जिन सर्वनाम शब्दों के द्वारा किसी निश्चित व्यक्ति अथवा वस्तु का बोध न हो वे अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। जैसे-'कोई' और 'कुछ' आदि सर्वनाम शब्द। इनसे किसी विशेष व्यक्ति अथवा वस्तु का निश्चय नहीं हो रहा है। अत: ऐसे शब्द अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

उदाहरण

- द्वार पर कोई खड़ा है।
- कुछ पत्र देख लिए गए हैं और कुछ देखने हैं।

संबंधवाचक सर्वनाम

परस्पर सबंध बतलाने के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग होता है उन्हें संबंधवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-'जो', 'वह', 'जिसकी', 'उसकी', 'जैसा', 'वैसा' आदि।

उदाहरण

जो सोयेगा, सो खोयेगा, जो जागेगा, सो पावेगा।
जैसी करनी, तैसी पार उतरनी।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

जो सर्वनाम संज्ञा शब्दों के स्थान पर भी आते हैं और वाक्य को प्रश्नवाचक भी बनाते हैं, वे प्रश्नवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। जैसे-क्या, कौन आदि।

उदाहरण

तुम्हारे घर कौन आया है?
दिल्ली से क्या मँगाना है?

निजवाचक सर्वनाम

जहाँ स्वयं के लिए 'आप', 'अपना' अथवा 'अपने', 'आप' शब्द का प्रयोग हो वहाँ निजवाचक सर्वनाम होता है। इनमें 'अपना' और 'आप' शब्द उत्तम, पुरुष मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष के (स्वयं का) अपने आप का ज्ञान करा रहे शब्द हें जिन्हें निजवाचक सर्वनाम कहते हैं।

विशेष

जहाँ 'आप' शब्द का प्रयोग श्रोता के लिए हो वहाँ यह आदर-सूचक मध्यम पुरुष होता है और जहाँ 'आप' शब्द का प्रयोग अपने लिए हो वहाँ निजवाचक होता है।

उदाहरण

- राम अपने दादा को समझाता है।
- श्यामा आप ही दिल्ली चली गई।
- राधा अपनी सहेली के घर गई है।
- सीता ने अपना मकान बेच दिया है।

सर्वनाम शब्दों के विशेष प्रयोग

आप, वे, ये, हम, तुम शब्द बहुवचन के रूप में हैं, किन्तु आदर प्रकट करने के लिए इनका प्रयोग एक व्यक्ति के लिए भी किया जाता है।

'आप' शब्द स्वयं के अर्थ में भी प्रयुक्त हो जाता है। जैसे-मैं यह कार्य आप ही कर लूँगा।

विशेषण–संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों की विशेषता (गुण, दोष, संख्या, परिमाण आदि) बताने वाले शब्द 'विशेषण' कहलाते हैं।

जैसे–बड़ा, काला, लंबा, दयालु, भारी, सुन्दर, कायर, टेढ़ा-मेढ़ा, एक, दो आदि।

- विशेषण सार्थक शब्दों के आठ भेदों में एक भेद है।
- व्याकरण में विशेषण एक विकारी शब्द है।

विशेष्य

जिस संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्द की विशेषता बताई जाए वह विशेष्य कहलाता है।

यथा–गीता सुन्दर है। इसमें 'सुन्दर' विशेषण है और 'गीता' विशेष्य है।

विशेषण शब्द विशेष्य से पूर्व भी आते हैं और उसके बाद भी।

पूर्व में, जैसे–

थोड़ा-सा जल लाओ।

एक मीटर कपड़ा ले आना।

बाद में, जैसे–

यह रास्ता लंबा है।

खीरा कड़वा है।

विशेषण के भेद

विशेषण के चार भेद हैं–

गुणवाचक।

परिमाणवाचक।

संख्यावाचक।

संकेतवाचक अथवा सार्वनामिक।

गुणवाचक विशेषण

जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों के गुण-दोष का बोध हो वे गुणवाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे–

क्रम	विशेषण	संज्ञा अथवा सर्वनाम
1.		भाव अच्छा, बुरा, कायर, वीर, डरपोक आदि।
2.	रंग	लाल, हरा, पीला, सफेद, काला, चमकीला, फीका आदि।
3.		दशा पतला, मोटा, सूखा, गाढ़ा, पिघला, भारी, गीला, गरीब, अमीर, रोगी, स्वस्थ, पालतू आदि।
4.	आकार	गोल, सुडौल, नुकीला, समान, पोला आदि।
5.	समय	अगला, पिछला, दोपहर, संध्या, सवेरा आदि।

6.		स्थान भीतरी, बाहरी, पंजाबी, जापानी, पुराना, ताजा, आगामी आदि।
7.	गुण	भला, बुरा, सुन्दर, मीठा, खट्टा, दानी,सच, झूठ, सीधा आदि।
8.	दिशा	उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी आदि।

परिमाणवाचक विशेषण

जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा या सर्वनाम की मात्रा अथवा नाप-तोल का ज्ञान हो वे परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं।

परिमाणवाचक विशेषण के दो उपभेद हैं–

(i) निश्चित परिमाणवाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से वस्तु की निश्चित मात्रा का ज्ञान हो। जैसे–

(क) मेरे सूट में साढ़े तीन मीटर कपड़ा लगेगा। (ख) दस किलो चीनी ले आओ। (ग) दो लिटर दूध गरम करो।

(ii) अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण-जिन विशेषण शब्दों से वस्तु की अनिश्चित मात्रा का ज्ञान हो। जैसे–

(क) थोड़ी-सी नमकीन वस्तु ले आओ। (ख) कुछ आम दे दो। (ग) थोड़ा-सा दूध गरम कर दो।

संख्यावाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा या सर्वनाम की संख्या का बोध हो वे संख्यावाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे–एक, दो, द्वितीय, दुगुना, चौगुना, पाँचों आदि।

संख्यावाचक विशेषण के दो उपभेद हैं–

निश्चित संख्यावाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से निश्चित संख्या का बोध हो। जैसे–दो पुस्तकें मेरे लिए ले आना।

निश्चित संख्यावाचक के निम्नलिखित चार भेद हैं–

(क) गणवाचक–जिन शब्दों के द्वारा गिनती का बोध हो। जैसे–

(1) एक लड़का स्कूल जा रहा है।
(2) पच्चीस रुपये दीजिए।
(3) कल मेरे यहाँ दो मित्र आएँगे।
(4) चार आम लाओ।

(ख) क्रमवाचक–जिन शब्दों के द्वारा संख्या के क्रम का बोध हो। जैसे–

(1) पहला लड़का यहाँ आए।
(2) दूसरा लड़का वहाँ बैठे।
(3) राम कक्षा में प्रथम रहा।
(4) श्याम द्वितीय श्रेणी में पास हुआ है।

(ग) आवृत्तिवाचक–जिन शब्दों के द्वारा केवल आवृत्ति का बोध हो। जैसे–

(1) मोहन तुमसे चौगुना काम करता है।
(2) गोपाल तुमसे दुगुना मोटा है।

(घ) समुदायवाचक–जिन शब्दों के द्वारा केवल सामूहिक संख्या का बोध हो। जैसे–

(1) तुम तीनों को जाना पड़ेगा।
(2) यहाँ से चारों चले जाओ।

अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण

जिन विशेषण शब्दों से निश्चित संख्या का बोध न हो। जैसे-कुछ बच्चे पार्क में खेल रहे हैं।

संकेतवाचक विशेषण

जो सर्वनाम संकेत द्वारा संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं वे संकेतवाचक विशेषण कहलाते हैं।

विशेष–क्योंकि संकेतवाचक विशेषण सर्वनाम शब्दों से बनते हैं, अत: ये सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं। इन्हें निर्देशक भी कहते हैं।

परिमाणवाचक और संख्यावाचक विशेषण में अंतर

जिन वस्तुओं की नाप-तोल की जा सके उनके वाचक शब्द परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे-'कुछ दूध लाओ'। इसमें 'कुछ' शब्द तोल के लिए आया है। इसलिए यह परिमाणवाचक विशेषण है।

जिन वस्तुओं की गिनती की जा सके उनके वाचक शब्द संख्यावाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे-कुछ बच्चे इधर आओ। यहाँ पर 'कुछ' बच्चों की

गिनती के लिए आया है। इसलिए यह संख्यावाचक विशेषण है। परिमाणवाचक विशेषणों के बाद द्रव्य अथवा पदार्थवाचक संज्ञाएँ आएँगी जबकि संख्यावाचक विशेषणों के बाद जातिवाचक संज्ञाएँ आती हैं।

सर्वनाम और सार्वनामिक विशेषण में अंतर

जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा शब्द के स्थान पर हो उसे सर्वनाम कहते हैं। जैसे-वह मुंबई गया। इस वाक्य में वह सर्वनाम है। जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा से पूर्व अथवा बाद में विशेषण के रूप में किया गया हो उसे सार्वनामिक विशेषण कहते हैं। जैसे-वह रथ आ रहा है। इसमें वह शब्द रथ का विशेषण है। अत: यह सार्वनामिक विशेषण है।

विशेषण की अवस्थाएँ

विशेषण शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं। विशेषता बताई जाने वाली वस्तुओं के गुण-दोष कम-ज्यादा होते हैं। गुण-दोषों के इस कम-ज्यादा होने को तुलनात्मक ढंग से ही जाना जा सकता है। तुलना की दृष्टि से विशेषणों की निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ होती हैं–

(i) मूलावस्था,
(ii) उत्तरावस्था,
(iii) उत्तमावस्था।

मूलावस्था

मूलावस्था में विशेषण का तुलनात्मक रूप नहीं होता है। वह केवल सामान्य विशेषता ही प्रकट करता है। जैसे–

- सावित्री सुंदर लड़की है।
- सुरेश अच्छा लड़का है।
- सूर्य तेजस्वी है।

उत्तरावस्था

जब दो व्यक्तियों या वस्तुओं के गुण-दोषों की तुलना की जाती है तब विशेषण उत्तरावस्था में प्रयुक्त होता है। जैसे–

- रवीन्द्र चेतन से अधिक बुद्धिमान है।
- सविता रमा की अपेक्षा अधिक सुन्दर है।

उत्तमावस्था–उत्तमावस्था में दो से अधिक व्यक्तियों एवं वस्तुओं की तुलना करके किसी एक को सबसे अधिक अथवा सबसे कम बताया गया है। जैसे–

पंजाब में अधिकतम अन्न होता है।

संदीप निकृष्टतम बालक है।

विशेष–केवल गुणवाचक एवं अनिश्चित संख्यावाचक तथा निश्चित परिमाणवाचक विशेषणों की ही ये तुलनात्मक अवस्थाएँ होती हैं, अन्य विशेषणों की नहीं।

क्रिया–जिन शब्दों से किसी कार्य या व्यापार के होने या किए जाने का बोध होता है उन्हें क्रिया कहते हैं।

जैसे-उठना, बैठना, सोना जागना।

क्रियाविशेषण–जिन अविकारी शब्दों से क्रिया की विशेषता का बोध होता है वे क्रियाविशेषण कहलाते हैं।

सम्बन्धबोधक–जो अविकारी शब्द संज्ञा या सर्वनाम शब्दों के पहले या पीछे आकर उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी अन्य शब्द से कराते हैं, उन्हें सम्बन्धबोधक कहते हैं।

जैसे-पूर्वक, और, वास्ते, तुल्य, समान आदि।

समुच्यबोधक

व्याकरण में समुच्यबोधक एक अविकारी शब्द है।

जो अविकारी शब्द दो शब्दों, दो वाक्यों अथवा दो वाक्यों खण्डों को जोड़ते हैं, उन्हें समुच्यबोधक कहते हैं।

जैसे-वह यहाँ अवश्य आता, परन्तु बीमार था।

विस्मयादिबोधक–जो अविकारी शब्द हर्ष, शोक, आश्चर्य, घृणा, क्रोध, तिरस्कार आदि भावों का बोध कराते हैं, उन्हें विस्मयादिबोधक कहते हैं।

जैसे-वाह, ओह, हाय आदि।

कारक–कारक शब्द का अर्थ है क्रिया को करने वाला अर्थात् क्रिया को पूरी करने में किसी न किसी भूमिका को निभाने वाला।

कर्ता कारक–क्रिया करने वाले को कर्ता कहते हैं। यह स्वतंत्र होता है। इसमें 'ने' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे–

- राजेन्द्र ने पत्र भेजा है।
- मैंने भोजन किया है।

कहीं-कहीं वाक्य में कर्ता कारक के 'ने' चिह्न का लोप भी रहता है। जैसे–

- राम रोटी खाता है।
- मैं जाता हूँ।

कर्म कारक–जिस पर क्रिया के व्यापार का प्रभाव पड़ता है। उसे कर्म कारक कहते हैं। इसमें 'को' विभक्ति चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे–

- गोपाल ने राधा को बुलाया है।
- उसने पानी को छाना है।
- कुछ वाक्यों में कर्म कारक के चिह्न 'को' का लोप भी रहता है। जैसे–

• श्याम पुस्तक पढ़ता है।
• मेरे द्वारा यह कार्य हुआ है।

करण कारक

जिसके द्वारा क्रिया होती है, उसे करण कारक कहते हैं। करण कारक के विभक्ति चिह्न 'से, द्वारा' हैं। जैसे–

- कलम से पत्र लिखा है।
- मेरे द्वारा कार्य हुआ है।

सम्प्रदान कारक–जिसके लिए क्रिया की जाती है अथवा जिसे कोई वस्तु दी जाती है, वहाँ सम्प्रदान कारक होता है। इसके विभक्ति चिह्न 'के लिए' और 'को' हैं। जैसे–

- भूखे के लिए रोटी लाओ।
- राज ज्ञानू को पुस्तक देता है।
- मैं बाजार को जा रहा हूँ।

अपादान कारक–जहाँ एक संज्ञा का दूसरी संज्ञा से अलग होना सूचित होता है, वहाँ अपादान कारक होता है। इसका विभक्ति चिह्न 'से' है। जैसे–

- पेड़ से पत्ते गिरे।
- लड़का छत से गिरा है।
- मैं बैंक से रुपया लाया हूँ।

सम्बन्ध कारक–जहाँ एक संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध दूसरी संज्ञा या सर्वनाम से सूचित होता है, वहाँ सम्बन्ध कारक होता है। इसके विभक्ति चिह्न का, की, केय रा, री, रेय ना, नी, ने हैं। जैसे–

- राम का लड़का, श्याम की लड़की, गीता के बच्चे।
- मेरा लड़का, मेरी लड़की, हमारे बच्चे।
- अपना लड़का, अपना लड़की, अपने लड़के।

अधिकरण कारक–जहाँ कोई संज्ञा या सर्वनाम किसी अन्य संज्ञा या सर्वनाम का आधार हो, वहाँ अधिकरण कारक होता है। इसके विभक्ति चिह्न 'में, पर' हैं। जैसे–

- महल में दीपक जल रहा है।
- छप पर कपड़े सूख रहे हैं।
- मुझमें शक्ति बहुत कम है।

सम्बोधन कारक–जहाँ पुकारने, चेतावनी देने या ध्यान आकर्षित करने के लिए किसी को सम्बोधित किया जाता है, वहाँ सम्बोधन कारक होता है। इसके विभक्ति चिह्न 'हे, अरे, अजी' हैं। जैसे–

- हे ईश्वर! कृपा करो।
- अरे मोहन! इधर आओ।
- अजी! तुम उसे क्या मारोगे?

काल–क्रिया के व्यापार का समय सूचित करने वाले क्रिया रूप को 'काल' कहते हैं।

1. **वर्तमान काल**–काल के जिस क्रिया रूप से कार्य के अभी होने का बोध होता है, उसे वर्तमान काल कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं–

(i) सामान्य वर्तमान–क्रिया के जिस रूप से कार्य की अभी पूर्णता या अपूर्णता का ज्ञान न हो उसे सामान्य वर्तमान काल कहते हैं। जैसे–

- राम घर जाता है।
- मैं पुस्तक पढ़ता हूँ।
- वह गेंद खेलता है।

(ii) अपूर्ण वर्तमान–काल के जिस क्रिया रूप द्वारा यह बोध होता है कि कार्य इसी समय किया जा रहा है या कार्य लगातार हो रहा है, उसे अपूर्ण वर्तमान काल कहते हैं। जैसे–

- श्याम गेंद खेल रहा है।
- मैं भोजन कर रहा हूँ।
- वह घर जा रहा है।

(iii) पूर्ण वर्तमान–काल के जिस क्रिया रूप द्वारा यह बोध होता है कि कार्य अभी पूर्ण हुआ है। उसे पूर्ण वर्तमान काल कहते हैं। जैसे–

- मोहन ने किताब पढ़ी है।
- मैंने फल खाये हैं।
- उसने गेंद खेली है।

2. भूतकाल–काल के जिस क्रिया रूप द्वारा कार्य के अतीत (बीते हुए समय) में होने का बोध होता है, उसे भूतकाल कहते हैं। भूतकाल के भी तीन भेद होते हैं–

(i) सामान्य भूत–काल के जिस क्रिया रूप द्वारा अतीत में कार्य की पूर्णता या अपूर्णता का बोध न हो, उसे सामान्य भूतकाल कहते हैं। जैसे–

- मोहन घर गया।
- मैंने जहाज देखा।
- उसने रोटी खाई।

(ii) अपूर्ण भूत–काल के जिस क्रिया रूप द्वारा यह बोध होता है कि कार्य अतीत में पूरा नहीं हुआ, अपितु नियमित रूप से जारी रहा, उसे अपूर्ण भूत कहते हैं। जैसे–

- मोहन मैदान में घूम रहा था।
- मैं साल में एक बार घर जाता था।
- वह हॉकी खेल रहा था।

(iii) पूर्ण भूत–काल के जिस क्रिया रूप द्वारा यह बोध होता है कि कार्य एक निश्चित समय से पहले ही पूरा हो चुका था, उसे पूर्ण भूत कहते हैं। जैसे–

- पद्मा ने नृत्य किया था।
- मैंने सिनेमा देखा था।
- वह दिल्ली गया था।

3. भविष्यत् काल–काल के जिस क्रिया रूप द्वारा यह बोध होता है कि कार्य आगे आने वाले समय में होगा, उसे भविष्यत् काल कहते हैं। जैसे–

- ज्ञानू दिल्ली जायेगा।
- मीनू आम लायेगा।
- राजू देर तक पढ़ेगा।
- वह कहानी सुनायेगा।

संधि

पास-पास स्थित पदों के समीप विद्यमान वर्णों के मेल से होने वाले विकार को संधि कहते हैं। संधि के तीन भेद होते हैं-स्वर संधि, व्यंजन संधि और विसर्ग संधि।

स्वर संधि–पास-पास स्थित दो स्वरों के मेल से होने वाले विकार को स्वर संधि कहते हैं। जैसे–

सुर+अरि = सुरारि अ+अ = आ
विद्या+आलय = विद्यालय आ+आ = आ
मुनि+इन्द्र = मुनीन्द्र इ+इ = ई
श्री+ईश = श्रीश ई+ई+ = ई
गुरु+उपदेश = गुरुपदेश उ+उ = ऊ

व्यंजन संधि

पास-पास स्थित दो व्यंजनों के मेल से होने वाले विकार को व्यंजन संधि कहते हैं। जैसे–

जगत्+नाथ = जगन्नाथ त्+न = न्न
सत्+जन = सज्जन त्+ज = ज्ज
उत्+हार = उद्धार त्+ह =द्ध
सत्+धर्म = सद्धर्म त्+ध =द्ध
आ+छादन = आच्छादन आ+छा = च्छा

विसर्ग संधि

जहाँ किसी पद में विसर्ग के आगे किसी व्यंजन का मेल होने पर जो विकार होता है, उसे विसर्ग संधि कहते हैं। जैसे–

मन:+बल = मनोबल विसर्ग+ब = ओब
नि:+चल = निश्चल विसर्ग+च =श्च
नि:+संदेह = निस्संदेह विसर्ग+स =स्स
धनु:+टंकार = धनुष्टंकार विसर्ग+ट =ष्ट

उपवाक्य

यदि किसी एक वाक्य में एक से अधिक समापिका क्रियाएँ होती हैं तो वह वाक्य उपवाक्यों में बँट जाता है और उसमें जितनी भी समापिका क्रियाएँ

होती हैं उतने ही उपवाक्य होते हैं। इन उपवाक्यों में से जो वाक्य का केंद्र होता है, उसे मुख्य या प्रधान वाक्य कहते हैं और शेष को आश्रित उपवाक्य कहते हैं। आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं–

(i) संज्ञा उपवाक्य–जो आश्रित उपवाक्य प्रधान वाक्य की क्रिया के कर्ता, कर्म अथवा पूरक के रूप में प्रयुक्त हों उन्हें संज्ञा उपवाक्य कहते हैं।य जैसे मैं जानता हूँ कि वह बहुत ईमानदार है। उसका विचार है कि राम सच्चा आदमी है। रश्मि ने कहा कि उसका भाई पटना गया है। इन वाक्यों में मोटे अक्षरों वाले अंश संज्ञा उपवाक्य हैं।

(ii) विशेषण उपवाक्य–जब कोई आश्रित उपवाक्य प्रधान वाक्य की संज्ञा पद की विशेषता बताते हैं, उन्हें विशेषण उपवाक्य कहते हैं, जैसे-मैंने एक व्यक्ति को देखा जो बहुत मोटा था। वे फल कहाँ है जिन को आप लाए थे। इन वाक्यों में मोटे अक्षरों वाले अंश विशेषण उपवाक्य हैं। विशेषण उपवाक्य का प्रारंभ जो अथवा इसके किसी रूप से होता है।

(iii) क्रियाविशेषण उपवाक्य–जब कोई आश्रित उपवाक्य प्रधान वाक्य की क्रिया की विशेषता बताए, उसे क्रियाविशेषण उपवाक्य कहते हैं। ये प्राय: क्रिया का काल, स्थान, रीति, परिमाण, कारण आदि के सूचक क्रियाविशेषणों के द्वारा प्रधान वाक्य से जुड़े रहते हैं, जैसे जब वर्षा हो रही थी तब मैं कमरे में था। जहाँ-जहाँ वे गए, उनका स्वागत हुआ। मैं वैसे ही जाता हूँ, जैसे रमेश जाता है। यदि मैंने परिश्रम किया होता तो अवश्य सफल होता। इन वाक्यों में मोटे अक्षरों वाले अंश क्रियाविशेषण उपवाक्य हैं।

वचन–विकारी शब्दों के जिस रूप से संख्या का बोध होता है, उसे वचन कहते हैं। वैसे तो शब्दों का संज्ञा भेद विविध प्रकार का होता है, परन्तु व्याकरण में उसके एक और अनेक भेद प्रचलित हैं। इसी आधार पर हिन्दी में वचन के दो भेद होते हैं

- एकवचन और
- बहुवचन।

(i) एकवचन–विकारी शब्दों के जिस रूप से एक का बोध होता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे, लड़का, घोड़ा, घर, पर्वत, नदी, मैं, वह, यह आदि।

(ii) बहुवचन–विकारी शब्दों के जिस रूप से अनेक का बोध होता है, उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे, लड़के, घोड़े, घरों, पर्वतों, नदियों, हम, वे, ये आदि।

कुछ संज्ञापद हिन्दी में एकवचन और बहुवचन दोनों में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। उनके वचन का बोध वाक्य के आशय से होता है। जैसे, आम, घर, पेड़, सिपाही, आदमी, दाम आदि।

उदाहरण

एकवचन	बहुवचन
आम बहुत मीठा है। सिपाही जा रहा है।	आम बहुत मीठे हैं। सिपाही जा रहे हैं।
मेरा घर सुन्दर है। आदमी सो रहा है।	हमारे घर सुन्दर हैं। आदमी सो रहे हैं।
जामुन का पेड़ हरा है। मैंने दाम दे दिया है।	जामुन के पेड़ हरे हैं। हमने दाम दे दिये हैं।

बहुत से पूज्य एवं उच्च पदाधिकारियों को आदर देने के लिए एकवचन का संज्ञापद भी बहुवचन में प्रयुक्त होता है। उदाहरण–

- गांधी जी राष्ट्रपिता कहलाते हैं।
- श्री कृष्ण यादव वंश के थे।
- पिताजी कल आ रहे हैं।
- कल राष्ट्रपति भाषण देंगे।

एकवचन से बहुवचन बनाने के नियम

अकारान्त पुल्लिंग शब्दों के बहुवचन बनाने के लिए अन्त के 'आ' के स्थान पर 'ए' लगा देते हैं। जैसे–

बेटा–बेटे

लड़का–लड़के

कमरा–कमरे

कपड़ा–कपड़े

अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए अन्त के 'अ' के स्थान पर 'ऐ' कर देते हैं। जैसे–

आँख–आँखें

बात–बातें

गाय–गायें

रात–रातें

अकारान्त, उकारान्त और औकारान्त स्त्रीलिंग एकवचन शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए भी अन्त में 'एँ' लगा देते हैं। जैसे–

माला–मालाएँ

माता–माताएँ

दवा–दवाएँ

वस्तु–वस्तुएँ

इकारान्त स्त्रीलिंग एकवचन शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए उनके अन्त में श्याँ' जोड़ देते हैं। जैसे–

शक्ति–शक्तियाँ

राशि–राशियाँ

रीति–रीतियाँ

तिथि–तिथियाँ

इकारान्त स्त्रीलिंग एकवचन शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए अन्तिम 'ई' को ह्रास करके 'याँ' जोड़ देते हैं। जैसे–

नदी–नदियाँ

सखी–सखियाँ

लड़की–लड़कियाँ

थाली–थालियाँ

'इया' प्रत्यय से बने हुए एकवचन स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए उनके अन्त में चन्द्रबिन्दु लगा देते हैं। जैसे–

गुड़िया–गुड़ियाँ

बुढ़िया–बुढ़ियाँ

डिबिया–डिबियाँ

कुछ उकारान्त शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए 'ऊ' ह्रास करके अन्त में 'एँ' जोड़ देते हैं। जैसे–

लू–लुएँ

जू–जुएँ

बहू–बहुएँ

कुछ शब्दों के आगे लोग, गण, वृन्द, जाति, जन और वर्ग आदि शब्द लगाकर उनके बहुवचन बनाये जाते हैं। जैसे–

साधु–साधुलोग

बालक–बालकगण

अध्यापक–अध्यापकवृन्द

कुछ शब्दों को दो बार प्रयोग करके उनका बहुवचन बनाया जाता है। जैसे–

घर–घर–घर

भाई–भाई–भाई

गाँव–गाँव–गाँव

वर्तनी–लिखने की रीति को वर्तनी या अक्षरी कहते हैं। इसे हिज्जे भी कहा जाता है।

उच्चारण

वर्तनी का सीधा संबंध उच्चारण से होता है। हिन्दी में जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। यदि उच्चारण अशुद्ध होगा तो वर्तनी भी अशुद्ध होगी। प्रायः अपनी मातृभाषा या बोली के कारण तथा व्याकरण संबंधी ज्ञान की कमी के कारण उच्चारण में अशुद्धियाँ आ जाती हैं जिसके कारण वर्तनी में भी अशुद्धियाँ आ जाती हैं।

संस्कृत भाषा के मूल 'लोकों को अद्धृत करते समय संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे। जैसे–संयुक्त, चिह्न, विद्या, चच्चल, विद्वान, वृद्ध, द्वितीय, बुद्धि आदि। किंतु यदि इन्हें भी उपर्युक्त नियमों के अनुसार ही लिखा जाए तो कोई आपत्ति नहीं होगी।

कारक चिह्न

हिन्दी के कारक चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में प्रातिपदित से पृथक् लिखे जाएँ। जैसे–राम को, राम से, स्त्री से, सेवा में आदि। सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न प्रातिपदिक के साथ मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे-तूने, आपने, तुमसे, उसने, उससे आदि।

सर्वनामों के साथ यदि दो कारक चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक् लिखा जाए। जैसे-उसके लिए, इसमें से।

संयुक्त क्रिया पदों में सभी अंगीभूत क्रियाएँ पृथक-पृथक् लिखी जाएँ। जैसे-पढ़ा करता है, आ सकता है, जाया करता है, खाया करता है, जा सकता है, कर सकता है, खेला करेगा, घूमता रहेगा, आदि।

हाइफन (योजक चिह्न)

- हाइफन का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है।
- द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाए। राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती संवाद, देख-रेख चाल-चलन हँसी-मजाक, लेन-देन, खेलना-कूदना आदि।
- सा, जैसा आदि से पूर्व हाइफन रखा जाए। जैसे–तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से तीखे।

तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं। जैसे-भू-तत्त्व। सामान्यतः तत्पुरुष समास में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि।

इसी तरह यदि 'अ-नख' (बिना नख का) समस्त पद में हाइफन न लगाया जाए तो उसे 'अनख' पढ़े जाने से 'क्रोध' का अर्थ निकल सकता है। अ-नति (नम्रता का अभाव) अनति (थोड़ा), अ-परस (जिसे किसी ने न छुआ हो), अपरस (एकचर्मरोग), भू-तत्त्व (पृथ्वी-तत्त्व) भूतत्त्व (भूत होने का भाव) आदि समस्त पदों की भी यही स्थिति है। ये सभी युग्म वर्तनी और अर्थ दोनों दृष्टियों से भिन्न-भिन्न शब्द हैं।

कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे-दवि-अक्षर (दव्यक्षर), दवि-अर्थक (दव्यअर्थक) आदि।

अव्यय

'तक', 'साथ', आदि अव्यय सदा पृथक् लिखे जाएँ। जैसे–यहाँ तक, आपके साथ।

आह, ओह, अहा, ऐ, ही, तो, सो, भी, न, जब, तब, कब, यहाँ वहाँ, कहाँ, सदा, क्या, श्री, जी, तक, भर, मात्र, साथ, कि, किंतु, मगर, लेकिन, चाहे या अथवा, तथा, यथा, और आदि, अनेक प्रकार के भावों का बोध कराने वाले अव्यय हैं।

कुछ अव्ययों के आगे कारक चिह्न भी आते हैं। जैसे-अब से, तब से, यहाँ से, वहाँ से, सदा से, आदि। नियम के अनुसार अव्यय सदा पृथक् लिखे जाने चाहिए। जैसे आप ही के लिए, मुझ तक को, आपके साथ, गज भरकपड़ा, देशभर, रातभर, दिनभर, वह इतना भर कर दे, मुझे जाने तो दो, काम भी नहीं बना, पचास रुपए मात्र आदि।

सम्मानार्थक 'श्री' और 'जी' अव्यय भी पृथक् लिखे जाएँ। जैसे–श्रीराम, कन्हैयालाल जी, महात्मा जी आदि। (यदि श्री, जी आदि व्यक्तिवाचक संज्ञा के ही भाग हों तो मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे–श्रीराम, रामजी लाल, सोमयाजी आदि)

समस्त पदों में प्रति, मात्र, यथा आदि अव्यय जोड़कर लिखे जाएँ (यानी पृथक् नहीं लिखे जाएँ) जैसे प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। यह सर्वविदित नियम है कि समास होने पर समस्त पद एक माना जाता है। अत: उसे विभक्त रूप में न लिखकर एक साथ लिखना ही संगत है। 'दस रुपए मात्र' 'मात्र दो व्यक्ति' में पदबंध की रचना है। यहाँ मात्र अलग से लिखा जाए (यानी मिलाकर नहीं लिखें)

अनुस्वर (ं), चंद्रबिन्दु (ँ)

अनुस्वार व्यंजन है और अनुनासिकता स्वर का नासिक्य विकार। हिन्दी में ये दोनों अर्थभेदक भी हैं। अत: हिन्दी में अनुसार (.) और अनुनासिकता चिह्न ( ) दोनों ही प्रचलित रहेंगे।

अनुस्वार

संस्कृत शब्दों का अनुस्वार अन्य वर्गीय वर्णों से पहले यथावत् रहेगा। जैसे संयोग, संरक्षण, संलग्न, संवाद, अंश, कंस, आदि।

संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम वर्ण के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कंठ, ठंडा,संत, संध्या, मंदिर, संपादक आदि (कण्ठ, ठण्डा, संत, मन्दिर, सन्ध्या, सम्पादक, सम्बन्ध, वाले रूप नहीं) कोष्ठक में रखे हुए रूप संस्कृत के उदधरणों में ही मान्य होंगे। हिन्दी में बिंदी (अनुस्वार) का प्रयोग करना ही उचित होगा।

यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे वाड़मय,अन्य, चिन्मय, उन्मुख, आदि (वांमय, अंय, चिंमय, उंमुख आदि रूप ग्राहय नहीं होंगे)

पंचम वर्ण यदि दवित्त्व रूप में (दुबारा) आय तो पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे-अन्न, सम्मेलन, सम्मति आदि (अंत, संमेलन, संमति रूप ग्राहय नहीं होंगे)।

अंग्रेजी, उर्दू से गृहीत शब्दों में आधे वर्ण या अनुस्वार के भ्रम को दूर करने के लिए नासिक्य व्यंजन को पूरा लिखना अच्छा रहेगा। जैसे लिमका, तनखाह, तिनका, तमगा, कमसिन आदि।

संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के अंत में अनुस्वार का प्रयोग म् का सूचक है। जैसे-अहं (अहम्), एवं (एवम्), शिवं (शिवम्),

अनुनासिकता (चंद्रबिंदु)

- हिन्दी के शब्दों में उचित ढंग से चंद्रबिंदु का प्रयोग अनिवार्य होगा।
- अनुनासिकता व्यंजन नहीं है, स्वरों का ध्वनिगुण है। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में नाक से भी हवा निकलती है। जैसे-आँ, ऊँ, एँ, माँ, हूँ, आएँ।

चंद्रबिंदु के बिना प्रायः अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है। जैसे-हंस-हँस, अंगना-अँगना, स्वांग(स्व+अंग) स्वाँग आदि में।

अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। किंतु जहाँ (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का (अनुस्वार चिह्न का) प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट रहेगी। जैसे–नहीं, में मैं, आदि। कविता आदि के प्रसंग में छंद की दृष्टि से चंद्रबिंदु का यथा स्थान अवश्य प्रयोग किया जाए। इसी प्रकार छोटे बच्चों की प्रवेशिकाओं में जहाँ चंद्रबिंदु का उच्चारण अभीष्ट हो, वहाँ मोटे अक्षरों में उसका यथास्थान सर्वत्र प्रयोग किया जाए। जैसे– कहाँ, हँसना, आँगन, सँवारना, मैं, मैं नहीं आदि।

विसर्ग (:)

संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए जैसे– 'दुःखानुभूति' में। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा। जैसे 'दुख-सुख के साथी'।

तत्सम शब्दों के अंत में प्रयुक्त विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है। यथाः-अतः, पुनः, स्वतः, प्रायः, पूर्णतः, मूलतः, अंततः, वस्तुतः, क्रमशः, आदि।

'ह' का अघोष उच्चरित रूप विसर्ग है, अतः उसके स्थान पर (स) घोष 'ह' का लेखन किसी हालत में न किया जाए (अतः पुनः आदि के स्थान पर अतह, पुनह आदि लिखना अशुद्ध वर्तनी का उदाहरण माना जाएगा।)

दुःसाहस/दुस्साहस, निःशब्द/निश्शब्द के उभय रूप मान्य होंगे। इनमें दवित्व वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

नि:स्वार्थ मान्य है(निस्स्वार्थ उचित नहीं होगा)

निस्तेज, निर्वचन, निश्चल आदि शब्दों विसर्ग वाला रूप (नि:तेज, नि:वचन, नि:चल) न लिखा जाए।

अंत:करण, अंत:पुर, प्रात:काल आदि शब्द विसर्ग के साथ ही लिखे जाएँ।

तद्भव/देशी शब्दों में विसर्ग का प्रयोग न किया जाए। इस आधार पर छ: लिखना गलत होगा। छह लिखना ही ठीक होगा।

प्रायद्वीप, समाप्तप्राय आदि शब्दों में तत्सम रूप में भी विसर्ग नहीं है।

विसर्ग को वर्ण के साथ मिलाकर लिखा जाए, जबकि कोलन चिह्न (उपविराम) शब्द से कुछ दूरी पर हो। जैसे– अत: यों है––

हल् चिह्न

इसको हल् चिह्न कहा जाए, न कि हलंत। व्यंजन के नीचे लगा हल् चिह्न उस व्यंजन के स्वर रहित होने की सूचना देता है, यानी वह व्यंजन विशुद्ध रूप से व्यंजन है। इस तरह से 'जगत' हलंत शब्द कहा जाएगा, क्योंकि यह शब्द व्यंजनांत है, स्वरांत नहीं।

संयुक्ताक्षर बनाने के नियम के अनुसार ड्, छ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ह् में हल् चिह्न का ही प्रयोग होगा। जैसेय-चिह्न, बुड्ढा, विद्वान आदि में।

तत्सम शब्दों का प्रयोग वांछनीय हो, तब हलंत रूपों का ही प्रयोग किया जाएय विशेष रूप से तब जब उनसे समस्त पद या व्युत्पन्न शब्द बनते हों। यथा:-प्राक्-(प्रागैतिहास), तेजस्-(तेजस्वी), विद्युत्-(विद्युल्लता) आदि। तत्सम संबोधन में हे राजन्, हे भगवन् रूप ही स्वीकृत होंगे। हिन्दी शैली में हे राजा, हे भगवान लिखे जाएँ। जिन शब्दों में हल् चिह्न लुप्त हो चुका हो उनमें उसे फिर से लगाने का प्रयत्न न किया जाए। जैसे–महान् विद्वान आदि (क्योंकि हिन्दी में अब 'महान' से 'महानता' और 'विद्वानों' जैसे रूप प्रचलित हो चुके हैं।

व्याकरण ग्रंथों में व्यंजन संधि समझाते हुए केवल उतने ही शब्द दिए जाएँ, जो शब्द रचना को समझने के लिए आवश्यक हों (उत्+नयन=उन्नयन, उत्+लास=उल्लास) या अर्थ की दृष्टि से उपयोगी हों (जगदीश, जगन्माता, जगज्जननी)।

हिन्दी में हृदयंगम (हृदयम्+गम), संचित(सम्+चित्) आदि शब्दों का संधि-विच्छेद समझाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इसी तरह 'साक्षात्कार', 'जगदीश', 'षट्कोण', जैसे शब्दों के अर्थ को समझाने की आवश्यकता हो, तभी

उनकी संधि का हवाला दिया जाए। हिन्दी में इन्हें स्वतंत्र शब्दों के रूप में ग्रहण करना ही अच्छा होगा।

स्वर परिवर्तन

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया जाए। अत: 'ब्रह्मा' को 'ब्रम्हा' को 'चिह्न' 'उऋण' को 'उरिण' में बदलना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राह्य नहीं हैं। इनके स्थान पर क्रमश: गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखना चाहिए।

जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है। अर्द्ध-अर्ध, तत्त्व-तत्त्व आदि।

'ए', 'औ',का प्रयोग

हिन्दी में ऐ, औ का प्रयोग दो प्रकार के उच्चारण को व्यक्त करने के लिए होता है। पहले प्रकार का उच्चारण 'है', और 'और', आदि में मूल स्वरों की तरह होने लगा है, जबकि दूसरे प्रकार का उच्चारण 'गवैया', 'कौआ' आदि शब्दों में संध्यक्षरों के रूप में आज भी सुरक्षित है। दोनों ही प्रकार के उच्चारणों को व्यक्त करने के लिए इन्हीं चिह्नों (ऐ, औ) का प्रयोग किया जाए। 'गवय्या', कव्वा', आदि संशोधनों की आवश्यकता नहीं है। अन्य उदाहरण हैं--भैया, सैयद, तैयार, हौवा, आदि।

दक्षिण के अय्यर, नय्यर, रामय्या, आदि व्यक्ति नामों को हिन्दी उच्चारण के अनुसार ऐयर, नैयर, रामैया आदि न लिखा जाए, क्योंकि मूल भाषा में इसका उच्चारण भिन्न है।

- अव्वल, कव्वाल, कव्व्वाली जैसे शब्द प्रचलित हैं। इन्हें लेखन में यथावत रखा जाए।
- संस्कृत के तत्सम शब्द 'शय्या' को 'शैया' न लिखा जाए।

पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर'

पूर्वकालिन कृदंत प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए। जैसे-मिलाकर, खा़पीकर, रो़रोकर आदि।

कऱकर से 'करके' और करा़ कर से 'कराके' बनेगा।

वाला

क्रिया रूपों में 'करने वाला' 'आने वाला' 'बोलने वाला' आदि को अलग लिखा जाए। जैसे–मैं घर जाने वाला हूँ जाने वाले लोग।

योजक प्रत्यय के रूप में 'घरवाला' 'टोपीवाला', 'दिलवाला', दूधवाला आदि एक शब्द के समान ही लिखे जाएँगे।

'वाला' जब प्रत्यय के रूप में आएगा तब तो नियम 2 के अनुसार मिलाकर लिखा जाएगा, अन्यथा अलग से। यह वाला, यह वाली, पहले वाला, अच्छा वाला, लाल वाला, कल वाली, बात आदि में वाला निर्देशक शब्द है। अतः इसे अलग ही लिखा जाए।

इसी तरह लंबे बालों वाली लड़की दाढ़ी वाला आदमी आदि शब्दों में भी वाला अलग लिखा जाएगा। इससे हम रचना के स्तर पर अंतर कर सकते हैं। जैसे-गाँववाला, गाँव वाला मकान,

श्रुतिमूलक 'य', 'व'

जहाँ श्रुतिमूलक य, व का प्रयोग विकल्प से होता है वहाँ न किया जाए, अर्थात् किए-किये, नई-नयी, हुआ-हुवा आदि में से पहले (स्वरात्मक) रूपों का प्रयोग किया जाए। यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए। जैसे–दिखाए गए, राम के लिए, पुस्तक लिये हुए, नई दिल्ली आदि।

जहाँ 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्त्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।

जैसे–स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि (अर्थात् यहाँ स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा)।

विदेशी ध्वनियाँ

उर्दू शब्द–उर्दू से आए अरबी-फारसी मूलक वे शब्द जो हिन्दी के अंग बन चुके हैं और जिनकी विदेशी ध्वनियों का हिन्दी ध्वनियों में रूपांतर हो चुका है, हिन्दी रूप में ही स्वीकार किए जा सकते हैं। जैसे–कलम कलि दाग आदि (कलम, कलि दाग) नहीं)। पर जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में प्रयोग अभीष्ट हो अथवा उच्चारणगत भेद बताना आवश्यक हो, वहाँ उनके हिन्दी में प्रचलित रूपों में यथास्थान नुक्ते लगाए जाएँ। जैसे–खाना-खाना, राज-राज फन-फन आदि।

अंग्रेजी शब्द–अंग्रेजी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिन्दी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाए (ऑ) जहाँ तक अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं से नए शब्द ग्रहण करने और उनके देवनागरी लिप्यंतरण का संबंध है, अगस्त-सितंबर, 1962 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली पर आयोजित भाषाविदों की संगोष्ठी में अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के देवनागरी लिप्यंतरण के संबंध में की गई सिफारिश उल्लेखनीय है। उसमें कहा गया है कि अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना क्लिष्ट नहीं होना चाहिए कि उसके वर्तमान देवनागरी वर्णों में अनेक नए संकेत-चिह्न लगाने पड़ें। अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण मानक अंग्रेजी उच्चारण के अधिक-से अधिक निकट होना चाहिए।

द्विधा रूप वर्तनी–हिन्दी में कुछ प्रचलित शब्द ऐसे हैं जिनकी वर्तनी के दो-दो रूप बराबर चल रहे हैं। विद्वत्समाज में दोनों रूपों की एक सी मान्यता है। कुछ उदाहरण हैं––गरदन/गर्दन, गरमी/गर्मी, बरफ/बर्फ, बिलकुल/बिल्कुल, वापस/वापिस, बीमारी/बिमारी, दुकान/दूकान, आखिरकार/आखीरकार, चिहन/चिन्ह आदि।

उपसर्ग

"उपसर्ग उस शब्दांश या अव्यय को कहते हैं, जो किसी शब्द के पहले आकर उसका विशेष अर्थ प्रकट करता है।" तात्पर्य यह है की जो शब्दांश किसी शब्द के पूर्व (पहले) जुड़ते हैं, उन्हें उपसर्ग कहते हैं।

उपसर्ग दो शब्दों–उप. सर्ग के योग से बना है। जिसमें 'उप' का अर्थ है-समीप, पास या निकट और 'सर्ग' का अर्थ है सृष्टि करना। इस तरह 'उपसर्ग' का अर्थ है पास में बैठाकर दूसरा नया अर्थ वाला शब्द बनाना या नया अर्थ देना। जैसे-'यत्न' के पहले 'प्र' उपसर्ग लगा दिया गया तो एक नया शब्द 'प्रयत्न' बन गया। इस नए शब्द का अर्थ होगा प्रयास करना।

उपसर्गों का स्वतन्त्र अस्तित्त्व न होते हुए भी वे अन्य शब्दों के साथ मिलाकर उनके एक विशेष अर्थ का बोध कराते हैं, जैसे-अन. बन-अनबन (मनमुटाव)। वहीं कुछ उपसर्गों के योग से शब्दों के मूल अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता, बल्कि तेजी आती है, जैसे-परि. भ्रमण-परिभ्रमण। कभी-कभी उपसर्ग के प्रयोग से शब्द का बिलकुल उल्टा अर्थ भी निकलता है, जैसे-अ.

शांति–अशांति। किसी एक ही शब्द के पहले अलग–अलग उपसर्ग लगाने से उस शब्द अलग–अलग अर्थ प्राप्त होते हैं, जैसे–'हार' शब्द से–प्रहार (आक्रमण करना), संहार (नाश, खत्म करना), आहार (भोजन), विहार (भ्रमण) आदि।

इस प्रकार उपसर्गों के प्रयोग से शब्दों की तीन स्थितियाँ होती हैं–

1. शब्द के अर्थ में एक नई विशेषता आ जाती है।
2. शब्द के अर्थ में प्रतिकूलता उत्पन्न होती है।
3. शब्द के अर्थ में कोई विशेष अंतर नहीं होता।

शब्द और उपसर्ग में अंतर

'शब्द' अक्षरों के समूह को कहते हैं, जो अपने आप में स्वतंत्र अस्तित्त्व रखता है, अपना अर्थ रखता है। यह 'शब्द' किसी भी वाक्य में स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त होता है। वहीं 'उपसर्ग' वाक्य की तरह अक्षरों का समूह होते हुए भी अपने आप में स्वतंत्र नहीं होता और न ही इसका स्वतंत्र रूप से कहीं प्रयोग ही होता है। जब तक किसी शब्द के आगे जुड़ता नहीं, तब तक उपसर्ग अर्थवान् नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह है की उपसर्ग की सार्थकता तभी है जब वह किसी वाक्य से संगति बैठाये।

उपसर्ग के भेद

हिंदी में जो उपसर्ग मिलते हैं वे हिंदी के साथ–साथ संस्कृत और उर्दू (अरबी, फारसी) भाषा के भी हैं। इस तरह भाषा भेद के आधार पर उपसर्ग 3 प्रकार के माने जाते हैं।

(क) हिंदी उपसर्ग, (ख) संस्कृत उपसर्ग और (ग) उर्दू उपसर्ग

(क) हिंदी उपसर्ग और उससे बनने वाले शब्द

नीचे हिंदी के उपसर्ग और उसके अर्थ के साथ उपसर्ग से बनने वाले प्रमुख शब्दों को दिया जा रहा है–

1. अ (अभाव, नहीं, निषेध)–अपच, अबोध, अजान, अछूता, अथाह, अटल, अलग, अकाज, अचेत, अपढ़, आगाह आदि।

2. अन (नहीं, बिना, निषेध)–अनपढ़, अनबन, अनमोल, अनमेल, अनहित, अलग, अनजान, अनसुना, अनकहा, अनदेखा, अनगिनत, अनगढ़, अनहोनी, अनबूझ आदि।

3. अध् (आधा, आधे अपूर्ण)–अधखिला, अधजला, अधसेरा, अधखिला, अधपका, अधकचरा, अधनंगा, अधकच्चा, अधमरा आदि।

4. उ (ऊँचा)–उजड़ना, उचक्का, उतावला, उखाड़ना, उतारना, उछलना, उदंड आदि।

5. उन (एक कम)–उत्रीस, उनतीस, उनचास, उनतालीस, उनसठ, उनहत्तर आदि।

6. औअव (बुरा, हीन)–औगुण, औढर, औतार, औसान, औघट, अवसर, औघड़ आदि।

7. क (बुरा, हीन)–कपूत, कचोट, कमजोर आदि।

8. कु (बुरा)–कुठौर, कुचाल, कुकर्म, कुपात्र, कुमति, कुढ़ंग, कुढ़ंगा, कुचौला, कुचक्र आदि।

9. चौ (चार)–चौराहा, चौमासा, चौकोर, चौमुखा, चौरंगी, चौपाया, चौखट, चौतरफा आदि।

10. ति (तीन)–तिकोना, तिराहा, तिरंगा, तिगुना, तिमाही, तिपाई आदि।

11. दु (दो)–दुरंगा, दुधारू, दुभाषिया, दुनाली, दुगुना, दुमुहा, दुरंगा, दुलत्ती आदि।

12. नि (आभाव, रहित, विशेष)–निपट, निगोड़ा, निहत्था, निडर, निखरा, निठल्ला, निकम्मा आदि।

13. बिन (बिना, निषेध)–बिनसोचा, बिनब्याहा, बिनबादल, बिनपाए, बिनजाने, बिनजाना, बिनबोया, बिनदेखा, बिनमाने, बिनखाया, बिनचखा, बिनकाम, बिनजाया आदि।

14. भर (भरा, पूरा)–भरपाई, भरपेट, भरपूर, भरसक, भरमार, भरदिन आदि।

15. स (अच्छा)–सपूत, सहित, सचेत, सजग, सहेली, सवेरा आदि।

16. सु (अच्छा)–सुजान, सुडौल, सुजान, सुघड़, सुफल आदि।

17. पर (दूसरा, बाद का)–परलोक, परसुख, परदुख, परोपकार, परसर्ग, परहित, परदादी, परपोता आदि।

(ख) संस्कृत उपसर्ग और उससे बनने वाले शब्द

नीचे संस्कृत के उपसर्ग और उसके अर्थ के साथ इन उपसर्गों से बनने वाले प्रमुख शब्द भी दिए जा रहें हैं–

1. अति (अधिक, बहुत, ऊपर, उसपार, परे)–अतिकाल, अत्याचार, अत्यधिक, अतिरिक्त, अतिमानव, अतिव्याप्ति, अतिशय, अत्यंत, अत्युक्ति, अत्यावश्यक, अतिप्रिय, अतिरंजित, अतिचार, अतिक्रमण, आदि।

2. अधि (ऊपर, श्रेष्ठ, सामीप्य)–अध्यापक, अधिक, अधिक्षेत्र, अध्ययन, अध्यात्म, अध्यारोप, अधिकृत, अधिकरण, अधिकारी, अधिकार, अधिभार, अधिराज, अध्यात्म, अध्यक्ष, अध्यादेश, अधिसूचना, अधिनियम, अधिपति आदि।

3. अनु (सदृश्य, समानता, क्रम, पश्चात् पीछे)–अनुकृति, अनुभव, अनुसार, अनुशासन, अनुगामी, अनुगमन, अनुकूल, अनुश्रुति, अनुज, अनुताप, अनुपात, अनुवाद, अनुनय, अनुचर, अनुपूर्ति, अनुसरण, अनुकरण, अनुरूप, अन्वय, अनुस्वार, अनुशीलन आदि।

4. अप (लघुता, अभाव, हीनता, विरुद्ध)–अपकार, अपमान, अपशब्द, अपशकुन, अपराध, अपहरण, अपकीर्ति, अपव्यय, अपभ्रंस, अपवाद, अपकर्ष, अपयश आदि।

5. अभि (सामने, ओर, पास, सामीप्य, आधिक्य, इच्छा प्रगट करना)–अभिमुख, अभियान, अभिशाप, अभिप्राय, अभियोग, अभिसार, अभिमान, अभिभूत, अभिनव, अभिनय, अभ्युदय, अभिज्ञान, अभ्यागत, अभिभाषण, अभिभावक, अभ्युदय, अभिकर्ता, अभिवादन, अभ्यास, अभिसरण, अभिलाषा आदि।

6. अव् (हीनता, नीचे, अनादर, पतन)–अवगुण, अवकलन, अवगत, अवलोकन, अवनति, अवमूल्यन, अवस्था, अवसान, अवसाद, अवज्ञा, अवचेतन, अवरोहण, अवधि, अवरोह, अवतार, अवमान, अवतीर्ण, अवनति, अवशेष, अवमान, अवकाश आदि।

7. आ (ओर, तक, सीमा, समेत, कमी, विपरीत, उलटा)–आयात, आकाश, आदान, आजीवन, आगमन, आरंभ, आचरण, आमुख, आजन्म, आकर्षण, आमरण, आधार, आकार, आक्रमण, आक्रोश, आरोहण, आकलन, आशक्ति, आक्रांत, आगत, आक्षेप आदि।

8. उद्देश्य (उत्कर्ष, ऊपर, श्रेष्ठ)–उद्देश्य, उन्नति, उदय, उत्साह, उत्तम, उद्योग, उत्खनन, उत्सर्ग, उत्कृष्ट, उत्कंठा, उत्कर्ष, उत्पन्न, उद्भव, उन्नति, उद्देश्य, उद्गम, उद्गार, उद्यम, उद्धत, उत्थान, उद्घाटन, उच्छ्वास, उद्धार, उन्मुख, उन्माद, उदीयमान, आदि।

9. उप (निकटता, पास, सदृश, गौण, सहायक, हीनता)–उपसमिति, उपसर्ग, उपकार, उपकूल, उपमा, उपनिवेश, उपदेश, उपमंत्री, उपस्थित, उपवन, उपनाम, उपासना, उपभेद, उपनेत्र, उपहास, उपहार, उपकरण, उपक्रम, उपद्रव, उपग्रह, उपचार, उपद्वीप, उपयोग, उपेक्षा आदि।

10. दु (बुरा, हीन)–दुकाल, दुबला, दुलारा आदि।

11. दुर्/दुः (दुष्ट, हीन, बुरा, कठिन)–दुराचार, दुरावस्था, दुर्दशा, दुष्कर्म, दुश्चरित, दुर्जन, दुर्लभ, दुर्गुण, दुष्कर, दुर्गति, दुर्गन्ध, दुर्दिन, दुर्भाग्य, दुर्योधन, दुर्गम, दुस्साध्य, दुश्शासन (दुःशासन), दुरस्वप्न (दुःस्वप्न) आदि।

12. दुस्/दुरू (कठिन)–दुष्कर, दुश्चरित्र, दुस्साहस, दुष्कर्म, दुरूसाध्य, दुस्तर आदि।

13. नि (भीतर, नीचे, अतिरिक्त)–निर्देशन, निपात, निष्कपट, निकृष्ट, नियुक्त, निवास, निरूपण, निमग्न, निवारण, नियुक्त, निम्र, निषेध, निरोध, निदान, निबंध, नियोग, निकेत, निमीलित, निसर्ग, निवेश आदि।

14. निं (बाहर, निषेध, रहित)–निर्वाचन, निर्विरोध, निर्धारित, निराकरण, निर्वास, निर्वाण, निर्भय, निरादर, निरपराध, निर्मूल, निर्वाह, निर्दोष, निर्लिप्त, निर्जीव, निरोग, निर्मल, निरभिमान, निर्दय, निस्संदेह, निर्देश, निर्बाध, निर्मित, निस्संतान, निर्णय आदि।

15. निस्–निष्काम, निष्कलंक, निष्कंटक, निस्तेज, निश्चय, निश्चित, निष्क्रिय, निश्चल आदि।

16. परा (उलटा, परे, पीछे, अनादर, नाश)–पराकाष्ठा, पराजित, पराजय, परास्त, पराक्रम, पराभव, परामर्श, पराभूत, परावर्तन आदि।

17. परि (आस-पास, चारों ओर, पूर्ण, त्याग, अतिशय)–परिवार, परिक्रमा, परिजन, परिणाम, परिधि, परिपूर्ण, परितोष, परिदर्शन, परिचय, परिसर, परिवर्तन, परिणय, पर्याप्त, परिसीमन, परीक्षा, परिष्कार, परिवहन, परिमित, परिभाषा, पर्यावरण, परिग्रह, परिभ्रमण, परिचर्या, परिच्छेद, परित्याग, परिपक्व, परिपाटी, परिमार्जन, परिषद, परिश्रम, परिहास आदि।

18. प्र (अधिक, आगे, ऊपर, यश)–प्रमेय, प्रकाश, प्रेरणा, प्रख्यात, प्रचार, प्रबल, प्रभु, प्रयोग, प्रगति, प्रसार, प्रचार, प्रयास, प्रस्थान, प्रलय, प्रमाण, प्रमाद, प्रसन्न, प्रकार, प्रकृति, प्रताप, प्रभाव, प्रपंच, प्रसिद्ध, प्रपौत्र, प्रकोष्ठ, प्रखर, प्रकोप, प्रगल्भ, प्रचुर, प्रच्छन्न, प्रणय आदि।

19. प्रति (विपरीत, सामने, विरोध, बराबरी, प्रत्येक, परिवर्तन)–प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिमान, प्रतिवादी, प्रतिक्षण, प्रतिनिधि, प्रतिमूर्ति, प्रतिकार, प्रतिघात, प्रत्येक, प्रतिशत, प्रतिध्वनि, प्रतिज्ञा, प्रतिदान, प्रतिबिम्ब, प्रतिरूप, प्रतिलिपि, प्रतिकूल, प्रत्यक्ष, प्रतिद्वंद्व, प्रतिबंध, प्रतिकर्षण, प्रतिक्रिया, प्रत्युत्तर, प्रतिवेदन, प्रतिनिधि, प्रतिपादन, प्रतिबंध, प्रतिमा, प्रतियोगी, प्रतिरक्षा आदि।

20. वि (भिन्नता, हीनता, असमानता, विशेष)–विपक्ष, विकास, विशेष, विज्ञान, विकराल, विदेश, विधवा, विवाद, विशेष, विस्मरण, विराम, वियोग, विख्यात, विभाग, विकार, विमुख, विनय, विनाश, विशुद्ध, विरुद्ध, विक्रय, विकार, विकीर्ण, विक्रम, विखंडन, विगत, विगलित, विग्रह, विजय, विजित, वितान, विनय, विपुल, विभिन्न, विभूषण, विमल, विराम, विलोम, व्यवहार, व्यापक, व्यक्ति, व्याकरण, व्यर्थ आदि।

21. सम् (अच्छी तरह, पूर्णता, संयोग, साथ)–सम्मान, संपूर्ण, संकल्प, संग्रह, समन्वय, संतोष, संगम, संन्यास, संयोग, संस्कार, संरक्षण, संहार, समारोह, सम्मेलन, संस्कृत, सामर्थ, संगीत, सम्मुख, संसर्ग, समावेश, संबंध, संग्राम, समवेत, समवाय, समागम, समाचार, समाधि, समाप्ति, समाहार, समास, समृद्धि, सम्पर्क, सम्प्रदान, संप्रेषण, संबंध, संभव, सम्भावना, सम्भोग, सम्मुख, सम्पूर्ण आदि।

22. सु (सुखी, अच्छा, सहज, सुंदर)–सुशासन, सुपुत्र, सुकृति, सुकर्म, सुगम, स्वयं, स्वच्छ, सुदीर्घ, सूक्ति, सुलभ, सुदूर, स्वागत, सुयश, सुपात्र, सुभाषित, सुवास, सुलभ, सुमन, सुजन, सुकर, सुदर्शन, सुधार, सुकुमार, आदि।

रस–रस का शाब्दिक अर्थ है 'आनन्द'। काव्य को पढ़ने या सुनने से जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे रस कहा जाता है। रस को 'काव्य की आत्मा' या 'प्राण तत्त्व' माना जाता है।

भरतमुनि द्वारा रस की परिभाषा

रस उत्पत्ति को सबसे पहले परिभाषित करने का श्रेय भरतमुनि को जाता है। उन्होंने अपने 'नाट्यशास्त्र' में आठ प्रकार के रसों का वर्णन किया है। रस की व्याख्या करते हुए भरतमुनि कहते हैं कि सब नाट्य उपकरणों द्वारा प्रस्तुत एक भावमूलक कलात्मक अनुभूति है। रस का केंद्र रंगमंच है। भाव रस नहीं, उसका आधार है, किंतु भरत ने स्थायी भाव को ही रस माना है।

भरतमुनि ने लिखा है-विभावानुभावव्यभिचारी-संयोगद्रसनिष्पत्ति अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। अतः भरतमुनि के 'रस तत्त्व' का आधारभूत विषय नाट्य में रस की निष्पत्ति है।

काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानों ने काव्य की आत्मा को ही रस माना है। अन्य विद्वानों के अनुसार रस की परिभाषा इस प्रकार है–

आचार्य धनंजय के अनुसार, 'विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, साहित्य भाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से आस्वाद्यमान स्थायी भाव ही रस है।

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने रस की परिभाषा इस प्रकार दी है-विभावेनानुभावेन व्यक्तः सच्चारिणा तथा। रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्

डॉ. विश्वम्भर नाथ कहते हैं, 'भावों के छंदात्मक समन्वय का नाम ही रस है।[8]

आचार्य श्याम सुंदर दास के अनुसार, 'स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के योग से आस्वादन करने योग्य हो जाता है, तब सहृदय प्रेक्षक के हृदय में रस रूप में उसका आस्वादन होता है।'

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है। उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है।

रस के अवयव–रस के चार अवयव या अंग हैं––

(i) स्थायी भाव–स्थायी भाव का मतलब है प्रधान भाव। प्रधान भाव वही हो सकता है, जो रस की अवस्था तक पहुँचता है। काव्य या नाटक में एक स्थायी भाव शुरू से आखिरी तक होता है। स्थायी भावों की संख्या 9 मानी गई है। स्थायी भाव ही रस का आधार है। एक रस के मूल में एक स्थायी भाव रहता है। अतएव रसों की संख्या भी 9 हैं, जिन्हें नवरस कहा जाता है। मूलतः नवरस ही माने जाते हैं। बाद के आचार्यों ने 2 और भावों वात्सल्य और भगवद विषयक रति को स्थायी भाव की मान्यता दी है। इस प्रकार स्थायी भावों की संख्या 11 तक पहुँच जाती है और तद्नुरूप रसों की संख्या भी 11 तक पहुँच जाती है।

(ii) विभाव–स्थायी भावों के उद्बोधक कारण को विभाव कहते हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं–

(अ) आलंबन विभाव

(ब) उद्दीपन विभाव

(iii) आलंबन विभाव–जिसका आलंबन या सहारा पाकर स्थायी भाव जगते हैं आलंबन विभाव कहलाता है। जैसे-नायक-नायिका। आलंबन विभाव के दो पक्ष होते हैं–

(अ) आश्रयालंबन

(ब) विषयालंबन

जिसके मन में भाव जगे वह आश्रयालंबन तथा जिसके प्रति या जिसके कारण मन में भाव जगे वह विषयालंबन कहलाता है। उदाहरण–यदि राम के मन में सीता के प्रति रति का भाव जगता है तो राम आश्रय होंगे और सीता विषय।

(iv) उद्दीपन विभाव–जिन वस्तुओं या परिस्थितियों को देखकर स्थायी भाव उद्दीप्त होने लगता है उद्दीपन विभाव कहलाता है। जैसे-चाँदनी, कोकिल कूजन, एकांत स्थल, रमणीक उद्यान, नायक या नायिका की शारीरिक चेष्टाएँ आदि।

अनुभाव

मनोगत भाव को व्यक्त करने वाले शरीर-विकार अनुभाव कहलाते हैं। अनुभावों की संख्या 8 मानी गई है–

- स्तंभ
- स्वेद
- रोमांच
- स्वर-भंग
- कम्प
- विवर्णता (रंगहीनता)
- अश्रु
- प्रलय (संज्ञाहीनता या निश्चेष्टता)।

लिंग–संज्ञा के उस रूप को लिंग कहते हैं, जिसके द्वारा वाचक शब्दों की जाति का बोध होता है।

लिंग की परिभाषा–वे सभी शब्द जो संज्ञा या सर्वनाम की व्यक्तिवाचक जाति को सूचित करें उन्हे, लिंग कहा जाता है। लिंग की उत्पति संस्कृत से मानी जाती है जहां इसका अर्थ होता है, निशानद्य शब्दों का लिंग निर्धारण करना, व्याकरण को निर्देशित करने के लिए आवश्यक है।

अर्थात् यदि आपको पता होगा कि गाड़ी स्त्रीलिंग है, तभी आप उसे "गाड़ी चल रही हैं" कह पाएंगे, यानी कि रही का प्रयोग आप केवल स्त्रीलिंग के साथ ही कर सकते हैं। इस कारण शब्दों का लिंग निर्धारण काफी ज्यादा जरूरी है।

लिंग के भेद

लिंग के भेद:-लिंग को मूलत: तीन प्रकार में बांटा गया है।

- पुल्लिंग
- स्त्रीलिंग
- नपुंसकलिंग

(i) पुल्लिंग–इस प्रकार के लिंग का प्रयोग पुरुषवाचक संज्ञा या सर्वनाम को सूचित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर बंदर, दादाजी, शेर, शहर, शिव, विष्णु, सेठ, कंप्यूटर, कानपुर, चम्मच, इत्यादि।

पुल्लिंग से जुड़े कुछ नियम–पुल्लिंग से जुड़े शब्दों की पहचान करने के लिए, उनके पीछे लगे, अ, त्व, आ, आव, पा, पन, न आदि प्रत्यय की पहचान करनी काफी ज्यादा जरूरी है।

पेड़ों के सभी नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे–शीशम, अशोक, केला, सागौन, पपीता, देवदार, अमरूद, पलाश, अनार, जामुन, बरग्द, पीपल। (तुलसी इसमें एक अपवाद है)

धातुओं के सभी नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे–लोहा, तांबा, पीतल, चांदी, सोना, पारा, अल्यूमिनियम।

द्रवों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे–शर्बत, पानी, तेल, दूध, दही, घी, पेट्रोल, डीजल।

नक्षत्रों के नाम सभी पुल्लिंग होते हैं। जैसे–मंगल, शुक्र, बृहस्पति, आकाश, शनि, सूर्य, चंद्र, राहु।

अनाजों के सभी नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे–जौ, बाजरा, गेंहू, चना, ज्वर इत्यादि।

सागर के नाम हमेशा पुल्लिंग होते हैं। जैसे–प्रशांत महासागर, आर्कटिक महासागर, अरब सागर, हिन्द महासागर इत्यादि।

प्राणीवाचक शब्द हमेशा पुल्लिंग होते हैं। जैसे–इंसान, मनुष्य, व्यक्ति, खरगोश, खटमल, कौआ, गीदड़, बालक, शेर, कुत्ता, मच्छर, पक्षी, बंदर इत्यादि।

देशों के नाम भी पुल्लिंग होते हैं। जैसे–भारत, पाकिस्तान, ब्रिटेन, अमेरिका, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया इत्यादि।

महीनों के नाम भी हमेशा पुल्लिंग होते हैं। जैसे–सितंबर, दिसंबर, जनवरी, मई, अप्रैल इत्यादि।

पर्वतों के नाम भी हमेशा पुल्लिंग होते हैं। जैसे–माउंट एवरेस्ट, विंध्याचल, मलयाचल, कैलाश, इत्यादि।

दिनों के नाम हमेशा पुल्लिंग होते हैं। जैसे–शनिवार, रविवार, शुक्रवार, ऐतवार इत्यादि।

समय के नाम हमेशा ही पुल्लिंग होते हैं। जैसे–घंटा, पल, क्षण, मिनट सेकंड इत्यादि।

वर्णमाला के अक्षरों के नाम हमेशा से ही पुल्लिंग होते हैं। जैसे–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

स्त्रीलिंग–वे शब्द जो संज्ञा या सर्वनाम के स्त्रीलिंग होने का बोध कराएं उन्हे, स्त्रीलिंग शब्द कहा जाता है। इस प्रकार के शब्दों के कारण यह पता चलता कि वाक्य का निर्माण किस प्रकार करना है। अर्थात् यदि आप यह जानते होंगे कि ट्रेन स्त्रीलिंग है तभी आप, "ट्रेन चली गई" जैसे वाक्य बना पाएंगे।

स्त्रीलिंग शब्दों के उदाहरण–शेरनी, गंगा, नील, कुतिया, किताब, सिगरेट, शराब, घोड़ी, कुमुदनी, मोरनी, कुसुम, पुष्पा।

स्त्रीलिंग से जुड़े कुछ नियम–स्त्रीलिंग शब्दों को बनाने के लिए उनमें प्रत्यय जोड़ा जाता है, ऐसे प्रत्यय स्त्रीलिंग प्रत्यय कहलाते हैं। जैसे ई लगाकर बनाया गया बड़ी, भली, खड़ी, सुनी, सनी इत्यादि। इस प्रकार के अन्य शब्द हैं, इनी, इन, नि, आनी, आईन, ईया।

स्त्रीलिंग शब्दों की पहचान करने के लिए उनके पीछे लगे, हट, वट, ख, ट, इत्यादि शब्दों को देखा जा सकता है।

ऊ, ई, जैसी संज्ञाओं से स्त्रीलिंग शब्दों का बोध होता है। अर्थात् अनुस्वरांत, इकराँत, उकराँत, तकरांत, सकरांत, आदि संज्ञाएं स्त्रीलिंग शब्दों का निर्माण करते हैं। जैसे–रोटी, कुर्सी, भाभी, मम्मी, खड़ाऊँ, बोली, सरसों, दारू, उबासी इत्यादि।

आहारों के नाम हमेशा स्त्रीलिंग में होते हैं। उदाहरण के तौर पर–पकौड़ी, रोटी, दाल, कचौड़ी, सब्जी।

पुस्तकों के नाम भी हमेशा स्त्रीलिंग में होते हैं। जैसे–रामचरितमानस, रामायण, बाइबल, गीतांजलि, किताब, गीता इत्यादि।

कुछ नक्षत्रों के नाम भी स्त्रीलिंग होते हैं। वो नाम हैं–मृगशिरा, अश्विनी, भरणी, रोहिणी, चित्रा, रेवती।

तारीखों और तिथियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–अमावस्या, पूर्णिमा, प्रथमा, प्रतिपदा, पृथ्वी, एकादशी इत्यादि।

शरीर के अंगों के कई नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–तोढ़ी, जीभ, पलक, आँख, नाक इत्यादि।

राशियों के कई नाम स्त्रीलिंग होते हैं। उदाहरण के लिए–कर्क, कुंभ, मीन, तुला, सिंह, मेष इत्यादि।

समूहवाचक शब्द हमेशा स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–भीड़, हुजूम, सेना, सभा, कक्षा, कमेटी इत्यादि। (दल इसमें एक अपवाद है)

बोलियों, भाषाओं और लिपियों के नाम हमेशा स्त्रीलिंग होते हैं। उदाहरण के लिए–हिंदी, संस्कृत, फ्रेंच, अरबी, फारसी, देवनागरी, अवधी, मराठी, तमिल, गुजराती, बंगाली, गुरुमूखी इत्यादि।

नदियों के नाम हमेशा स्त्रीलिंग होते हैं। उदाहरण के लिए–यमुना, गोमती, गोदावरी, व्यास, सतलुज, झेलम, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, कावेरी, कृष्णा, सरस्वती, तापी, अलकनन्दा, सिंधु, नील इत्यादि।

मसालों के नाम भी स्त्रीलिंग होते हैं। उदाहरण के लिए–सौंफ, अजवाइन, हल्दी, मिर्च, धनिया, लौंग इत्यादि।

वस्त्रों के नाम हमेशा स्त्रीलिंग में होते हैं। उदाहरण के तौर पर–पेंट, टाइ, बेल्ट, सलवार, पजामा, सूट, धोती, कुर्ती इत्यादि।

अभूषण के नाम स्त्रीलिंग में होते हैं। उदाहरण के तौर पर–चूड़ी, बिंदी, कंघी, अंगूठी, नथ इत्यादि।

शब्दों के लिंग परिवर्तन के लिए प्रयुक्त नियम

(1) पुल्लिंग से स्त्रीलिंग करने के लिए ई का प्रयोग कर दिया जाता है। जैसे–

चाचा = चाची
दादा = दादी
लड़का = लड़की
नर = नारी
बंदर = बंदरिया
पोता = पोती

घोड़ा = घोड़ी
नाला = नाली
बकरा = बकरी
दास = दासी
कबूतर = कबूतरी
नाना = नानी
देव = देवी
कुत्ता = कुत्ती
चूहा = चुहि

(2) जब पुल्लिंग शब्दों के अन्त में अ, आ अथवा वा आदि शब्दों का प्रयोग होता है, तब स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में अ, आ अथवा वा के स्थान पर इया लगाकर उनका निर्माण किया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
खाट = खटिया
बंदर = बंदरिया
बूढ़ा = बुढ़िया
लोटा = लुटिया

(3) कुछ पुल्लिंग शब्दों में "इका" प्रत्यय जोड़कर, उन्हें स्त्रीलिंग बना दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
बालक = बालिका
संपादक = संपादिका
पाठक = पाठिका
चालक = चालिका
पालक = पालिका
पत्र = पत्रिका

(4) कभी कभार, पुल्लिंग शब्द काफी ज्यादा जटिल होते हैं इस कारण उन्हें स्त्रीलिंग में बदलने के लिए मादा लगाना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर–
मक्खी = नर मक्खी
मच्छर = मादा मच्छर
भालू = मादा भालू
मैना = नर मैना
कौआ = मादा कौआ

कोयल = नर कोयल
भेड़ = नर भेड़
कछुआ = नर कछुआ
तोता = मादा तोता
गिलहरी = नर गिलहरी
उल्लू = मादा उल्लू
मगरमच्छ = मादा मगरमच्छ
चील = नर चील
खटमल = मादा खटमल

(5) कुछ स्त्रीलिंग शब्द, पुल्लिंग शब्दों से बिल्कुल ही अलग होते हैं, उनके निर्माण में किसी भी प्रकार के नियम का प्रयोग नहीं किया जाता। उदाहरण के तौर पर–
भाई = बहन
सम्राट = सम्राज्ञी
बेटा = बहु
पति = पत्नी
पिता = माता
पुरुष = स्त्री
बिलाव = बिल्ली
वर = वधू
मर्द = औरत
राजा = रानी
फूफा = बुआ
बैल = गाय

(6) कुछ पुरुष शब्दों के अन्त में आनी प्रत्यय लगाकर, उन्हें स्त्रीलिंग बना दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
ठाकुर = ठकुरानी
सेठ = सेठानी
देवर = देवरानी
इंद्र = इंद्राणी
पंडित = पंडितानी

नौकर = नौकरानी
चौधरी = चौधरानी
मेहतर = मेहतरानी

(7) कई सारे पुल्लिंग शब्दों के अन्त में "इन" प्रत्यय का प्रयोग कर उन्हें स्त्रीलिंग बनाया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
कुम्हार = कुम्हारिन
बाघ = बाघिन
लुहार = लूहारीन
माली = मालिन
दर्जी = दर्जीन
सुनार = सुनारिन
सांप = सांपीन

(8) पुल्लिंग शब्दों के अन्त में "आइन" प्रत्यय जोड़कर, स्त्रीलिंग शब्द बनाने जाते हैं। उदाहरण के तौर पर–
चौधरी = चौधराईन
पंडित = पंडिताइन
बाबू = बबूआईन
गुरु = गुरुआईन
हलवाई = हलवाईन

(9) पुल्लिंग शब्दों के अन्त में जब 'ता' का प्रयोग किया जाता है तब स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में 'त्रि' का प्रयोग करके, स्त्रीलिंग बनाया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
धाता = धात्री
रचयिता = रचयित्री
अभिनेता = अभीनेत्री
नेता = नेत्री
कवि = कवियत्री
विधाता = विधात्री

(10) पुल्लिंग शब्दों के अन्त में कई बार "नी" प्रत्यय का प्रयोग करके, उन्हें स्त्रीलिंग बनाया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
हाथी = हथिनी
शेर = शेरनी

चाँद = चांदनी
सिंह = सिंहनी
मोर = मोरनी
चोर = चोरनी
हंस = हँसनी
भील = भीलनी
ऊंट = ऊंटनी

(11) पुल्लिंग शब्दों के अन्त में "इनी" प्रत्यय का प्रयोग करके, उन्हें स्त्रीलिंग बना दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
तपस्वी = तपस्वनी
सुहास = सुहासनी
मनस्वी = मनस्वनी

(12) कई बार पुल्लिंग शब्दों के अन्त में "ति" प्रत्यय का प्रयोग करके उन्हें स्त्रीलिंग बनाया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
भगवान = भगवती
श्रीमान = श्रीमति
पुत्रवान = पुत्रवती
आयुष्मान = आयुष्मति
बुद्धिमान = बुद्धिमति

(13) पुल्लिंग शब्द जो अक्सर अ पर खत्म होते हैं, उनके अन्त में आ लगाकर उन्हें स्त्रीलिंग कर दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर–
प्रिय = प्रिया
सुत = सुता
तनुज = तनुजा
पुष्प = पुष्पा
श्याम = श्यामा
आत्मज = आत्मजा
पूज्य = पूज्या
चंचल = चंचला
वेदांत = वेदांता
भैंस = भैंसा

मौसी = मौसा

जीजी = जीजा

अलंकार–आभूषण जो शरीर का सौंदर्य बढ़ाने के लिए धारण किए जाते हैं। "काव्यशोभा करान धर्मानअलंकारान प्रचक्षते।" अर्थात् वह कारक जो काव्य की शोभा बढ़ाते हैं अलंकार कहलाते हैं। जिस प्रकार शरीर के बाहरी भाग को सजाने-संवारने के लिए ब्यूटी पार्लर, व्यायाम शालाएं, हेयर कटिंग सैलून, प्रसाधन सामग्री, आभूषणों की दुकानें हैं तथा आंतरिक भाग को सजाने के लिए शिक्षण-संस्थाएं, धार्मिक संस्थाएं, महापुरुषों के प्रवचन आदि हैं। उसी प्रकार साहित्य के बाहरी रूप को सजाने के लिए शब्दालंकार और आंतरिक रूप को सजाने के लिए अर्थालंकार का प्रयोग किया जाता है।

अलंकारों के मुख्यत: तीन वर्ग किए गए हैं

1. शब्दालंकार–शब्द के दो रूप होते हैं-ध्वनि और अर्थ। ध्वनि के आधार पर शब्दालंकार की सृष्टि होती है। इस अलंकार में वर्ण या शब्दों की लयात्मकता या संगीतात्मक्ता होती है अर्थ का चमत्कार नहीं। शब्दालंकार कुछ वर्णगत होते हैं कुछ शब्दगत और कुछ वाक्यगत होते हैं।

2. अर्थालंकार–अर्थ को चमत्कृत या अलंकृत करने वाले अलंकार अर्थालंकार कहलाते हैं। जिस शब्द से जो अलंकार सिद्ध होता है, उस शब्द के स्थान पर दूसरा पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी वही अलंकार सिद्ध होगा क्योंकि अलग अर्थालंकारों का संबंध शब्द से न होकर अर्थ से होता है।

3. उभयालांकार–जो अलंकार शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित रहकर दोनों को चमत्कृत करते हैं, वे उभायालांकार कहलाते हैं।

(i) यमक अलंकार–जहां काव्य में शब्दों के प्रयोग वैशिष्ट्य से कविता में सौंदर्य और चमत्कार उत्पन्न होता है। वहां शब्दालंकार होता है। जैसे–"कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय" यहां कनक शब्द की आवृत्ति में ही चमत्कार निहित है।

(ii) अनुप्रास अलंकार–वर्णों की आवृत्ति को अनुप्रास अलंकार कहते हैं वर्णों की आवृत्ति के आधार पर वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास और अंत्यानुप्रास आदि इसके मुख्य भेद हैं।

छन्द–छंद शब्द 'चद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'आह्लादित करना', 'खुश करना'। यह आह्लाद वर्ण या मात्रा की नियमित संख्या के विन्यास से उत्पन्न होता है। इस प्रकार, छंद की परिभाषा होगी 'वर्णों या मात्राओं के नियमित

संख्या के विन्यास से यदि आह्लाद पैदा हो, तो उसे छंद कहते हैं'। छंद का सर्वप्रथम उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिलता है। जिस प्रकार ग। का नियामक व्याकरण है, उसी प्रकार पद्य का छंद शास्त्र है।

छंद के अंग

छंद के अंग निम्नलिखित हैं–

- चरण/पद/पाद
- वर्ण और मात्रा
- संख्या और क्रम
- गण
- गति
- यति/विराम
- तुक

1. चरण/पद/पाद–छंद के प्रायः 4 भाग होते हैं। इनमें से प्रत्येक को 'चरण' कहते हैं। दूसरे शब्दों में छंद के चतुर्थांश (चतुर्थ भाग) को चरण कहते हैं।

कुछ छंदों में चरण तो चार होते हैं, लेकिन वे लिखे दो ही पंक्तियों में जाते हैं, जैसे-दोहा, सोरठ आदि। ऐसे छंद की प्रत्येक पंक्ति को 'दल' कहते हैं।

हिन्दी में कुछ छंद छह-छह पंक्तियों (दलों) में लिखे जाते हैं, ऐसे छंद दो छंद के योग से बनते हैं, जैसे-कुण्डलिया (दोहा . रोला), छप्पय (रोला . उल्लाला) आदि।

चरण 2 प्रकार के होते हैं-सम चरण और विषम चरण। प्रथम व तृतीय चरण को विषम चरण तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण को सम चरण कहते हैं।

2. वर्ण और मात्रा

वर्ण/अक्षर–एक स्वर वाली ध्वनि को वर्ण कहते हैं, चाहे वह स्वर ह्रास हो या दीर्घ।

जिस ध्वनि में स्वर नहीं हो (जैसे हलन्त शब्द राजन् का 'न्', संयुक्ताक्षर का पहला अक्षर–कृष्ण का 'ष्') उसे वर्ण नहीं माना जाता।

वर्ण को ही अक्षर कहते हैं।

वर्ण 2 प्रकार के होते हैं–

ह्रास स्वर वाले वर्ण (ह्रास वर्ण)–अ, इ, उ, ऋ, क, कि, कु, कृ

दीर्घ स्वर वाले वर्ण (दीर्घ वर्ण)रू आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, का, की, कू, के, कै, को, कौ

मात्रा–किसी वर्ण या ध्वनि के उच्चारण-काल को मात्रा कहते हैं।

ह्रास वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसे एक मात्रा तथा दीर्घ वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसे दो मात्रा माना जाता है।

इस प्रकार मात्रा दो प्रकार के होते हैं–

ह्रस्व-अ, इ, उ, ऋ

दीर्घ-आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

वर्ण और मात्रा की गणना

वर्ण की गणना–ह्रास स्वर वाले वर्ण (ह्रास वर्ण)-अ, इ, उ, ऋ, क, कि, कु, कृ

दीर्घ स्वर वाले वर्ण (दीर्घ वर्ण)-आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, का, की, कू, के, कै, को, कौ

मात्रा की गणना

ह्रास स्वर-एकमात्रिक-अ, इ, उ, ऋ

दीर्घ वर्ण-द्विमात्रिक-आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

वर्णों में मात्राओं की गिनती में स्थूल भेद यही है कि वर्ण 'स्वर अक्षर' को और मात्रा 'सिर्फ स्वर' को कहते हैं।

लघु व गुरु वर्ण

छंदशास्त्री ह्रास स्वर तथा ह्रास स्वर वाले व्यंजन वर्ण को लघु कहते हैं। लघु के लिए प्रयुक्त चिह्न-एक पाई रेखा।

3. संख्या और क्रम

- वर्णों और मात्राओं की गणना को संख्या कहते हैं।

- लघु-गुरु के स्थान निर्धारण को क्रम कहते हैं।

- वर्णिक छंदों के सभी चरणों में संख्या (वर्णों की) और क्रम (लघु-गुरु का) दोनों समान होते हैं।

- जबकि मात्रिक छंदों के सभी चरणों में संख्या (मात्राओं की) तो समान होती है, लेकिन क्रम (लघु-गुरु का) समान नहीं होते हैं।

4. गण (केवल वर्णिक छंदों के मामले में लागू)

- गण का अर्थ है 'समूह'।

– यह समूह तीन वर्णों का होता है। गण में 3 ही वर्ण होते हैं, न अधिक न कम।

अत: गण की परिभाषा होगी 'लघु-गुरु के नियत क्रम से 3 वर्णों के समूह को गण कहा जाता है'।

गणों की संख्या 8 है–

यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण

गणों को याद रखने के लिए सूत्र–

यमाताराजभानसलगा

इसमें पहले आठ वर्ण गणों के सूचक हैं और अन्तिम दो वर्ण लघु (ल) व गुरु (ग) के।

सूत्र से गण प्राप्त करने का तरीका–बोधक वर्ण से आरंभ कर आगे के दो वर्णों को ले लें। गण अपने-आप निकल आएगा।

उदाहरण-यगण किसे कहते हैं

यमाता

5. गति–छंद के पढ़ने के प्रवाह या लय को गति कहते हैं।

गति का महत्त्व वर्णिक छंदों की अपेक्षा मात्रिक छंदों में अधिक है। बात यह है कि वर्णिक छंदों में तो लघु-गुरु का स्थान निश्चित रहता है, किन्तु मात्रिक छंदों में लघु-गुरु का स्थान निश्चित नहीं रहता, पूरे चरण की मात्राओं का निर्देश नहीं रहता है।

मात्राओं की संख्या ठीक रहने पर भी चरण की गति (प्रवाह) में बाधा पड़ सकती है।

जैसे–

– 'दिवस का अवसान था समीप' में गति नहीं है जबकि 'दिवस का अवसान समीप था' में गति है।

– चौपाई, अरिल्ल व पद्धरि–इन तीनों छंदों के प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं पर गति भेद से ये छंद परस्पर भिन्न हो जाते हैं।

– अतएव, मात्रिक छंदों के निर्दोष प्रयोग के लिए गति का परिज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

– गति का परिज्ञान भाषा की प्रकृति, नाद के परिज्ञान एवं अभ्यास पर निर्भर करता है।

6. यति/विरोम–छंद में नियमित वर्ण या मात्रा पर साँस लेने के लिए रुकना पड़ता है, इसी रुकने के स्थान को यति या विरोम कहते हैं।

छोटे छंदों में साधारणत: यति चरण के अन्त में होती है, पर बड़े छंदों में एक ही चरण में एक से अधिक यति या विराम होते हैं।

यति का निर्देश प्राय: छंद के लक्षण (परिभाषा) में ही कर दिया जाता है। जैसे मालिनी छंद में पहली यति 8 वर्णों के बाद तथा दूसरी यति 7 वर्णों के बाद पड़ती है।

7. तुक–छंद के चरणान्त की अक्षर-मैत्री (समान स्वर-व्यंजन की स्थापना) को तुक कहते हैं। जिस छंद के अंत में तुक हो उसे तुकान्त छंद और जिसके अन्त में तुक न हो उसे अतुकान्त छंद कहते हैं। अतुकान्त छंद को अंग्रेजी में ब्लैंक वर्स कहते हैं।

वर्णिक छंद–वर्णिक छंद के सभी चरणों में वर्णों की संख्या समान रहती है और लघु-गुरु का क्रम समान रहता है।

वर्णिक छंद (या वृत)–जिस छंद के सभी चरणों में वर्णों की संख्या समान हो।

मात्रिक छंद (या जाति)–जिस छंद के सभी चरणों में मात्राओं की संख्या समान हो।

मुक्त छंद–जिस छंद में वर्णिक या मात्रिक प्रतिबंध न हो।

प्रमुख वर्णिक छंद–प्रमाणिका (8 वर्ण), स्वागता, भुजंगी, शालिनी, इन्द्रवज्रा, दोधक (सभी 11 वर्ण), वंशस्थ, भुजंगप्रयाग, द्रुतविलम्बित, तोटक (सभी 12 वर्ण), वसंततिलका (14 वर्ण), मालिनी (15 वर्ण), पंचचामर, चंचला (सभी 16 वर्ण), मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी (सभी 17 वर्ण), शार्दूल विक्रीडित (19 वर्ण), स्त्रग्धरा (21 वर्ण), सवैया (22 से 26 वर्ण), घनाक्षरी (31 वर्ण) रूपघनाक्षरी (32 वर्ण), देवघनाक्षरी (33 वर्ण), कवित्त/मनहरण (31-33 वर्ण)।

मात्रिक छंद–मात्रिक छंद के सभी चरणों में मात्राओं की संख्या तो समान रहती है, लेकिन लघु-गुरु के क्रम पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

प्रमुख मात्रिक छंद

(i) सम मात्रिक छंद–अहीर (11 मात्रा), तोमर (12 मात्रा), मानव (14 मात्रा), अरिल्ल, पद्धरि/पद्धटिका, चौपाई (सभी 16 मात्रा), पीयूषवर्ष, सुमेरु (दोनों 19 मात्रा), राधिका (22 मात्रा), रोला, दिक्पाल, रूपमाला (सभी

24 मात्रा), गीतिका (26 मात्रा), सरसी (27 मात्रा), सार (28 मात्रा), हरिगीतिका (28 मात्रा), तांटक (30 मात्रा), वीर या आल्हा (31 मात्रा)।

(i) अर्द्धसम मात्रिक छंद–बरवै (विषम चरण में–12 मात्रा, सम चरण में–7 मात्रा), दोहा (विषम–13, सम–11), सोरठा (दोहा का उल्टा), उल्लाला (विषम–15, सम–13)।

विषम मात्रिक छंद–कुण्डलिया (दोहा. रोला), छप्पय (रोला. उल्लाला)।

मुक्त छंद–जिस विषय छंद में वर्णित या मात्रिक प्रतिबंध न हो, न प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या और क्रम समान हो और मात्राओं की कोई निश्चित व्यवस्था हो तथा जिसमें नाद और ताल के आधार पर पंक्तियों में लय लाकर उन्हें गतिशील करने का आग्रह हो, वह मुक्त छंद है।

उदाहरण–निराला की कविता 'जूही की कली' इत्यादि।

मुहावरा

मुहावरा मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है बातचीत करना या उत्तर देना। कुछ लोग मुहावरे को 'रोजमर्रा', 'बोलचाल', 'तर्जेकलाम', या 'इस्तलाह' कहते हैं, किन्तु इनमें से कोई भी शब्द 'मुहावरे' का पूर्ण पर्यायवाची नहीं बन सका। संस्कृत वाङ्मय में मुहावरा का समानार्थक कोई शब्द नहीं पाया जाता। कुछ लोग इसके लिए 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति', 'वाग्धारा' अथवा 'भाषा-सम्प्रदाय' का प्रयोग करते हैं। वी.एस. आप्टे ने अपने 'इंगलिश-संस्कृत कोश' में मुहावरे के पर्यायवाची शब्दों में 'वाक्-पद्धति', 'वाक् रीति', 'वाक्-व्यवहार' और 'विशिष्ट स्वरूप' को लिखा है। पराड़कर जी ने 'वाक्-सम्प्रदाय' को मुहावरे का पर्यायवाची माना है। काका कालेलकर ने 'वाक्-प्रचार' को 'मुहावरे' के लिए 'रूढ़ि' शब्द का सुझाव दिया है। यूनानी भाषा में 'मुहावरे' को 'ईडियोमा', फ्रेंच में 'इंडियाटिस्मी' और अंग्रेजी में 'ईडिअम' कहते हैं।

मोटे तौर पर जिस सुगठित शब्द-समूह से लक्षणाजन्य और कभी-कभी व्यंजनाजन्य कुछ विशिष्ट अर्थ निकलता है उसे मुहावरा कहते हैं। कई बार यह व्यंग्यात्मक भी होते हैं। मुहावरे भाषा को सुदृढ़, गतिशील और रुचिकर बनाते हैं। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में अद्भुत चित्रमयता आती है। मुहावरों के बिना भाषा निस्तेज, नीरस और निष्प्राण हो जाती है। मुहावरे रोजमर्रा के काम के हैं।

हिन्दी भाषा में बहुत अधिक प्रचलित और लोगों के मुँहचढ़े वाक्य लोकोक्ति के तौर पर जाने जाते हैं। इन वाक्यों में जनता के अनुभव का निचोड़ या सार होता है।

विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से 'मुहावरे' की परिभाषा की है जिनमें से कुछेक यहाँ दी जा रही हैं–

डॉ. उदय नारायण तिवारी ने लिखा है–'हिन्दी-उर्दू में लक्षण अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही 'मुहावरा' कहते हैं।'

'एडवांस लर्नर्स डिक्शनरी' में ए.एस. हॉर्नबी ने लिखा है कि–'मुहावरा' शब्दों का वह क्रम या समूह है जिसमें सब शब्दों का अर्थ एक साथ मिलाकर किया जाता है।

'चौम्बर्स ट्वेन्टीथ सेंचुरी डिक्शनरी' के अनुसार–किसी भाषा की विशिष्ट अभिव्यंजना-पद्धति को 'मुहावरा' कहते हैं।

'ऑक्सफोर्ड कन्साइज डिक्शनरी' के अनुसार–किसी भाषा की अभिव्यंजना के विशिष्ट रूप को 'मुहावरा' कहते हैं। एक अन्य पक्ष है कि विशिष्ट शब्दों विचित्र प्रयोगों एवं प्रयोग-सिद्ध विशिष्ट वाक्यांशों वाक्य-पद्धति को 'मुहावरा' कहते हैं।

'मुहावरा' की सबसे अधिक व्यापक तथा सन्तोषजनक परिभाषा डॉ. ओमप्रकाश गुप्त ने निम्न शब्दों में दी है–

'प्राय: शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों और कहावतों अथवा भाषा के कतिपय विलक्षण प्रयोगों के अनुकरण या आधार पर निर्मित और अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ देने वाले किसी भाषा के गठे हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश या शब्द-समूह को मुहावरा कहते हैं।'

मुहावरे भाषा की नींव के पत्थर हैं जिस पर उसका भव्य भवन आज तक रुका हुआ है और मुहावरे ही उसकी टूट-फूट को ठीक करते हुए गर्मी, सर्दी और बरसात के प्रकोप से अब तक उसकी रक्षा करते चले आ रहे हैं। मुहावरे भाषा को सुदृढ़, गतिशील और रुचिकर बनाते हैं। उनके प्रयोग से भाषा में चित्रमयता आती है जैसे-अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना, दाँतों तले उँगली दबाना, रंगा सियार होना,

चेहरा लाल-नीला पीला होना–ईर्ष्या व जलन के भाव से दूसरे के कार्य या फिर उस व्यक्ति को नापसंद करना या क्रोध करना।

चेहरा लाल-पीला होना–क्रोधित होना (सामान्य/प्राकृतिक स्तिथि) आदि।

मुहावरों का निर्माण

लक्षणा का प्रयोग होने से शब्दों की तीन शक्तियां होती हैं–

(क) अभिधा,

(ख) लक्षणा, और

(ग) व्यंजना।

जब किसी शब्द या शब्द-समूह का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है, तब वहाँ उसकी अभिधा शक्ति होती है। अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति अर्थ को अभिधेयार्थ या मुख्यार्थ कहते हैं, जैसे 'सिर पर चढ़ना' का अर्थ किसी चीज को किसी स्थान से उठा कर सिर पर रखना होगा। परन्तु जब मुख्यार्थ का बोध न हो और रुढ़ि या प्रसिद्ध के कारण अथवा किसी विशेष प्रयोजन को सूचित करने के लिए, मुख्यार्थ से संबद्ध किसी अन्य अर्थ का ज्ञान हो तब जिस शक्ति के द्वारा ऐसा होता है उसे लक्षणा कहते हैं। यह शक्ति 'अर्पित' अर्थात् कल्पित होती है। इसीलिए 'साहित्यदर्पण' में विश्वनाथ ने लिखा है–

मुख्यार्थ बाधे तद्युक्तो यथान्योऽर्थ प्रतीयते।
रूढ़े प्रयोजनाद्वासो लक्षणा शक्तिरर्पिता॥

लक्षणा से 'सिर पर चढ़ने' का अर्थ आदर देना होगा। मम्मट ने भी 'काव्य प्रकाश' में और अधिक बोधगम्य शब्दों में उनके अभिमत का समर्थन किया है। उदाहरणार्थ, ''अंगारों पर लोटना', 'आँख मारना', 'आँखों में रात काटना', 'आग से खेलना', 'आसमान पर दीया जलाना', 'दूध-घी की नदियां बहाना', 'खून चूसना', 'चैन की बंशी बजाना', 'ठहाका लगाना', 'लम्बी बांह होना', 'विजय का डंका बजाना' और शेर बनना' आदि में लक्षणा शक्ति का प्रयोग हुआ है। इसलिए वे मुहावरे हैं। परन्तु इस सन्दर्भ से यह द्रष्टव्य है कि लक्षणा के समस्त उदाहरण मुहावरे के अन्तर्गत नहीं आ सकते। लक्षणा के केवल वही उदाहरण मुहावरों के अन्तर्गत आ सकते हैं, जो चिर अभ्यास के कारण रूढ़ा या प्रसिद्ध हो गए हैं।

व्यंजना का प्रयोग होने से

जब अभिधा और लक्षणा अपना काम करके विरत हो जाती हैं तब जिस शक्ति से शब्द-समूहों या वाक्यों के किसी अर्थ की सूचना मिलती है उसे 'व्यंजना' कहते हैं। मुहावरों में जो व्यंग्यार्थ रहता है, वह किसी एक शब्द के अर्थ

के कारण नहीं बल्कि सब शब्दों केशृंखलित अर्थों के कारण होता है, अथवा यह कहें कि पूरे मुहावरे के अर्थ में रहता है। इस प्रकार 'सिर पर चढ़ना' मुहावरे का व्यंग्यार्थ न तो 'सिर' पर निर्भर करता है न 'चढ़ाने' पर वरन पूरे मुहावरे का अर्थ होता है 'उच्छृंखल, अनुशासनहीन अथवा ढीठ बनाना।' यह व्यंग्यार्थ अभिधेयार्थ तथा लक्षणा अभिव्यक्ति अर्थ से भिन्न होता है।

अलंकारों का प्रयोग

अनेक मुहावरे में अलंकारों का प्रयोग हुआ रहता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक मुहावरा अलंकार होता है अथवा प्रत्येक अलंकारयुक्त वाक्यांश मुहावरा होता है। नीचे कुछ मुहावरे दिए जाते हैं जिनमें अलंकारों का प्रयोग हुआ है–

(क) सादृश्यमूलक मुहावरे–लाल अंगारा होना (उपमा), पैसा ही पुरुषत्व और पुरुषत्व ही पैसा है (उपमेयोपमा), अंगार बरसाना (रूपक), सोना सोना ही है (अनन्वय), आदि।

(ख) विरोधामूलक मुहावरे–इधर-उधर करना, ऊंच-नीच देखना, दाएं-बाएं न देखना, पानी से प्यास न बुझना।

(ग) सन्निधि अथवा स्मृतिमूलक मुहावरे–चूड़ी तोड़ना, चूड़ा पहनना, दिया गुल होना, दुकान बढ़ाना, मांग-कोख से भरी-पूरी रहना, आदि।

(घ) शब्दालंकारमूलक मुहावरे–अंजर–पंजर ढीले होना, आंय-वायं-शांय बकना, कच्चा-पक्का, देर-सवेर, बोरिया-बिस्तर बांधना, आदि।

कथानकों, किंवदन्तियों, धर्म-कथाओं आदि पर आधारित मुहावरे

कुछ मुहावरे प्रथाओं पर आधारित होते हैं, जैसे–बीड़ा उठाना। मध्य युग में राज-दरबारों में यह प्रथा थी कि जब कोई दुष्कर कार्य करना होता था तब सामन्तों और वीरों आदि को बुलाकर उन्हें उसके सम्बन्ध में सब बातें बता दी जाती थीं और थाली में पान रख दिया जाता था। जो वीर उस काम को करने का दायित्व अपने ऊपर लेता था, वह थाली से बीड़ा उठा लेता था। कुछ मुहावरे कहानियों पर आधारित होते थे, जैसे टेढ़ी खीर होना, ढपोरशंख होना, सोने का मृग होना, आदि। मुहावरे रोजमर्रा के काम के हैं।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का जातिवाचक संज्ञाओं की भाँति प्रयोग

कभी-कभी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग जातिवाचक संज्ञाओं की भांति करके मुहावरे बनाए जाते हैं, जैसे-कुंभकरण की नींद, द्रौपदी का चीर, जयचंद होना, युधिष्ठिर बनना, विभीषण होना, हरिश्चन्द्र बनना, आदि।

अस्पष्ट ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

जब मनुष्य प्रबल भावावेश में होते हैं तब उनके मुंह से कुछ अस्पष्ट ध्वनियां निकल जाती हैं, जो बाद में किसी एक अर्थ में रूढ़ हो जाती हैं और मुहावरे कहलाने लगती हैं। ऐसे कुछ भावावेशों और उनमें निकली हुई ध्वनियों के आधार पर बने हुए मुहावरों के उदाहरण निम्नांकित हैं–

(क) हर्ष में–आह-हा, वाह-वाह, आदि।

(ख) दु:ख में–आह निकल पड़ना, सी-सी करना, हाय-हाय मचाना, आदि।

(ग) क्रोध में–उंह-हूं करना, धत् तेरे की, आदि।

(घ) घृणा में–छि-छि करना, थू-थू करना।

मनुष्येतर चौतन्य सृष्टि की ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

(क) पशु-वर्ण की ध्वनियों पर आधारित–टर-टर करना, भों-भों करना, में-में करना, आदि।

(ख) पक्षी और कीट-पतंगों की ध्वनियों पर आधारित–कांव-कांव करना, कुकड़ू-कूं बोलना, भिन्ना जाना आदि।

जड़ वस्तुओं की ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

(क) कठोर वस्तुओं की संघर्ष-जन्य ध्वनियों के अनुकरण पर आधारित–फुस-फुस करना, फुस-फुस होना, आदि।

(ख) तरल पदार्थों की गति से उत्पन्न ध्वनि पर आधारित–कल-कल करना, कुल-कुल करना या होना, गड़-गड़ करना, आदि।

(ग) वायु की गति से उत्पन्न ध्वनि पर आधारित–सर-सराहट होना, सांय-सांय करना, आदि।

शारीरिक चेष्टाओं के आधार पर बने हुए मुहावरे

शारीरिक चेष्टाएं मनोभाव प्रकट करती हैं और उनके आधार पर कुछ मुहावरे बनते हैं, जैसे–छाती कूटना या पीटना, दांत पीसना, नाचने लगना, पूंछ हिलाना, पैर पटकना, मुंह बनाना, मूछों पर ताव देना, आदि।

मनोवैज्ञानिक कारणों से मुहावरों की उत्पत्ति

(क) अचानक किसी संकट में आने से सम्बन्धित मुहावरे–आठों पहर सूली पर रहना, आवे का आवा बिगड़ना, कहीं का न रहना, तकदीर फूटना, आदि। (ख) अतिशयोक्ति की प्रवृत्ति से उद्‌भुत मुहावरे–आसमान के तारे तोड़ना, कलेजा बांसों उझलना, खून की नदियां बहाना, आदि। (ग) भाषा को अलंकृत और प्रभावोत्पादक बनाने के प्रयास से उद्‌भुत मुहावरे–ईद का चांद होना, गूलर का फूल होना, सरसों–सा फूलना, आदि।

किसी शब्द की पुनरावृत्ति पर आधारित मुहावरे

- अभी–अभी, छिः दृछिः, थुड़ी–थुड़ी करना, छिप–छिप कर, तिल–तिल भर, थोड़ा–थोड़ा करके, आदि।
- दो क्रियाओं का योग करके बनाए हुए मुहावरें
- उठना–बैठना, खाना–पीना, पढ़ाना–लिखना, आदि।
- दो संज्ञाओं को मिलाकर बनाए हुए मुहावरें
- कपड़ा–लत्ता, चूल्हा–चौका, दवा–दारू, गाजर–मूली, नदी–नाला, भोजन–वस्त्र, रोजी–रोटी, आदि।
- हिन्दी के एक शब्द के साथ उर्दू के दूसरे शब्द का योग करके बनाए हुए मुहावरे।
- दान–दहेज, मेल मुहब्बत होना, मेल–मुलाकात रखना, दिशा–मैदान जाना, आदि।

लोकोक्ति

बहुत अधिक प्रचलित और लोगों के मुँहचढ़े वाक्य लोकोक्ति के तौर पर जाने जाते हैं। इन वाक्यों में जनता के अनुभव का निचोड़ या सार होता है। इनकी उत्पत्ति एवं रचनाकार ज्ञात नहीं होते।

लोकोक्तियाँ आम जनमानस द्वारा स्थानीय बोलियों में हर दिन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से उपजे वैसे पद एवं वाक्य होते हैं, जो किसी खास समूह, उम्र वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में प्रयोग किया जाता है। इसमें स्थान विशेष के भूगोल, संस्कृति, भाषाओं का मिश्रण इत्यादि की झलक मिलती है। लोकोक्ति वाक्यांश न होकर स्वतंत्र वाक्य होते हैं।

वाक्य में प्रयोग

लोकोक्ति का वाक्य में ज्यों का त्यों उपयोग होता है। मुहावरे का उपयोग क्रिया के अनुसार बदल जाता है, लेकिन लोकोक्ति का प्रयोग करते समय इसे बिना बदलाव के रखा जाता है। कभी-कभी काल के अनुसार परिवर्तन सम्भव है।

अंधा पीसे कुत्ते खायें

प्रयोग–पालिका की किराये पर संचालित दुकानों में डीएम को अंधा पीसे कुत्ते खायें की हालत देखने को मिली।

अक्षर विन्यास

अक्षर-विन्यास अथवा वर्तनी की शुद्धता भाषा का अनिवार्य अंग है। अभिव्यक्ति में विचारों की क्रमिकता एवं सुसम्बद्धता कितनी ही सुव्यवस्थित क्यों न हो परन्तु यदि विचारों को व्यक्त करने वाली भाषा शद्ध नहीं हो तो उसका असर नगण्य होकर रह जाएगा। भाषा की शुद्धता तो मुख्यतः शुद्ध अक्षर-विन्यास पर निर्भर करती है। शुद्ध वाक्य विन्यास भी बहुत आवश्यक है, परन्तु वाक्य विन्यास का शुद्धता शुद्ध अक्षर-विन्यास पर ही निर्भर करता है। अक्षर-विन्यास हमारी लिखित अभिव्यक्ति को ही प्रभावित नहीं करता वरन् मौखिक अभिव्यक्ति को भी प्रभावित करता है।

अक्षर-विन्यास का अर्थ

हिन्दी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। देवनागरी लिपि संसार की वैज्ञानिक लिपि मानी जाती है, जिसकी विशेषता यह है कि एक प्रतीक के लिए एक ही ध्वनि को व्यक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य हैं। इसमें जैसा बोला जाना है, वैसा ही लिखा जाता है, इस कारण इस लिपि में त्रुटियों की सम्भावना कम हो

जाती है। आश्चर्य इस में यह है कि आज हिन्दी लिखने में सर्वाधिक अशुद्धियाँ पाई जाती हैं।

अक्षर-विन्यास की शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक छात्रों द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियों से परिचित होकर उन्हें यथासम्भव दूर करने का प्रयास करें।

अक्षर-विन्यास का महत्त्व

भाषा में अक्षर-विन्यास का अपना विशिष्ट महत्त्व है अक्षरों के स्पष्ट ज्ञान के बिना भाषा शिक्षा अधूरी है। शुद्ध अक्षरों के स्पष्ट ज्ञान के बिना भाषा शिक्षा अधूरी है। शुद्ध अक्षरों के बिना भाषा नहीं लिखी जा सकती। अक्षरों का ज्ञान स्मरण शक्ति पर आधारित है। छात्र स्मरण करके अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। रायबर्न महोदय ने शब्दों के अक्षरों को स्मरण करने के तीन ढ़ंग बताए गए हैं–देखकर, सुनकर

क्रिया द्वारा–रायबर्न के मतानुसार "अक्षरों की सीखने की सर्वोत्तम विधि वह है जिसमें तीनों का योग हो, तीनों नहीं तो कम से कम दो विधियाँ अवश्य अपनाई जाए।"

अक्षरों का कितना महत्त्व है, इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है यथा-परिणाम एवं परिमाण, एक अक्षर के हेर-फेर से दोनों का अर्थ बदल गया। एक का अर्थ 'फल, 'निष्कर्ष' एवं 'नतीजा' हो गया। दूसरे का अर्थ 'माप' हो गया। इससे अक्षरों का महत्त्व विदित होता है। इसीलिए अक्षरों का शुद्ध ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

कुछ शब्दों की वर्तनी मानक होती है। एकाधिक मानक वर्तनी की सूची बनाकर सीखने वालों के सामने प्रस्तुत उपयोगी होता है जैसे-संबंध-सम्बन्ध, आनंद-आनन्द, स्वयं-स्वयम् आदि ऐसे ही शब्द है।

प्रत्येक भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जो एक से लगते हुए भी अर्थों में विभिन्नता रखते हैं जैसे कोश-शब्दकोश कोष–खजाना। जरा-थोड़ा-जरा–बुढ़ापा। काफी–एक पेय, काफी–पर्याप्त। इनकी ओर लेखन सीखने वालों के ध्यान को आकृष्ट करना चाहिए।

कुछ शब्द ऐसे हैं-जिनके हिन्दी में अर्थ भिन्न होते हैं और गुजराती व मराठी में उनके अर्थ अलग हो जाते हैं यथा–हिन्दी में आंगन–मराठी में आँगण, हिन्दी का मुक्का, मराठी में बुक्का। हिन्दी में जहाँ चन्द्रबिन्दु लगता है वहां मराठी

में केवल बिन्दी लगती है। हिन्दी का 'कृपण' गुजराती में 'कुशन' और 'महल', 'महेल' हो जाता है।

अंग्रेजी भाषा में ठनज 'बट' 'Put' पुट वर्तनी उच्चारण के अनुरूप नहीं है हिन्दी में जैसे बोलते 'पाणी' है लिखते 'पानी' हैं। ऐसे अनुस्तरित शब्दों की सूची बनाकर सीखने वालों के समक्ष प्रस्तुत करना विशेष उपयोगी होता है।

अक्षर-विन्यास की अशुद्धियाँ
मात्राओं की अशुद्धि
शुद्ध-अशुद्ध
गुरु-गुरू उनके-ऊनके
शिशिर-शिसीर निशि-निसी

रेफ सम्बन्धी अशुद्धि

शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध
पर्चा पर्चा गृह ग्रह
निर्माण निरमाण स्वर्ग स्वंग

संयुक्ताक्षरों की अशुद्धियां

शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध
प्रताप परताप वीरेन्द्र वरीन्द्र
ज्ञान ग्यान रविन्द्र रवीन्द्र

अनुनासिक एवं अनुस्वरों की अशुद्धि

शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध
हँसी हंसी अंक अन्क
उनमें उनमे संस्कृति सँस्कृति

ह्रस्व एवं दीर्घ अनुस्वरों की भूलें

शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध
गिरि गिरी निशि निसी
हेतु हेतू हिन्दी हिन्दि
कवि कवी छवि छवी
शक्ति शक्ती पीली पीलि
नूपुर नुपुर उलूक ऊलूक

चन्द्र बिन्दु/अनुस्वार सम्बन्धी भूलें

शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध

कंधा कँधा संस्कृति सँस्कृति
हँसी हंसी प्रांत प्राँत
'न' और 'ण' सम्बन्धी भूलें
शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध
कारण कारन गुण गुन
रण रन शरण शरन
'व' तथा 'ब' सम्बन्धी भूलें
शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध
वसंत बसंत वन (जंगल) बन
विविध बिबिध विशेष बिशेष

अन्य भूलें

शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध
स्नान अस्नान स्कूल ईस्कूल
हिमालय हिमालया भूख भूक
बुढ़ापा बुड़ापा ऋषि रिसी
कष्ट कश्ट वर्षा वर्षा
क्रीड़ा कीड़ा ऋतु रितु

'ठ' के स्थान पर ट लिख देना जैसे–

शुद्ध अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध
षष्ट षष्ठ पृष्ट पृष्ठ
बलिष्ट बलिष्ठ

ऋ के स्थान पर रि लिख देना जैसे–

अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध शुद्ध
रिषि ऋषि रितु ऋतु
रिण ऋण

ऋ की मात्रा के स्थान पर अर्ध र लिख देना अथवा इसका उल्टा कर देना जैसे–

अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध शुद्ध
प्रथ्वी पृथ्वी पृथा प्रथा
ग्रह-कार्य गृह-कार्य उपगृह उपग्रह

अर्द्ध र (◌ॎ) के स्थान पर पूरा र लिख देना जैसे–

अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध शुद्ध
परव पर्व दरपण दर्पण
करकश कर्कश

पूरे र के स्थान पर आधा र (◌ॎ) लिख देनाय जैसे–

अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध शुद्ध
नर्क नरक गर्ल गरल
गर्ल गरल मर्ण मरण

। के स्थान पर ध्य अथवा ध लिख देना, जैसे–

अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध शुद्ध
विध्यमान विद्यमान वियार्थी विद्यार्थी
मध मद्य

भ के स्थान पर म लिख देनाय जैसे–

अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध शुद्ध
मक्ति भक्ति तमी तभी
कमी कभी

क्त (क्त) के स्थान पर त्त लिख देना, जैसे–

अशुद्ध शुद्ध अशुद्ध शुद्ध
संयुत्त संयुक्त भत्त भक्त
वियुत्त वियुक्त

उच्चारण शिक्षण

हिन्दी भाषा का ध्वनितत्त्व वैज्ञानिक है, नागरी भाषा में प्रत्येक ध्वनि के लिए निश्चित अक्षर हैं और उनका सटीक उच्चारण है। उच्चारण पर बल न देने पर उच्चारण दोष उत्पन्न होता है और भाषा का रूप विकृत होता है, उसका निश्चित रूप नहीं बन पाता है। भाषा के दो रूप हैं–

- मौखिक भाषा
- लिखित भाषा

शुद्ध उच्चारण के अभाव में मौखिक भाषा अस्वाभाविक एवं प्रभावहीन हो जाती है। प्राय: हम जैसा उच्चारण करते हैं या बोलते हैं वैसा ही लिखते हैं। अत: लिखित भाषा में भी वे दोष आ जाते हैं। शब्दों की वर्तनी की अशुद्धता के कारण

हमारा उच्चारण अशुद्ध हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध उच्चारण का बड़ा महत्त्व है। वही भाषा का स्वरूप निखारता है।

उच्चारण शिक्षण का अर्थ

भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति व आदान-प्रदान के लिए हम भाषा के दो रूपों का प्रयोग करते हैं मौखिक और लिखित रूप। मौखिक भाषा के प्रयोग का आधार ध्वनियां है, तथा प्रत्येक ध्वनि के लिए एक निश्चित अक्षर है, और उसका उच्चारण स्थान भी निश्चित है। यदि हम विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति के समय ध्वनि का उच्चारण उसके निश्चित स्थान से नहीं करेंगे तो हमारी अभिव्यक्ति दोषपूर्ण और मौखिक भाषा निरर्थक एवं प्रभावहीन हो जायेगी।

उच्चारण शिक्षण का महत्त्व

प्राचीन भारत में शिक्षा मौखिक रूप से प्रदान की जाती थी। अतः उस समय उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता था। शुद्ध उच्चारण के संदर्भ में प्राचीन ग्रन्थों में विशेष रूप से लिखा गया है–यथा–

"प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दन्ताष्ठौ यस्य शोभनौ।
प्रगल्भश्च विनीतश्च स वर्णनं वक्तुमहंति॥"

अभिप्राय यह है कि "जिसकी प्रकृति अच्छी है, जिसके दांत और ओष्ठ अच्छे हैं, जो वार्तालाप में प्रगल्भ और विनीत है, वही वर्णों का ठीक-ठीक उच्चारण कर सकता है।"

'याज्ञवल्कय शिक्षा' में उच्चारण के संदर्भ में विस्तारपूर्वक विवरण दिया गया है। न्यायसूत्र उच्चारण पर विशेष बल देता है-"जब बोलने वाले के मन में बोलने की इच्छा पैदा होती है, तो आत्मा से हृदयस्थ वायु को प्रेरणा मिलती है, जिससे कण्ठ, तालु आदि स्थानों पर एक प्रकार का आघात होता है।"

महर्षि पाणिनि के मतानुसार-"शब्दोच्चारण से पूर्व बुद्धि के साथ मिलकर आत्मा पहले अर्थ का ज्ञान कराती है, तब मन में बोलने की प्रेरणा प्राप्त होती है।"

आचार्य प्रवर पंडित सीताराम चतुर्वेदी उच्चारण के बारे में कहते हैं-"जैसे मतवाला हाथी एक पैर रखने के पश्चात् दूसरा पैर रखता है, उसी प्रकार एक-एक पद और पदान्त को अलग-अलग स्पष्ट करके बोलना चाहिए।"

उच्चारण शिक्षण के सोपान

उच्चारण करने से पूर्व मन में विचारों का जन्म होता है। विचारों की अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से होती है। शब्द किसी अर्थ के परिचायक होते

हैं। "शब्द और अर्थ एक ही सिक्के के दो पार्श्व हैं।" वाक्यप्रदीप में भी कहा गया है-**"एकस्यैवात्मनौ भेदौ शब्दार्थो पृथक स्थितौ।"**

- स्वर यंत्र में 'वास के आघात से पूर्ण ध्वनियों का जन्म होता है।
- उच्चारण बोलकर करते हैं। बोलने के पूर्व मनमें बोलने की इच्छा बलवती होती है, तब कहीं जाकर उच्चारण किया जाता है।
- उच्चारण करने के प्रयास में हृदयस्थल पर वायु में प्रकम्पन्न पैदा होता हे। इसका मतलब यह है कि वायु फेफड़े से निकलकर गले में तरंगित होकर उच्चारण को जन्म देती हैं।
- वायु जब गले में तरंगित होती है, तो उस तरंगण से ध्वनियाँ उत्पन्न होती है।
- ध्वनि मुख के विभिन्न भागों से टकरा कर अपना विभिन्न स्वरूप धारण करती है। यही स्वरूप उच्चारण की ध्वनियाँ है।
- ध्वनि स्वर यंत्र से बाहर निकलती है। स्वर यंत्र से ध्वनियाँ तीन प्रकार से बाहर निकलती है।
- स्वरों के उच्चारित करने के प्रयास में मुख का रूप बदल-बदलकर
- व्यञ्जनों को उच्चारित करते समय जीभ, ओष्ठ, दांत तथा तालु का प्रयोग होता है।

उच्चारण की शिक्षा की आवश्यकता

हिन्दी भाषा में उच्चारण सम्बन्धी अनेक दोष प्रचलित है। उच्चारण में ध्वनियों का विशेष महत्त्व है। ध्वनियों के अभाव में शब्दों का अस्तित्त्व नहीं है और न ही भाषा का। इसलिए ध्वनियों के उच्चारण पर विशेष बल देने की आवश्यकता है। उच्चारण की शिक्षा की आवश्यकता के कारण हैं–

अशुद्ध उच्चारण भाषा का स्वरूप बिगड़ता है। अशुद्ध उच्चारण उसका सुसंस्कृत स्वरूप विकृत करता है।

बिना उच्चारण ज्ञान के भाषा का ज्ञान नहीं हो सकता है। उच्चारण ध्वनियों के आधार पर किया जाता है। ध्वनियों के अभाव में न भाषा ठीक ढंग से समझी जा सकती है, न ही उसका सम्यक ज्ञान ही हो पाता है।

उच्चारण बाल्यावस्था से ही बनता-बिगड़ता है। इस कारण बालकों के उच्चारण पर विशेष बल देना चाहिए। बचपन से ही भ्रष्ट उच्चारण से बचाया जाना चाहिए।

हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में अनेक बोलियाँ-उपबोलियाँ प्रचलित हैं, यथा ब्रज, अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, बांगरी, मालवी, बुन्देली आदि। इन बोलियों का प्रभाव खड़ी बोली पर पड़ा है। इस कारण उसमें ग्रामीण भाषा का पुट मिल गया है। अध्यापक को सावधानीपूर्वक ग्रामीण बोलियों के उच्चारण के प्रभाव से बच्चों को मुक्त करना चाहिए। दुर्भाग्यवश अध्यापक भी इस दुष्प्रभाव से वंचित नहीं हैं। इसलिए अशुद्ध उच्चारण प्रचलित है।

अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों के बालकों पर प्रांतीय भाषाओं का प्रभाव पड़ता है। वहाँ के बालकों को हिन्दी के उच्चारण में इन प्रांतीय भाषाओं के प्रभाव से बचाना चाहिए।

इस प्रकार हिन्दी में उच्चारण सम्बन्धी अनेक दोष एवं कठिनाइयाँ हैं। सावधानीपूर्वक इनका निराकरण करना चाहिए। इसके लिए छात्रों को उच्चारण दोष से मुक्त करना आवश्यक है।

उच्चारण दोष के कारण

उच्चारण सम्बन्धी दोष अनेक कारणों से होते हैं। क्षेत्र विशेष एवं व्यक्ति विशेष के कारण ये दोष उच्चारण के विकृत स्वरूप को जन्म देते हैं। उच्चारण दोष के कारण हैं–

शारीरिक कारण–उच्चारण यन्त्रों के विकार के कारण उच्चारण सम्बन्धी दोष आ जाते हैं। कुछ लोगों के कण्ठ, तालु, होंठ, दाँत, आदि उच्चारण-अंगों में दोष होते हैं। इसलिए वे सम्बद्ध ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर पाते हैं।

वर्णों के उच्चारण का अज्ञान–हिन्दी भाषा की एक विशेषता यह भी है कि उसका जैसा अक्षर-विन्यास है, ठीक वैसे ही उच्चारित भी की जाती है। इसके बावजूद अज्ञानवश वर्णों व शब्दों के सही रूप कुछ लोग उच्चारित नहीं कर पाते हैं जैसे आमदनी को आम्दनी कहना, खींचने को खेंचना कहना, प्रताप को परताप कहना, वृक्ष को व्रक्ष कहना, वीरेन्द्र को वीरेन्दर कहना आदि।

क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव–कहावत है कि 'कोस-कोस पर पानी बदले, दस कोस पर बानी।' अर्थात् प्रत्येक दस कोस (बीस मील) पर बानी अर्थात् वाणी बदल जाती है। वास्तव में भाषा का रूप विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तित नजर आता है। इसका मूल कारण क्षेत्रीय भाषाओं का खड़ी बोली पर भोजपुरी प्रभाव है। क्षेत्र के लोग 'ने' का प्रयोग कम करते हैं, तो पंजाबी क्षेत्र के लोग उसका अनावश्यक प्रयोग भी करते हैं, यथा, हमने जाना है।' 'ने' के बदले कहीं 'ण'

का प्रयोग, कहीं 'स' के बदले 'ह' का प्रयोग तो कहीं 'ए', 'औ' और 'न' के बदले 'ए', 'ओ', 'ण' का प्रयोग आदि।

अन्य भाषाओं का प्रयोग–हिन्दी भाषा पर अन्य भाषाओं का भी प्रभाव पड़ता है, जिससे उसके उच्चारण पर प्रभाव पड़ता है। उर्दू के कारण हिन्दी का क, ख, ग–क, ख, ग हो गया है। अंग्रेजी के कारण कालेज, प्लेटफार्म आदि अनेक शब्द जुड़ गये हैं। अंग्रेजी के कारण ही 'आ' का उच्चारण 'ऑ' होने लगा है।

भौगोलिक कारण–विभिन्न परिस्थितियों में रहने से स्वर-यंत्र में भी थोड़ी-बहुत विभिन्नता आ जाती है, इससे उच्चारण प्रभावित होता है। अरबवासी धूप आदि से बचने के कारण सिर पर कपड़ा बाँधते हैं, गला कस-सा जाता है, इस कारण वहाँ क, ख, ग–क, ख, और ग हो जाता है। हिन्दी में भी विभिन्न राज्यों में हिन्दी का उच्चारण इससे किंचित प्रभावित हुआ है।

मनोवैज्ञानिक कारण–उच्चारण पर मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव पड़ता है। भय, संकोच, शीघ्रता, बिलम्ब आदि से उच्चारण में दोष आ जाते हैं। इससे तुतलाना, लापरवाही आदि का विकास होता है और उच्चारण प्रभावित होता है।

स्थानीय प्रभाव–जिस क्षेत्र विशेष में बालक निवास करता है, वहां की भाषा बच्चे के उच्चारण को प्रभावित करती है-कहा भी जाता है-"चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर वाणी" स्थानीय बोली के प्रभाव से उच्चारण अशुद्ध हो जाता है।

अध्यापक की अयोग्यता–उच्चारण सुधार में अध्यापक का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अगर अध्यापक उच्चारण में सतर्कता नहीं रखता या शुद्ध उच्चारण करने में असमर्थ है, तो छात्र उसका अनुकरण करके अशुद्ध उच्चारण करना प्रारम्भ कर देते हैं और यह दोष सदा के लिए उनमें घर कर जाता है।

प्रयत्न-लाघव–ध्वनियों व शब्दों के उच्चारण में पूर्ण सावधानी न रखने पर दोष का आना स्वाभाविक है। शब्दों एवं ध्वनियों का उच्चारण पूर्णरूप से किया जाना चाहिए। प्रयत्न-लाघव विधि को अपनाने से उच्चारण सम्बन्धी दोष आ जाते हैं, यथा परमेश्वर को 'प्रमेसर', 'मास्टर साहब' को 'म्मासाब' आदि।

दोषपूर्ण आदतें–वैयक्तिक दोषपूर्ण आदतें भी अशुद्ध उच्चारण का कारण बन जाती हैं। अनुस्वरों का अधिक उच्चारण इसका प्रचलित रूप है, जैसे 'कहा' को 'कहाँ' कहना या अनुस्वरों का लोप जैसा 'हैं' को 'है' कहना आदि। रुक-रुक कर बोलना, शीघ्रता में बोलना, किसी की नकल करके बोलना भी उच्चारण दोष लाने के कारण है।

शुद्ध भाषा के वातावरण का अभाव–भाषा अनुकरण द्वारा सीखी जाती है। अगर भाषा के शुद्ध रूप का वातावरण नहीं मिला तो अशुद्ध उच्चारण स्वाभाविक है। अशुद्ध उच्चारण के बीच पलने वाला बालक शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाता है।

अक्षरों एवं मात्राओं का अस्पष्ट ज्ञान–जिन छात्रों को अक्षरों एवं मात्राओं का स्पष्ट ज्ञान नहीं दिया जाता, उनमें उच्चारण-दोष होता है। संयुक्ताक्षरों के संदर्भ में यह भूल अधिक होती है, जैसे स्वर्ग को सरग कहना, कर्म को करम कहना, धर्म को धरम कहना आदि।

नागरी ध्वनियों का अनिश्चित उच्चारण–नागरी ध्वनियों में 'ड़' 'ञ'य 'ऋ', 'ष' 'क्ष' 'ज्ञ' आदि का प्रयोग बहुत कम होता है। इस कारण इनका उच्चारण अनिश्चित-सा हो गया है। इस कारण इनके उच्चारण में बहुधा भूल की संभावना रहती है।

अति शीघ्रता, असावधानी से भी उच्चारण अशुद्ध हो जाता है

उच्चारण दोष के विभिन्न प्रकार

उच्चारण दोष के विभिन्न प्रकार नीचे दिये जा रहे हैं–

स्वर-लोप–यथा 'क्षत्रिय' का 'छत्री', 'परमात्मा' का 'प्रमात्मा', 'ईश्वर' का 'इस्सर'।

स्वर-भक्ति–यथा 'बृजेन्द्र' को बढ़ाकर 'बरजेन्दर', 'श्री' को 'सिरी', 'शक्ति' को 'सकती'।

स्वरागम–यथा 'स्नान' में 'अ' का आगम होकर होकर 'अस्नान्', 'स्कूल' में 'इ' का आगम होकर 'इस्कूल'।

ऋ का अशुद्ध उच्चारण–यथा 'अमृत' का 'अम्रित', पंजाब में 'अम्रत', मराठी में 'अम्रत'।

इ, उ का ई, ऊ के साथ भ्रम–यथा 'कवि' का 'कवी', 'हिन्दू' का 'हिन्दु', 'ईश्वर का ईसवर', 'किन्तु' का 'किन्तू'।

न और ण का भ्रम–यथा 'रणभूमि' का 'रनभूमि', 'प्रणय' का 'प्रनय', 'कर्ण' का 'करन' आदि।

क्ष और छ का झमेला–यथा लक्ष्मण को लछमन, अक्षर का अछर, क्षत्री का छत्री।

श और श का भ्रम–यथा प्रकाश का प्रकाश, निष्काम का निश्काम।

व और व का भ्रम–यथा 'वन' (जंगल) का 'बन', वचन का 'बचन' वसंत का 'बसंत'।

ड और ड़ का भ्रम–जैसे गुड़ का गुड।

ढ और ढ़ का भ्रम–यथा पढ़ाई का पढ़ाई, कढ़ाई का कढाई।

चन्द्रबिन्दु और अनुस्वार का भ्रम–यथा गंगा का गँगा और चाँद का चांद कहना।

य और ज का भ्रम–यथा यमराज को 'जमराज' लिखना, यज्ञ का 'जज्ञ' उच्चारित करना।

अनुनासिकता का भ्रम–यथा सोचने को सोंचना लिखना, बच्चा को बंच्चा लिखना।

अल्पप्राण और महाप्राण सम्बन्धी भ्रम–यथा बुढ़ापा को बुडापा, घूमना को गूमना, घर को गर।

शब्द विपर्यय–यथा लिफाफा को लिलाफा कहना, आदमी को आमदी कहना।

शब्दांश विपर्यय–यथा 'बाल की खाल निकालने' को 'खाल की बाल निकालना'।

हड़बड़ाहट या तुतलाहट–यथा 'ततत तुम्मामारा घघरर कहाँ है'?

न्यूनाधिक गति–शब्द या वाक्य या वाक्य खंड को शीघ्रता में बोलना या देर तक खींचकर बोलने से भी उच्चारण सम्बन्धी दोष आ जाते हैं।

शारीरिक दोष–जिव्हा, ओष्ठ, तालु आदि में दोष आने से उच्चारण सम्बन्धी दोषों का आना स्वाभाविक है।

मनोवैज्ञानिक कारण–भय, दुर्व्यवहार, शंका आदि से जिव्हा, तालु, ओष्ठ आदि लड़खड़ाने लगते हैं और उच्चारण सम्बन्धी दोष आ जाते हैं।

ध्वन्यात्मक दोष–यथा उलटा-पलटा को उल्टा-पल्टा लिखना।

इसी प्रकार हिन्दी भाषा में उच्चारण सम्बन्धी अन्य कई दोष विद्यमान हैं।

उच्चारण सम्बन्धी दोषों का निराकरण

शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था से ही उच्चारण पर ध्यान देना चाहिए, ताकि बालक अशुद्ध उच्चारण न करें। बाल्यावस्था से ही इस पहलू पर ध्यान देने से बालक भविष्य में कभी भी उच्चारण के दोषी नहीं होंगे। अशुद्ध उच्चारण के निराकरण के लिए निम्न उपाय किये जायें–

उच्चारण अंगों की चिकित्सा–अगर उच्चारण करने वाले अंगों में कोई दोष हो तो चिकित्सक से चिकित्सा करानी चाहिए। उच्चारण करने में 'वास नलिका, कण्ठ, जीभ, वर्त्स, नाक, ओष्ठ, तालु, मूर्धा, दाँत आदि की सहायता ली जाती है। इन अंगों में दोष आने पर उच्चारण के प्रभावित होने की संभावना रहती है। इसलिए इन अंगों में दोष आने पर तत्काल चिकित्सा करानी चाहिए। उच्चारण करने वाले अंगों का चित्र सामने पृष्ठ पर दिया गया है।

शुद्ध उच्चारण वाले लोगों का सहवास–बालक में अनुकरण की अपूर्व क्षमता होती है। वह अनुकरण के माध्यम से कठिन से कठिन तथ्य समझ लेता है। अगर उसे शुद्ध उच्चारण करने वाले लोगों, विद्वानों आदि के साथ रखा जाये तो उसमें उच्चारण दोष का भय नहीं रहेगा। उसका उच्चारण रेडियो, ग्रामोफोन, टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से इसी पद्धति पर सुधारा जा सकता है।

नागरी ध्वनितत्त्व को समझाना–अध्यापक को ध्वनितत्त्वों का विशेषज्ञ होना चाहिए। उसे बालकों को वर्णमाला के स्वर, व्यंजन से लेकर कठिन उच्चारणों की शिक्षा विधिवत् देनी चाहिये, ताकि उनका उच्चारण सुधर जाये। उसे अर्द्ध-स्वरों एवं अर्द्ध-व्यंजनों, संयुक्ताक्षरों, संयुक्त ध्वनियों आदि का विशेष ध्यान रखकर उच्चारण सिखना चाहिए।

ध्वनियंत्रों का सम्यक ज्ञान कराना–बालकों को यह बताना अनिवार्य है कि ध्वनियाँ कैसे बनती हैं? ध्वनियों के उच्चारण में जीभ, ओष्ठ, कण्ठ, काकली आदि का क्या योगदान है। अल्पप्राण एवं महाप्राण ध्वनियों में क्या अन्तर है? स्वर और व्यंजन में क्या अन्तर है? इन तथ्यों को उसे उदाहरण देकर शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। इस संदर्भ में उसे निम्न ध्वनियंत्रों एवं दृश्य-श्रव्य उपकरणों की सहायता लेनी चाहिए–

कायमोग्राफ–अल्पप्राण महाप्राण, घोष-अघोष, स्पर्श-संघर्षों की मात्रा आदि की शिक्षा के लिये यह उपकरण बड़ा ही उपादेय है।

कृत्रिम तालु–ध्वनियों के शुद्ध एवं स्टीक उच्चारण के लिए यह उपकरण जीभ के ऊपरी तालु पर रखा जाता है।

एक्सरे–स्वरों एवं व्यंजनों के उच्चारण में जीभ की सही स्थिति का पता एक्सरे के माध्यम से लगाया जा सकता है।

लैरिंगोस्कोप–स्वरतंत्रियों की गतिविधियों के अध्ययन में इस यंत्र की उपयोगिता जगत विख्यात है।

अन्य उपयोगी यंत्र–इन्द्रीस्कोप, आटोफोनोस्कोप, नेमोग्राफ, फ्लास्क स्टेथोग्राफ आदि उपकरण विदेशों में उच्चारण सम्बन्धी सुधार के लिए प्रयुकत किये जा रहे हैं।

हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण सिखाना–हिन्दी ध्वनियों के वर्गीकरण की सच्ची शिक्षा दिये बिना छात्रों का उच्चारण दोष कदापि दूर नहीं किया जा सकता है। ध्वनियों का वर्गीकरण चार प्रकार से किया गया है–

बाह्य प्रयत्न के आधार पर–इस आधार पर सभी वर्ण, 'वास तथा नाद तथा अल्पप्राण एवं महाप्राण में विभक्त है।

आन्तरिक प्रयत्न के आधार पर–इस आधार पर संवृत, अर्द्ध-संवृत, विवृत एंव अर्द्ध-विवृत के रूप में ध्वनियाँ विभक्त हैं।

उच्चारण की प्रकृति के आधार पर–उच्चारण की प्रकृति के आधार पर स्वर, ह्रर्व, दीर्घ में तथा अन्य वर्ण, स्पर्श, पार्श्विक, अनुनासिक, ऊष्म, अन्त:स्थ, लुंठित एवं उित्क्षप्त स्वरूप में विभक्त हैं।

उच्चारण स्थल के आधार पर–इस आधार पर वर्ण-कंठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, दन्त्य, ओष्ठ्य, दन्तोष्ठ्य एवं वर्त्स्य के रूप में विभक्त हैं। बालकों को वही अध्यापक इनका स्पष्ट विवरण दे सकता है, जिसे स्वयं इनके बारे में शतप्रतिशत जानकारी हो। इनकी शिक्षा बालकों 12-13 वर्ष की उम्र से 18 वर्ष की उम्र तक देनी चहिए। इसके ऊपरान्त उनमें उच्चारण सम्बन्धी दोष नहीं आ पायेगा।

हिन्दी की कतिपय विशेष ध्वनियों का अभ्यास–प्राय: हिन्दी भाषा में स, श एवं ष, न एवं ण, व तथा ब, ड तथा ड़, क्ष तथा छ आदि का उच्चारण दोष बालकों में पाया जाता है जैसे विकास का उच्चारण 'विकाश', महान का उच्चारण 'महाण', वन का उच्चारण 'बन' आदि। अध्यापक को इस संदर्भ में विशेष जागरुक रहना चाहिए और इस संदर्भ में भूल होते ही निराकरण कर देना चहिए।

बल, विराम तथा सस्वर पाठ का अभ्यास–अक्षरों या शब्दों का उच्चारण ही पर्याप्त नहीं है, वरन् पूरे वाक्य को उचित बल, विराम तथा सुस्वर वाचन के आधार पर पढ़ने का अभ्यास डालना भी आवश्यक है। शब्दों पर उचित बल देकर पढ़ने से अर्थभेद एवं भावभेद का ज्ञान होता है। विराम के माध्यम से लय, प्रवाह एवं गति का पता लगता है। इसलिये इन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इससे उच्चारण सम्बन्धी दोषों का निवारण भी होता है।

पुस्तकों के शुद्ध वाचन (पाठ) पर बल–उच्चारण सम्बन्धी दोषों के निवारण के लिए पुस्तकों का शुद्ध वाचन आवश्यक हैं पहले अध्यापक आदर्श वाचन प्रस्तुत करे, इसके ऊपरान्त वह छात्रों से शुद्ध वाचन कराएँ। वाचन में सावधानी रखे तथा अशुद्धियों का सम्यक निवारण कराएँ।

उच्चारण प्रतियोगिताएं–कक्षा शिक्षण में मुख्यतया भाषा के कालांश में उच्चारण की प्रतियोगिताएँ करानी चाहिएँ। कठिन शब्द श्यामपट पर लिखकर उनका उच्चारण कराना चाहिए। सर्वथा शुद्ध उच्चारण करने वाले छात्रों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

भाषण एवं संवाद प्रतियोगिताएँ–भाषण एवं संवाद प्रतियोगिताओं से उच्चारण शुद्ध होते हैं। निर्णायक मंडल को पुरस्कार देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शुद्ध उच्चारण करने वाले छात्रों को ही पुरस्कार या प्रोत्साहन मिले।

विश्लेषण विधि का प्रयोग–कठिन एवं बड़े-बड़े शब्दों व ध्वनियों के उच्चारण में विश्लेषण विधि का प्रयोग किया जाये। इससे अशुद्ध उच्चारण की संभावना कम हो जाती है। पूरे शब्दों को अक्षरों में विभक्त करने से संयुक्ताक्षारों व कठिन शब्दों को सहज एवं सहजग्राह्य बनाया जा सकता है, जैसे सम्मिलित शब्द को सम्+मि+लि+त, उत्तम शब्द को उत्+त+म आदि-आदि।

अनुकरण विधि का प्रयोग–उच्चारण का सुधार अनुकरण विधि से किया जा सकता है। अध्यापक कठिन शब्दों का उच्चारण स्वयं पहले करे तथा पुनः कक्षा के बालकों को उसका अनुकरण करने को कहे। अनुकरणशील छात्रों के हाव-भाव, जिह्वा संचालन, मुखावयव तथा स्वरों के उतार-चढ़ाव का पूर्ण ध्यान रखा जाना आवश्यक है, ताकि उच्चारण में प्रत्याशित सुधार लाया जा सके।

मानसिक संतुलन हेतु प्रयास–जो छात्र भय व संकोच के कारण अशुद्ध उच्चारण करने लगें, उन्हें पूर्ण प्रोत्साहन देना चाहिएय ताकि उनमें आत्मविश्वास का भाव जगे और उनका मानसिक संतुलन बना रहे। ऐसे छात्रों को प्रेरणा एवं सहानुभूति चाहिए। उनकी भूलों पर बिगड़ने या डाँटने की आवश्यकता नहीं है। इस विधि से क्रमशः धीरे-धीरे उनका उच्चारण सुधरने लगेगा।

सभी विषयों के शिक्षण में उच्चारण पर ध्यान–उच्चारण पर ध्यान देना केवल भाषा-शिक्षक का ही कार्य नहीं है। सभी विषयों के शिक्षण में उच्चारण पर अगर ध्यान दिया जाये, तो उच्चारण में सुधार शीघ्रता से होगा। प्रायः यह कार्य भाषा के अध्यापक का ही माना जाता है, जो एक भूल है। सभी विषयों के अध्यापकों को इस पहलू पर बल देना चाहिए।

वैयक्तिक एवं सामूहिक विधि का प्रयोग–उच्चारण-सुधार के लिए दोनों ही विधियां प्रयुक्त की जायें। बालक विशेष के उच्चारण संबंधी दोष के परिष्कार के लिए वैयक्तिक विधि उपयोगी है। जब कक्षा के अधिक छात्र कठिन शब्दों का उच्चारण नहीं कर पाते हैं तो ऐसी स्थिति में सामूहिक विधि द्वारा निराकरण किया जाना चाहिए, जैसे स्कूल कहने की आदत का परिष्कार, स्त्री को इस्त्री कहने की आदत का परिष्कार।

स्वराघात पर बल–कब किस शब्द पर बल देना है, इसका उच्चारण में बड़ा महत्त्व है। यह भावभेद एवं अर्थभेद की जानकारी कराता है। इसलिए उच्चारण में स्वराघात पर विशेष ध्यान देना चहिए। स्वराघात का अभ्यास वाचन के समय, संवाद, नाटक, सस्वर वाचन व भावानुकूल वाचन के रूप में कराया जा सकता है। स्वर के उतार-चढ़ाव पर ध्यान देने से स्वराघात का अभ्यास हो जाता है।

4

हिन्दी साहित्य

हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। उसकी जड़ें प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा तक जातीं हैं, परन्तु मध्ययुगीन भारत के अवधी, मागधी, अर्धमागधी तथा मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य को हिन्दी का आरम्भिक साहित्य माना जाता है। हिंदी साहित्य ने अपनी शुरुआत लोकभाषा कविता के माध्यम से की और गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ। हिंदी का आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है। हिंदी में तीन प्रकार का साहित्य मिलता है-गद्य,पद्य और चम्पू। जो गद्य और पद्य दोनों में हो उसे चंपू कहते हैं। खड़ी बोली की पहली रचना कौन सी है इस विषय में विवाद है, लेकिन ज्यादातर साहित्यकार लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखे गये उपन्यास परीक्षा गुरु को हिन्दी की पहली प्रामाणिक गद्य रचना मानते हैं।

नाटक

नाटक की गिनती काव्यों में है। काव्य दो प्रकार के माने गये हैं– श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। इसी दृश्य काव्य का एक भेद नाटक माना गया है। परन्तु दृष्टि द्वारा मुख्य रूप से इसका ग्रहण होने के कारण सभी दृश्य काव्यों को ही 'नाटक' कहने लगे हैं।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रंथ मिलता है। अग्निपुराण में भी नाटक के लक्षण आदि का निरूपण है। उसमें एक प्रकार के काव्य का नाम प्रकीर्ण कहा गया है। इस प्रकीर्ण के दो भेद है– काव्य और अभिनेय। अग्निपुराण में दृश्य काव्य या रूपक के 27 भेद कहे गए हैं–

नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अंक, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीनिगदित, नाटयरासक, रासक, उल्लाप्यक और प्रेक्षण। '

साहित्यदर्पण में नाटक के लक्षण, भेद आदि अधिक स्पष्ट रूप से दिए हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि दृश्य काव्य के एक भेद का नाम नाटक है। दृश्य काव्य के मुख्य दो विभाग हैं– रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं– रूपक, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, ड़िम, ईहामृग, अंकवीथी और प्रहसन। 'उपरूपक' के अठारह भेद हैं– नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाटयरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षणा, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिंपक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीशा और भणिका।

उपर्युक्त भेदों के अनुसार नाटक शब्द दृश्य काव्य मात्र के अर्थ में बोलते हैं। साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक किसी ख्यात वृत्त (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं)' की लेकर लिखाना चाहिए। वह बहुत प्रकार के विलास, सुख, दु:ख, तथा अनेक रसों से युक्त होना चाहिए। उसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होने चाहिए। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिए। नाटक के प्रधान या अंगी रस श्रृंगार और वीर हैं। शेष रस गौण रूप से आते हैं। शांति, करुणा आदि जिस रूपक में में प्रथान हो वह नाटक नहीं कहला सकता। संधिस्थल में कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिए। उपसंहार में मंगल ही दिखाया जाना चाहिए। वियोगांत नाटक संस्कृत अलंकार शास्त्र के विरुद्ध है।

नाटक के प्रमुख तत्त्व

1. कथावस्तु

अंग्रेजी में इसे 'प्लॉट' की संज्ञा दी जाती है, जिसका अर्थ 'आधार' या 'भूमि' है। नाटक की कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या सामाजिक हो सकती है। कथा तो सभी प्रबंधात्मक रचनाओं की रीढ़ होती है (नाटक भी क्योंकि प्रबंधात्मक रचना है।)। भारतीय आचार्यों ने नाटक में तीन प्रकार की कथाओं का निर्धारण किया है–

(i) प्रख्यात

(ii) उत्पाद्य

(iii) मिश्र प्रख्यात कथा।

प्रख्यात कथा–प्रख्यात कथा इतिहास, पुराण से प्राप्त होती है। जब उत्पाद्य कथा कल्पना पराश्रित होती है, मिश्र कथा कहलाती है। इतिहास और कथा दोनों का योग रहता है। इन कथा आधारों के बाद नाटक कथा को मुख्य तथा गौण अथवा प्रासंगिक भेदों में बांटा जाता है, इनमें से प्रासंगिक के भी आगे पताका और प्रकरी है। पताका प्रासंगिक कथावस्तु मुख्य कथा के साथ अंत तक चलती है जब प्रकरी बीच में ही समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त नाटक की कथा के विकास हेतु कार्य व्यापार की पांच अवस्थाएं प्रारंभ प्रयत्न, परपर्याशा नियताप्ति और कलागम होती है। इसके अतिरिक्त नाटक में पांच संधियों का प्रयोग भी किया जाता है। वास्तव में नाटक को अपनी कथावस्तु की योजना में पात्रों और घटनाओं में इस रूप में संगति बैठानी होती है कि पात्र कार्य व्यापार को अच्छे ढंग से अभिव्यक्त कर सके। नाटककार को ऐसे प्रसंग कथा में नहीं रखनी चाहिए जो मंच का संयोग न होकर यदि कुछ प्रसंग बहुत आवश्यक है तो नाटककार को उसकी सूचना कथा में दे देनी चाहिए। नाटक की कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या सामाजिक हो सकती है।

2. पात्र–नाटक में नाटक का अपने विचारों, भावों आदि का प्रतिपादन पात्रों के माध्यम से ही करना होता है। अत: नाटक में पात्रों का विशेष स्थान होता है। प्रमुख पात्र अथवा नायक कला का अधिकारी होता है तथा समाज को उचित दशा तक ले जाने वाला होता है। भारतीय परंपरा के अनुसार वह विनयी, सुंदर, शालीनवान, त्यागी, उच्च कुलीन होना चाहिए। किंतु आज नाटकों में किसान, मजदूर आदि कोई भी पात्र हो सकता है। पात्रों के संदर्भ में नाटककार को केवल उन्हीं पात्रों की सृष्टि करनी चाहिए जो घटनाओं को गतिशील बनाने में तथा नाटक के चरित्र पर प्रकाश डालने में सहायक होते हैं।

पात्रों का सजीव और प्रभावशाली चरित्र ही नाटक की जान होता है। कथावस्तु के अनुरूप नायक धीरोदात्त, धीर ललित, धीर शांत या धीरोद्धत हो सकता है।

3. उद्देश्य–सामाजिक के हृदय में रक्त का संचार करना ही नाटक का उद्देश्य होता है। नाटक के अन्य तत्त्व इस उद्देश्य के साधन मात्र होते हैं। भारतीय दृष्टिकोण सदा आशावादी रहा है इसलिए संस्कृत के प्राय: सभी नाटक सुखांत

रहे हैं। पश्चिम नाटककारों ने या साहित्यकारों ने साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हुए उसके प्रति यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया है उसके प्रभाव से हमारे यहां भी कई नाटक दुखांत में लिखे गए हैं, किंतु सत्य है कि उदास पात्रों के दुखांत अंत से मन खिन्न हो जाता है। अत: दुखांत नाटकों का प्रचार कम होना चाहिए।

4. भाषा शैली—नाटक सर्वसाधारण की वस्तु है अत: उसकी भाषा शैली सरल, स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिए, जिससे नाटक में प्रभाविकता का समावेश हो सके तथा दर्शक को क्लिष्ट भाषा के कारण बौद्धिक श्रम ना करना पड़े अन्यथा रस की अनुभूति में बाधा पहुँचेगी। अत: नाटक की भाषा सरल व स्पष्ट रूप में प्रवाहित होनी चाहिए।

5. देशकाल वातावरण—देशकाल वातावरण के चित्रण में नाटककार को युग अनुरूप के प्रति विशेष सतर्क रहना आवश्यक होता है। पश्चिमी नाटक में देशकाल के अंतर्गत संकलनअत्र समय स्थान और कार्य की कुशलता का वर्णन किया जाता है। वस्तुत: यह तीनों तत्त्व 'यूनानी रंगमंच' के अनुकूल थे। जहां रात भर चलने वाले लंबे नाटक होते थे और दृश्य परिवर्तन की योजना नहीं होती थी। परंतु आज रंगमंच के विकास के कारण संकलन का महत्त्व समाप्त हो गया है। भारतीय नाट्यशास्त्र में इसका उल्लेख न होते हुए भी नाटक में स्वाभाविकता, औचित्य तथा सजीवता की प्रतिष्ठा के लिए देशकाल वातावरण का उचित ध्यान रखा जाता है। इसके अंतर्गत पात्रों की वेशभूषा तत्कालिक धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों में युग का विशेष स्थान है। अत: नाटक के तत्त्वों में देशकाल वातावरण का अपना महत्त्व है।

6. संवाद—नाटक में नाटकार के पास अपनी ओर से कहने का अवकाश नहीं रहता। वह संवादों द्वारा ही वस्तु का उद्घाटन तथा पात्रों के चरित्र का विकास करता है। अत: इसके संवाद सरल, सुबोध, स्वभाविक तथा पात्रअनुकूल होने चाहिए। गंभीर दार्शनिक विषयों से इसकी अनुभूति में बाधा होती है। इसलिए इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। नीर सत्ता के निरावरण तथा पात्रों की मनोभावों की मनोकामना के लिए कभी-कभी स्वागत कथन तथा गीतों की योजना भी आवश्यक समझी गई है।

7. रस—नाटक में नवरसों में से आठ का ही परिपाक होता है। शांत रस नाटक के लिए निषिद्ध माना गया है। वीर या शृंगार में से कोई एक नाटक का प्रधान रस होता है।

8. अभिनय–यह नाटक की प्रमुख विशेषता है। नाटक को नाटक के तत्त्व प्रदान करने का श्रेय इसी को है। यही नाट्यतत्त्व का वह गुण है, जो दर्शक को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस संबंध में नाटककार को नाटकों के रूप, आकार, दृश्यों की सजावट और उसके उचित संतुलन, परिधान, व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिए। दूसरे शब्दों में लेखक की दृष्टि रंगशाला के विधि–विधानों की ओर विशेष रूप से होनी चाहिए इसी में नाटक की सफलता निहित है।

अभिनय भी नाटक का प्रमुख तत्त्व है। इसकी श्रेष्ठता पात्रों के वाक्चातुर्य और अभिनय कला पर निर्भर है। मुख्य प्रकार से अभिनय 4 प्रकार का होता है।

1. आंगिक अभिनय (शरीर से किया जाने वाला अभिनय),
2. वाचिक अभिनय (संवाद का अभिनय रेडियो नाटक),
3. आहार्य अभिनय (वेशभूषा, मेकअप, स्टेज विन्यास्, प्रकाश व्यवस्था आदि),
4. सात्विक अभिनय (अंतरात्मा से किया गया अभिनय रस आदि।

हिन्दी रंगमंच और भारतेन्दु हरिश्चंद्र

इस प्रकार भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी रंगमंच और नाट्य–रचना के व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक साहित्यिक प्रयास तो हुए पर हिन्दी का वास्तविक और स्थायी रंगमंच निर्मित और विकसित नहीं हो पाया था। सन् 1850 ई. से सन् 1868 ई. तक हिन्दी रंगमंच का उदय और प्रचार–प्रसार तो हुआ पर उसका सुरुचिपूर्ण विकास और स्थायी निर्माण नहीं हो सका था। पारसी नाटक मंडलियों के अतिरिक्त कुछ और भी छुटपुट व्यावसायिक मंडलियाँ विभिन्न स्थानों पर निर्मित हुईं पर साहित्यिक सुरुचि सम्पन्नता का उनमें भी अभाव ही रहा।

व्यावसायिक मंडलियों के प्रयत्न में हिन्दी रंगमंच की जो रूपरेखा बनी थी, प्रचार और प्रसार का जो काम हुआ था तथा इनके कारण जो कुछ अच्छे नाटककार हिन्दी को मिले थे–उस अवसर और परिस्थिति का लाभ नहीं उठाया जा सका था।

भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुंदर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे किंतु नियमित रूप से खड़ी बोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। भारतेन्दु के पूर्ववर्ती नाटककारों में रीवा नरेश

विश्वनाथ सिंह (1846-1911) के बृजभाषा में लिखे गए नाटक 'आनंद रघुनंदन' और गोपालचंद्र के 'नहुष' (1841) को अनेक विद्वान हिंदी का प्रथम नाटक मानते हैं। यहाँ यह जानना रोचक हो सकता है कि गोपालचंद्र, भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पिता थे।

हिन्दी के विशुद्ध साहित्यिक रंगमंच और नाट्य-सृजन की परम्परा की दृष्टि से सन् 1868 ई. का बड़ा महत्त्व है। भारतेन्दु के नाटक-लेखन और मंचीकरण का श्रीगणेश इसी वर्ष हुआ। इसके पूर्व न तो पात्रों के प्रवेश-गमन, दृश्य-योजना आदि से युक्त कोई वास्तविक नाटक हिन्दी में रचा गया था और न ही भारतेन्दु के पिता गोपालचन्दर चित 'नहुष' तथा महाराज विश्वनाथसिंह रचित 'आनंदरघुनंदन' भी पूर्ण नाटक नहीं थे, न पर्दों और दृश्यों आदि की योजना वाला विकसित रंगमंच ही निर्मित हुआ था, नाट्यारंगन के अधिकतर प्रयास भी अभी तक मुंबई आदि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही हुए थे और भाषा का स्वरूप भी हिन्दी-उर्दू का मिश्रित खिचड़ी रूप ही था।

3 अप्रैल सन् 1868 को पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी रचित 'जानकी मंगल' नाटक का अभिनय 'बनारस थियेटर' में आयोजित किया था। कहते हैं कि जिस लड़के को लक्ष्मण का अभिनय पार्ट करना था वह अचानक उस दिन बीमार पड़ गया। लक्ष्मण के अभिनय की समस्या उपस्थित हो गई और उस दिन युवक भारतेन्दु स्थिति को न सँभालते तो नाट्यायोजन स्थगित करना पड़ता। भारतेन्दु ने एक-डेढ़ घंटे में ही न केवल लक्ष्मण की अपनी भूमिका याद कर ली अपितु पूरे 'जानकी मंगल' नाटक को ही मस्तिष्क में जमा लिया। भारतेन्दु ने अपने अभिजात्य की परवाह नहीं की।

उन दिनों उच्च कुल के लोग अभिनय करना अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं समझते थे। इस प्रकार इस नाटक से भारतेन्दु ने रंगमंच पर सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया। इसी समय-उन्होंने नाट्य-सृजन भी आरम्भ किया।

भारतेन्दु ने सन् 1868 ई. से सन् 1885 ई. तक अपने स्वल्प और अत्यन्त व्यस्त जीवन से शेष 17 वर्षों में अनेक नाटकों का सृजन किया, अनेक नाटकों में स्वयं अभिनय किया, अनेक रंगशालाएँ निर्मित कराईं और हिन्दी रंगमंच के स्थापन का स्तुत्य प्रयास किया। यही नहीं, भारतेन्दु के अनेक लेखकों और रंगकर्मियों को नाट्य-सृजन और अभिनय के लिए प्रेरित किया। भारतेन्दु के सदुद्योग एवं प्रेरणा से काशी, प्रयाग, कानपुर आदि कई स्थानों पर हिन्दी का अव्यावसायिक साहित्यिक रंगमंच स्थापित हुआ।

भारतेन्दु के ही जीवन काल में ये कुछ रंग-संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं–

(1) काशी में भारतेन्दु के संरक्षण में नेशनल थियेटर की स्थापना हुई। भारतेन्दु अपना 'अंधेर नगरी' प्रहसन इसी थियेटर के लिए एक ही रात में लिखा था,

(2) प्रयाग में 'आर्य नाट्यसभा' स्थापित हुई जिसमें लाला श्रीनिवासदास का 'रंगधीर प्रेममोहिनी' प्रथम बार अभिनीत हुआ था,

(3) कानपुर में भारतेन्दु के सहयोगी पं. प्रतापनारायण मिश्र ने हिन्दी रंगमंच का नेतृत्व किया और भारतेन्दु के 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भारत-दुर्दशा', 'अंधेर नगरी' आदि नाटकों का अभिनय कराया।

इनके अतिरिक्त बलिया, डुमराँव, लखनऊ आदि उत्तर-प्रदेश के कई स्थानों और बिहार-प्रदेश में भी हिन्दी रंगमंच और नाट्य-सृजन की दृढ़ परम्परा का निर्माण हुआ।

प्रेरणा-स्रोत

भारतेन्दु और उनके सहयोगी लेखकों ने नाट्य-सृजन की प्रेरणा कहाँ-कहाँ से प्राप्त की, यह प्रश्न पर्याप्त महत्त्व का है। इस प्रश्न का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि हिन्दी में नाट्य-रचना का सूत्रपात भारतेन्दु की ही नव-प्रवर्तनकारी प्रतिभा से हुआ। यद्यपि भारतेन्दु से पूर्व नाट्य-शैली में कुछ सृजन-प्रयास हुए थे, पर नाटक के वास्तविक रूप का उद्‌भव सर्वप्रथम भारतेन्दु की ही लेखिनी से हुआ। अस्तु, जब हिन्दी में इस साहित्यि-विधा का अभाव था, तो भारतेन्दु ने नाट्य-सृजन की प्रेरणा कहाँ से ली?

साहित्यिक प्रेरणा–साहित्यिक प्रेरणा की खोज की जाय तो कहा जा सकता है कि भारतेन्दु ने संस्कृत तथा प्राकृत की पूर्ववर्ती भारतीय नाट्य-परम्परा और बँगला की समसामयिक नाट्यधारा के साथ अंग्रेजी प्रभाव-धारा से प्रेरणा ली। यद्यपि हमारे यहाँ भास, कालीदास, भवभूति, शूद्रक आदि पूर्ववर्ती संस्कृत नाटककारों की समृद्ध नाट्य-परम्परा विद्यमान थी, पर यह खेद की बात है कि भारतेन्दु बाबू ने उस समृद्ध संस्कृत नाट्य-परम्परा को अपने सम्मुख रखा। प्राकृत-अपभ्रंश काल में अर्थात् ईसा की 9वीं-10वीं शताब्दी के बाद संस्कृत नाटक ह्रासोन्मुख हो गया था। प्राकृत और अपभ्रंश में भी नाट्य-सृजन वैसा

उत्कृष्ट नहीं हुआ जैसा पूर्ववर्ती संस्कृत-नाट्य-साहित्य था। अतः भारतेन्दु के सामने संस्कृत-प्राकृत की यह पूर्ववर्ती ह्रासगामी परम्परा रही। संस्कृत के मुरारि, राजशेखर, जयदेव आदि की क्रमशः 'अनर्घराघव', 'बालरामायण', 'प्रसन्नराघव' आदि रचनाएँ ही भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी लेखकों का आदर्श बनीं। इनमें न कथ्य-या विषय-वस्तु का वह गाम्भीर्य था, जो कालिदास आदि की अमर कृतियों में था, न उन जैसी शैली-शिल्प की श्रेष्ठता थी। यही कारण है कि भारतेन्दु-पूर्व हिन्दी नाटक सर्वथा निष्प्राण रहा और यद्यपि भारतेन्दु ने उसमें सामयिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की झलक पैदा कर नवोन्मेष और किंचित् सप्राणता का प्रयास किया, पर उनके प्रयत्नों के बावजूद भारतेन्दुकालीन हिन्दी नाटक कथ्य और शिल्प दोनों की ही दृष्टि से शैशव काल में ही पड़ा रहा, विशेष उत्कर्ष को प्राप्त नहीं हुआ।

भारतेन्दु के पश्चात

इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सत्यप्रयत्नों से हिन्दी के साहित्यिक रंगकर्म और नाट्य-लेखन की दृढ़ परम्परा चली। पर सन् 1885 ई. में भारतेन्दु के निधन के पश्चात् वह उत्साह कुछ मन्द पड़ गया। 19वीं शती के अन्तिम दशक में फिर कुछ छुटपुट प्रयास हुए। कई नाटक मंडलियों की स्थापना हुई, जैसे प्रयाग की 'श्रीरामलीला नाटक मंडली' तथा 'हिन्दी नाट्य समिति', भारतेन्दु जी के भतीजों ने श्रीकृष्णचन्द्र और श्री ब्रजचन्द्र-द्वारा काशी में स्थापित 'श्री भारतेन्दु नाटक मंडली' तथा 'काशी नागरी नाटक मंडली।' इन नाटक मंडलियों के प्रयत्न से उस समय 'महाराणा प्रताप', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'महाभारत', 'सुभद्राहरण', 'भीष्मपितामह', 'बिल्व मंगल', 'संसार स्वप्न', 'कलियुग' आदि अनेक नाटकों का अभिनय हुआ।

पर ये प्रयास भी बहुत दिन नहीं चल सके। धनाभाव तथा सरकारी और गैर-सरकारी प्रोत्साहन के अभाव में साहित्यिक रंगमंच की स्थापना के प्रयत्न कालान्तर में सब सो गए। इन छुटपुट प्रयासों के अन्तर्गत तत्कालीन साहित्यिक नाटकों का अभिनय हुआ और हिन्दी में कुछ अच्छे रंगमंचानुकूल साहित्यिक नाटकों की रचना हुई। पारसी नाटक कंपनियों के दुष्प्रभाव का तो यह प्रयास अच्छा जवाब था, किन्तु यह प्रयास था बहुत ही स्वल्प। दूसरे, इस साहित्यिक रंगान्दोलन से भी हिन्दी का रंगमंच विशेष विकसित नहीं हुआ, क्योंकि यह रंगमंच पारसी रंगमंच से विशेष भिन्न और विकसित नहीं था-वही पर्दों की योजना, वैसा

ही दृश्य-विधान और संगी आदि का प्रबंध रहता था। वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न घूमने वाले रंगमंच का विकास 19वीं शती में नहीं हो सका था। ध्वनि-यन्त्र आदि की स्थापना के प्रयास भी हिन्दी रंगमंच के विकास की दिशा में कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं दे पाए। हाँ, इनका यही लाभ हुआ की पारसी नाटक कम्पनियों के भ्रष्ट प्रचार को कुछ धक्का लगा तथा कुछ रंगमंचीय हिन्दी नाटक प्रकाश में आए।

बीसवीं शताब्दी

20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में सिनेमा के आगमन ने पारसी रंगमंच को सर्वथा समाप्त कर दिया। पर अव्यावसायिक रंगमंच इधर-उधर नए रूपों में जीवित रहा। अब हिन्दी का रंगमंच केवल स्कूलों और कॉलेजों में ही है। यह रंगमंच बड़े नाटकों की अपेक्षा एकांकियों को अधिक अपनाकर चला। इसके दो मुख्य कारण हैं-एक तो आज का दर्शक कम-से-कम समय में अपने मनोरंजन की पूर्ति करना चाहता है, दूसरे, आयोजकों के लिए भी बड़े नाटक का प्रदर्शन यहां बहुत कठिनाई उत्पन्न करता है वहाँ एकांकी का प्रदर्शन सरल है-रंगमंच, दृश्य-विधान आदि एकांकी में सरल होते हैं, पात्र भी बहुत कम रहते हैं। अतः सभी शिक्षालयों, सांस्कृतिक आयोजनों आदि में आजकल एकांकियों का ही प्रदर्शन होता है। डॉ. राम कुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्द दास, जगदीशचन्द्र माथुर आदि हमारे अनेक नाटककारों ने सुन्दर अभिनय-उपयोगी एकांकी नाटकों तथा दीर्घ नाटकों की रचना की है।

प्रसाद जी ने उच्चकोटि के साहित्यिक नाटक रच कर हिन्दी नाटक साहित्य को समृद्ध किया था, पर अनेक नाटक रंगमंच पर कुछ कठिनाई उत्पन्न करते थे। फिर भी कुछ काट-छाँट के साथ प्रसाद जी के प्रायः सभी नाटकों का अभिनय हिन्दी के अव्यावसायिक रंगमंच पर हुआ। जार्ज बर्नार्ड शॉ, इब्सन आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से उपर्युक्त प्रसादोत्तर आधुनिक नाटककारों ने कुछ बहुत सुन्दर रंगमंचीय नाटकों की सृष्टि की। इन नाटककारों के अनेक पूरे नाटक भी रंगमंचों से प्रदर्शित हुए।

स्वतंत्रता के पश्चात

स्वतंत्रता के पाश्चात् हिन्दी रंगमंच के स्थायी निर्माण की दिशा में अनेक सरकारी-गैर-सरकारी प्रयत्न हुए हैं। सरकार की ओर से भी कई गैर-सरकारी संस्थाओं को रंगमंच की स्थापना के लिए आर्थिक सहायता मिली है। पुरुषों के

साथ अब स्त्रियाँ भी अभिनय में भाग लेने लगी हैं। स्कूलों-कॉलेजों में कुछ अच्छे नाटकों का अब अच्छा प्रदर्शन होने लगा है।

अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबद्ध कुछ अच्छे स्थायी रंगमंच बने हैं, जैसे थिएटर सेंटर के तत्त्वावधान में दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, इलाहाबाद, हैदराबाद, बंगलौर, शान्तिनिकेतन आदि स्थानों पर स्थायी रंगमंच स्थापित हैं। केन्द्रीय सरकार भी इस ओर पर्याप्त ध्यान दे रही है। पर इन सर्वभाषायी रंगमंचों पर हिन्दी भिखारिणी-सी ही प्रतीत होती है।

केन्द्रीय सरकार ने संगीत नाटक अकादमी की स्थापना की है, जिसमें अच्छे नाटककारों और कलाकारों को प्रोत्साहन दिया जाता है।

व्यावसायिक रंगमंच के निर्माण के भी पिछले दिनों कुछ प्रयत्न हुए हैं। प्रसिद्ध कलाकार स्वर्गीय पृथ्वीराज कपूर ने कुछ वर्ष हुए पृथ्वी थियेटर की स्थापना की थी। उन्होंने कई नाटक प्रस्तुत किए हैं, जैसे 'दीवार', 'गद्दार', 'पठान', 'कलाकार', 'आहूति' आदि। धन की हानि उठाकर भी कुछ वर्ष इस कम्पनी ने उत्साहपूर्वक अच्छा कार्य किया। पर इतने प्रयास पर भी बंबई, दिल्ली या किसी जगह हिन्दी का स्थायी व्यावसायिक रंगमंच नहीं बन सका है। इस मार्ग में कठिनाइयाँ हैं।

निबन्ध

निबन्ध (Essay) गद्य लेखन की एक विधा है। लेकिन इस शब्द का प्रयोग किसी विषय की तार्किक और बौद्धिक विवेचना करने वाले लेखों के लिए भी किया जाता है। निबंध के पर्याय रूप में सन्दर्भ, रचना और प्रस्ताव का भी उल्लेख किया जाता है। लेकिन साहित्यिक आलोचना में सर्वाधिक प्रचलित शब्द निबंध ही है। इसे अंग्रेजी के कम्पोजीशन और एस्से के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार संस्कृत में भी निबंध का साहित्य है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के उन निबंधों में धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों की तार्किक व्याख्या की जाती थी। उनमें व्यक्तित्त्व की विशेषता नहीं होती थी। किन्तु वर्तमान काल के निबंध संस्कृत के निबंधों से ठीक उलटे हैं। उनमें व्यक्तित्त्व या वैयक्तिकता का गुण सर्वप्रधान है।

इतिहास-बोध परम्परा की रूढ़ियों से मनुष्य के व्यक्तित्त्व को मुक्त करता है। निबंध की विधा का संबंध इसी इतिहास-बोध से है। यही कारण है कि निबंध की प्रधान विशेषता व्यक्तित्त्व का प्रकाशन है।

निबंध की सबसे अच्छी परिभाषा है–

- निबंध, लेखक के व्यक्तित्त्व को प्रकाशित करने वाली ललित गद्य-रचना है।
- इस परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष है। लेकिन निबंध का रूप साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा इतना स्वतंत्र है कि उसकी सटीक परिभाषा करना अत्यंत कठिन है।

निबंध की विशेषता

सारी दुनिया की भाषाओं में निबंध को साहित्य की सृजनात्मक विधा के रूप में मान्यता आधुनिक युग में ही मिली है। आधुनिक युग में ही मध्ययुगीन धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति का द्वार दिखाई पड़ा है। इस मुक्ति से निबंध का गहरा संबंध है।

ललित अत्री जी के अनुसार–नए युग में जिन नवीन ढंग के निबंधों का प्रचलन हुआ है वे व्यक्ति की स्वाधीन चिन्ता की उपज है।

इस प्रकार निबंध में निबंधकार की स्वच्छंदता का विशेष महत्त्व है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल PC ने लिखा है–निबंध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छंद गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता चलता है। यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है। अर्थ-संबंध-सूत्रों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ ही भिन्न-भिन्न लेखकों के दृष्टि-पथ को निर्दिष्ट करती है। एक ही बात को लेकर किसी का मन किसी सम्बन्ध-सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। इसी का नाम है एक ही बात को भिन्न दृष्टियों से देखना। व्यक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है।

इसका तात्पर्य यह है कि निबंध में किन्हीं ऐसे ठोस रचना-नियमों और तत्त्वों का निर्देश नहीं दिया जा सकता जिनका पालन करना निबंधकार के लिए आवश्यक है। ऐसा कहा जाता है कि निबंध एक ऐसी कलाकृति है जिसके नियम लेखक द्वारा ही आविष्कृत होते हैं। निबंध में सहज, सरल और आडम्बरहीन ढंग से व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति होती है।

'हिन्दी साहित्य कोश' के अनुसार–लेखक बिना किसी संकोच के अपने पाठकों को अपने जीवन-अनुभव सुनाता है और उन्हें आत्मीयता के साथ उनमें भाग लेने के लिए आमंत्रित करता है। उसकी यह घनिष्ठता जितनी सच्ची और सघन होगी, उसका निबंध पाठकों पर उतना ही सीधा और तीव्र असर

करेगा। इसी आत्मीयता के फलस्वरूप निबंध-लेखक पाठकों को अपने पांडित्य से अभिभूत नहीं करना चाहता।

इस प्रकार निबंध के दो विशेष गुण हैं–

(1) व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति

(2) सहभागिता का आत्मीय या अनौपचारिक स्तर।

निबंध का आरंभ कैसे हो, बीच में क्या हो और अंत किस प्रकार किया जाए, ऐसे किसी निर्देश और नियम को मानने के लिए निबंधकार बाध्य नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि निबंध एक उच्छृंखल रचना है और निबंधकार एक उच्छृंखल व्यक्ति। निबंधकार अपनी प्रेरणा और विषय वस्तु की संभावनाओं के अनुसार अपने व्यक्तित्त्व का प्रकाशन और रचना का संगठन करता है। इसी कारण निबंध में शैली का विशेष महत्त्व है।

हिन्दी साहित्य में निबन्ध

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों से निबंध लिखने की परम्परा का आरंभ होता है। निबंध ही नहीं, गद्य की कई विधाओं का प्रचलन भारतेन्दु से होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि गद्य और उसकी विधाएँ आधुनिक मनुष्य के स्वाधीन व्यक्तित्त्व के अधिक अनुकूल हैं। मोटे रूप में स्वाधीनता आधुनिक मनुष्य का केन्द्रीय भाव है। इस भाव के कारण परम्परा की रूढ़ियाँ दिखाई पड़ती हैं। सामयिक परिस्थितियों का दबाव अनुभव होता है। भविष्य की संभावनाएँ खुलती जान पड़ती हैं। इसी को इतिहास-बोध कहा जाता है। भारतेन्दु युग का साहित्य इस इतिहास-बोध के कारण आधुनिक माना जाता है।

आत्मकथा

साहित्य में आत्मकथा किसी लेखक द्वारा अपने ही जीवन का वर्णन करने वाली कथा को कहते हैं। यह संस्मरण से मिलती-जुलती लेकिन भिन्न है। जहाँ संस्मरण में लेखक अपने आस-पास के समाज, परिस्थितियों व अन्य घटनाओं के बारे में लिखता हैं वहाँ आत्मकथा में केन्द्र लेखक स्वयं होता है। आत्मकथा हमेशा व्यक्तिपरक होती हैं, यानि वह लेखक के दृष्टिकोण से लिखी जाती हैं। इनमें लेखक अनजाने में या जानबूझ कर अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण तथ्य छुपा सकता है या फिर कुछ मात्रा में असत्य वर्णन भी कर सकता है। एक ओर

आत्मकथा से व्यक्ति के जीवन और परिस्थितियों के बारे पढ़कर पाठकों को जानकारी व मनोरंजन मिलता है, तो दूसरी ओर इतिहासकार आत्मकथाओं की जानकारी को स्वयं में मान्य नहीं ठहराते और सदैव अन्य स्रोतों से उनमें कही गई बातों की पुष्टी करने का प्रयास करते हैं।

पहली आत्मकथा हिन्दी साहित्य में बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथानक' को पहली आत्मकथा माना जाता है। इसकी रचना सन् 1641 ई. में हुई। सत्रहवीं शताब्दी में रचित जीवन के इस अर्द्धकथानक में घटना, चरित्र-चित्रण, देशकाल, रोचकता, उद्देश्य प्रवृत्ति का सजग निर्वाह आत्मकथात्मक गठाव के साथ है। यह आत्मकथा स्व और अहम् के त्याग की दीनता भरी धारणा और कण-कण में धर्म की छवि देखने वाली भारतीय मानसिकता से अलग अपने बारे में नि:संकोच स्वीकार करती कवि-आत्म-कथाकार की परम्परा विरोधी साहसिकता की परिचायक है और साथ ही भारतीय मानसिकता पर दुराव का आरोप लगाने वालों के लिए एक बड़ा प्रश्न चिह्न भी। अर्द्धकथानक में दो प्रकार के ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं-एक वे जिनका सम्बन्ध कवि के जन्मकाल के पूर्व से है और दूसरे वे जिनका सम्बंध उसके जीवनकाल से है। पहले प्रकार के उल्लेखों की एतिहासिकता पर कदाचित हमें विचार करने की आवश्यकता नहीं। दूसरे प्रकार के उल्लेखों को इतिहास की कसौटी पर इतिहासकारों और पाठालोचन के विशेषज्ञों ने परखा है, और कई ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता पाने पर डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने 'भूमिका' में 'अर्द्धकथा' की ऐतिहासिकता भली-भाँति प्रमाणित है जैसी निश्चित टिप्पणी दी है। एक असफल व्यापारी की कथा के रूप में कृति ने व्यापारी वर्ग को जिन यातनाओं, संकटों और असुविधाओं को झेलना पड़ा उन परिस्थितियों का व्यापक रूप में चित्रण किया है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 'अर्द्धकथा' का महत्त्व एक अन्य दृष्टि में और भी अधिक पाया है-''वह मध्यकालीन उत्तरी भारत की सामाजिक अवस्था तथा धनी और निर्धन प्रजा के सुख-दुख का यथार्थ परिचय देती है। बादशाहों की लिखी दिनचर्याओं और मुसलमान इतिहास लेखकों द्वारा लिखित तत्कालीन तारीखों से हमें शासन और युद्ध सम्बन्धी घटनाओं की अटूट-शृंखलाएँ भले ही मिल जाएँ, किंतु इतिहास के उस स्वर्ण युग में राजधानियों से दूर हिन्दू जनता-विशेष करके धनी और व्यापारी वर्ग को अहर्निश कितनी यातनाएँ भोगनी पड़ती थीं इसका अनुमान उन दिनचर्याओं और तारीखों से नहीं किया जा सकता। उसके लिए हमें 'अर्द्धकथा' ऐसी रचनाओं का ही आश्रय लेना पड़ेगा।'' ब्रजभाषा और खड़ी बोली हिन्दी

बोलने वाले क्षेत्र को ही कवि ने मध्यदेश के शब्द से सम्बोधित किया है। व्याकरण की दृष्टि से भी कृति में अनेक विशिष्ट प्रयोग मिलते हैं। इसमें विसर्ग और ल् के अतिरिक्त देवनागरी के समस्त स्वरों और व्यंजनों का प्रयोग हुआ है। उच्चारण सौंदर्य की दृष्टि से कहीं स्वर बढ़ाया गया है तो कहीं किसी अक्षर का लोप ही कर दिया गया है। 'कर्ता' और 'कर्म' के प्रयोग वर्तमान हिन्दी में अपने चलन के अनुसार है।

संस्मरण

लेखक अपने निजी अनुभवों को कभी किसी व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त करता है तो कभी घटना, वस्तु या क्रियाकलाप के माध्यम से। ये घटनाएँ एवं क्रिया-व्यापार कभी किसी महान व्यक्ति के साथ जुते होते हैं या कभी किसी सामान्य व्यक्ति के साथ। ये घटनाएँ चाहे जिसके साथ क्यों न जुतें हों, किन्तु लेखक सदैव उनके माध्यम से ऐसे मानव गुणों को तलाशता रहता है, जो मनुष्य को जीव यांत्रिक बनने से रोकते हैं, जो हमारे जीवन के सामने एक अनुकरणीय एवं महनीय आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

संस्मरण एक अत्यन्त लचीली साहित्य-विधा है। इसके अनेक गुण साहित्य की अन्य अनेक विधाओं में भी रचे-बसे हैं। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि इसे तथा रेखाचित्र, जीवनी, रिपोर्ताज आदि अन्य साहित्य रूपों को प्रायः एक ही समझा जाता रहा है। हिन्दी साहित्य का इतिहास में संस्मरण और रेखाचित्र को प्रायः एक-दूसरे के साथ जोंकर देखने की प्रवृत्ति रही है।

इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि जिन रचनाओं को रेखाचित्र की संज्ञा दी गयी है, उनमें से अधिकांश ऐसी हैं, जो केवल संस्मरण की संज्ञा पाने की अधिकारिणी है।

संस्मरण तथा रेखाचित्रों में साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक है। इन दोनों विधाओं में प्रथम अन्तर तो यही है कि संस्मरण केवल अतीत का ही हो सकता है जबकि रेखाचित्र के संदर्भ में ऐसा नहीं कहा जा सकता है-वह वर्तमान का भी हो सकता है और यदि सर्जक के अन्तर्मन में भविष्य का कोई निभ्रांत चित्र हो तो वह उसे भी रेखाओं में समेट सकता है।

दूसरा अन्तर यह है कि रेखाचित्र में बाहरी गठन के निरूपण पर अधिक बल होता है जबकि संस्मरण में आन्तरिक विशेषताओं के उद्घाटन की ओर दृष्टि केन्द्रित होती है।

संस्मरण केवल उसी व्यक्ति अथवा घटना आदि पर लिखा जा सकता है जिसके साथ हमारा व्यक्तिगत सम्बन्ध रहा है। जब किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति आदि से सम्बन्ध स्मृतियों पर से समय की धूल सहसा हट जाती है और अतीत के सभी चित्र साकार होकर इस रूप में हमारे सामने आते हैं कि हम उन्हें लिपिबद्ध करने के लिए बाध्य हो उठते हैं, तब जिस साहित्य रूप की सृष्टि होती है, उसे संस्मरण कहते हैं।

दूसरे शब्दों में संस्मरणों में भावात्मकता का बाहुल्य होता है। इसके विपरीत रेखाचित्र में तटस्थता पर बल रहता है।

सच तो यह है कि तटस्थता तथा निर्वैयक्तिक अंकन रेखाचित्र की पहली अनिवार्य शर्त है जबकि संस्मरण न तो तटस्थ हो सकते हैं और न निर्वैयक्तिक।

रेखाचित्र और संस्मरण में एक अन्य अन्तर यह है कि रेखाचित्र का लेखन समास शैली का प्रश्रय लेता है जबकि संस्मरण-लेखक अपनी रचना व्यास शैली में करता है। रेखाचित्रकार की प्रवृत्ति प्रायः गागर में सागर भरने की होती है। इस कारण वह कथात्मक प्रसंगों से यथासम्भव बचता हुआ चलता है। इसके विपरीत व्यास शैली में लिखे जाने के कारण वह कथात्मक प्रसंगों में कथात्मक प्रसंगों का भरपूर उपयोग किया जाता है।

संस्मरण में कल्पना का खेल खेलने की कोई गुंजाइश नहीं होती है। लेखक केवल उन्हीं घटनाओं या प्रसंगों को निबद्ध करने का प्रयास करता है, जो वास्तव में घट चुकी हैं अन्यथा उस पर झूठ बोलकर पाठकों को गुमराह करने का आरोप लगाया जा सकता है। उसकी रचना सर्वथा अप्रामाणिक घोषित की जा सकती है, लेकिन रेखाचित्र इन सारे बंधनों से सर्वथा मुक्त है।

संस्मरणों में एक सीमा तक लेखक का निजी व्यक्तित्त्व भी समाविष्ट हो जाता है। उसकी अपनी रुचि-अरुचि, राग-द्वेष, आदि विभिन्न प्रतिक्रियाओं और टिप्पणियों के माध्यम से व्यक्त होती चलती है जबकि रेखाचित्र में इन सबके लिए कोई अवकाश नहीं है।

संस्मरणः परिभाषाएँ–आधुनिक गद्य साहित्य में संस्मरण साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान है। संस्मरण शब्द की व्युत्पति स्मृ धातु में सम् उपसर्ग तथा ल्युट प्रत्यय लगने से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है सम्यक् रूप से स्मरण करना। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने संस्मरण शब्द को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। आगे यहाँ कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ दी जा रही है–

(1) डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार–"भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक शैली में अपने व्यक्तित्त्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप से प्रस्तुत कर देता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं।''

(2) बाबू गुलाबराय संस्मरण के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि '' वे (संस्मरण) प्राय: घटनात्मक होते हैं, किन्तु वे घटनाएँ सत्य होती है और साथ ही चरित्र की परिचायक भी उनमें थोा सा चटपटेपन का भी आकर्षण होता है। संस्मरण चरित्र के किसी एक पहलू की झाँकी देते हैं।''

अन्य परिभाषाएँ

(3) डॉ. शान्ति खन्ना के अनुसार–"जब लेखक अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्त्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रमणीय एवं प्रभावशाली रूप से वर्णन करता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं।''

(4) डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने संस्मरण की व्याख्या नये ढंग से की है–"संस्मरण ललित निबन्ध का बहुत ही लोकप्रिय प्रकार है। बीते काल और घटना को बार-बार दुहाकर न सिर्फ मनुष्य संतोष पाता है, बल्कि वह अपने वातावरण में घटित समसामयिकता की अतीत के चित्रों से तुलना करके अपने को जाँचता-बदलता रहता है। संस्मरणात्मक निबन्ध मुख्य तथा महान व्यक्तियों के सानिध्य में अपने को तथा समाज को रखकर देखने की नई दृष्टि देते हैं।''

संस्मरण की विशेषताएँ

संस्मरण से मिलती-जुलती विविध विधाओं के साम्य-वैषम्य, विश्लय अध्ययन उपलब्ध संस्मरण साहित्य का चिन्तन-मनन करने के बाद इस विधा के अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ यथा वैयक्तिकता, जीवन के खण्ड विशेष का चित्रण, सत्यकथा का निरूपण, चित्रोपमता आदि सहज ही मुखर हो उठती है। ये विशेषताएँ ही इस साहित्य रूप के विधायक उपकरण है।

वैयक्तिकता–चूँकि संस्मरण में लेखक अपने जीवन के किसी ऐसे प्रसंग, ऐसी घटना को निबद्ध करता है जिसे भूल नहीं पाता और जो समय की पर्याप्त धूल जम जाने के बाद भी ताजी बनी रहती है अतएव इसका पहली महत्त्वपूर्ण उपकरण तो वैयक्तिकता ही माना जाना चाहिए।

हिन्दी के सभी संस्मरण लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि उनके स्मृति चित्रों में उनके जीवन-सूत्र भी अनुस्यूत है। उदाहरण के लिए महादेवी वर्मा ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि इस स्मृतियों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था।

अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उनके बाहर तो वे अनन्त अंधकार के अंश है। मेरे जीवन की परिधि के भीतर रखे होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपान्तरित हो जायेगा।

फिर जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर भूरी-सी सृष्टि क्यों करती।

परन्तु मेरा निकटताजनित आत्मविज्ञान उस राख से अधिक महत्त्व नहीं रखता जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके परे नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता।

इसी प्रकार से रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी 'माटी की मूरतें' नामक पुस्तक में इसी ओर संकेत किया है। उनके अपने शब्दों में, "हजारीबाग सेन्ट्रल जेल के एकान्त जीवन में अचानक मेरे गाँव और मेरे ननिहाल के कुछ लोगों की मूरतें मेरी आँखों के सामने आकर नाचने और मेरी कलम से चित्रण की याचना करने लगी।

उनकी इस याचना में कुछ ऐसा जोर था कि अन्ततः यह 'माटी की मूरतें' तैयार होकर रही। हाँ, जेल में रहने के कारण बेजमासा भी इनकी पाँति में आ बैठे और अपनी मूरत मुझसे गढ़वा ली। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैयक्तिकता संस्मरण का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है।

जीवन के खण्ड विशेष का चित्र–संस्मरण में लेखक अपने जीवन के किसी प्रसंग, घटना या अपने सम्पर्क में आये हुए व्यक्ति विशेष के किसी महत्त्वपूर्ण पक्ष की झाँकी प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में वह सम्पूर्ण जीवन को नहीं, अपितु जीवन के किसी एक खण्ड विशेष को कथ्य के रूप में प्रस्तुत करता है-हाँ, यह अवश्य है कि यह खण्ड विशेष न केवल स्वतः पूर्ण होता है, अपितु महत्त्वपूर्ण भी होता है।

इसके द्वारा जहाँ एक ओर व्यक्ति विशेष का वैशिष्ट्य साकार हो उठता है, वहाँ दूसरी ओर उन परिस्थितियों का बोध भी होता है जिनके मध्य संस्मर्ण्य

अपनी जीवन-नौका खेता है। इन परिस्थितियों की जानकारी हाने पर हम उस काल विशेष का एक प्रामाणिक सामाजिक इतिहास तैयार कर सकते हैं।

कथात्मकता—संस्मरण एक कथात्मक साहित्य रूप है, लेकिन संस्मरण में अनुस्यूत कथा काल्पनिक न होकर सत्यकथा होती है। परिणामत: यह सहज ही विश्वसनीय होती है। किसी शंका अथवा अविश्वास को यहाँ कोई स्थान नहीं है। यद्यपि इस साहित्य-रूप का ताना-बाना वैयक्तिक जीवन की घटनाओं से बुना जाता है, किन्तु फिर भी ये रचनाएँ पाठक के साथ सहज ही तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर लेती है।

इसका कारण यह है कि इन रचनाओं में जीवन के ऐसे कटु-मधुर, देखे-अनदेखे पक्षों को स्थान दिया जाता है जिनके जानने की इच्छा सभी व्यक्तियों में होती है-वैसे भी किसी दूसरे की अन्तरंग बातें जान लेने के लिए कौन उत्सुक नहीं होता रहा।

चित्रोपमता—यद्यपि चित्रोपमता संस्मरण साहित्य का अनिवार्य विधायक उपकरण है, किन्तु यह हिन्दी संस्मरणों की एक ऐसी विशेषता है जिसके फलस्वरूप संस्मरणों को प्राय: रेखाचित्र कहा जाता रहा है।

चित्रोपमता से अभिप्राय है लेखक का अपने प्रतिपाद्य को इस प्रकार प्रस्तुत करना कि उसका वैसा ही स्पष्ट चित्र पाठक के सामने साक्षात् हो उठे जैसा चित्रकार अथवा फोटोग्राफर बना देता है कि लेकिन जिस प्रकार अच्छा चित्र बनाने एवं खींचने के लिए चित्रकार या फोटोग्राफर का बहुत कुशल होना आवश्यक है, उसी प्रकार संस्मरणों में चित्रोपमता के गुण का समावेश होने के लिए लेखक में कतिपय गुणों का होना भी आवश्यक होता है।

जिस प्रकार चित्रकार हर आड़ी-तिरछी रेखा को बहुत सोच-विचार कर खींचता है, उसी प्रकार संस्मरण लेखक भी अपने संस्मर्ण्य का प्रत्यंकन करते समय प्रत्येक शब्द को चुन-चुनकर रखता है। ऐसा तभी सम्भव है जब लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार हो। इसके अलावा लेखक का अत्यधिक संवेदनशील एवं भावुकतापूर्ण होना भी जरूरी है।

संवेदनशीलता की अधिकता होने पर लेखक के मन में सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति तथा जीवन में घटित महत्त्वपूर्ण क्षण विशेष का खाका स्वत: निर्मित होता चला जाता है और जब वह उसे शब्दबद्ध करने बैठता है, तब चित्रोपमता का गुण स्वत: ही आ जाता है।

निष्कर्ष–इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्मरण-लेखन प्रमुखत: दो रूपों में प्राप्त होता है-इसका एक रूप तो वह है जिसमें लेखक दूसरों के बारे में लिखता है और दूसरा वह जिसमें वह स्वयं अपने बारे में लिखता है। पहले प्रकार के लेखन को रेमिनिसेंस कहते हैं और दूसरे प्रकार के लेखन को मेमोयर। यद्यपि मेमोयर में लेखक अपने बारे में लिखता है, किन्तु यह साहित्यिक आत्मकथा से सर्वथा भिन्न है। यह भिन्नता आकारगत न होकर तत्त्वगत है।

आत्मकथा में लेखक स्वयं को केन्द्र में रखकर पूरे परिवेश को यानी स्थितियों और व्यक्तियों को देखता है जबकि मेमोयर में संस्मरण को केन्द्र में रखता है और स्वयं उसके आलोक में उद्‌भासित होता है। इस प्रकार यहीं उनकी अपनी स्थिति गौण हो जाती है, मुख्यतता प्राप्त होती है सम्पर्क में आए व्यक्तियों को। संक्षेप में, यही संस्मरण का स्वरूप है।

जीवनी

किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृतांत को जीवनी कहते हैं। जीवनी का अंग्रेजी पर्याय "बायोग्राफी" है, हिंदी में इसे जीवन चरित्र कहते हैं। इस में किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन के अन्तर्वाह्य स्वरूप का घटनाओं के आधार पर कलात्मक चित्रण रहता है। इससे उसके गुण दोषमय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति होती है।

सामान्यत: जीवनी में सारे जीवन में किए हुए कार्यों का वर्णन होता है पर इस नियम का पालन आवश्यक नहीं है।

शिप्ले के अनुसार

"जीवनी लेखक को अपने नायक के संपूर्ण जीवन अथवा उसके यथेष्ट भाग की चर्चा करनी चाहिए जीवनी में इतिहास साहित्य और व्यक्ति की त्रिवेणी होती है। परंतु इस में इतिहास की भांति घटनाओं का आंकलन नहीं होता इसमें मनुष्य के जीवन की व्याख्या एवं उसके व्यक्तिगत जीवन का अध्ययन प्रत्यक्ष और वास्तविक रूप से प्राप्त होता है।"

उपन्यास कहानी आदि में भी जीवन की व्याख्या तो होती है, किंतु परोक्ष और कल्पना मिश्रित होती है। वास्तविक जीवनी वही है जिसमें जीवन प्रमाणिक तथा सम्यक जानकारी पर आधारित हो।

जीवनी लेखक को उन सभी तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए, जिन्होंने उसके चरित्र नायक के जीवन पर प्रकाश डाला हो, घटनाओं को प्रस्तुत भी उसी क्रम में करना चाहिए जिस क्रम में विघटित हुए हों। जीवनी लेखक अपने नायक के चरित्र में स्वाभाविकता लाने के लिए जीवन को क्रमशः अन्वेषित एवं उद्घाटित करना चाहिए अर्थात् आरंभ से ही उसके केवल गुणों को ही नहीं वरन दोषों को भी तटस्थ भाव से वर्णन करना चाहिए।

हमारे यहां जीवन चरित्र लिखने की विशेष परंपरा नहीं रही है ' व्यक्ति कालीन वार्ताओं ' नाभादास का ' भक्तमाल ' आदि ग्रंथों में जीवन संबंधी इतिवृत्त मिल जाते हैं।

इसके लेखन का आरंभ 19वीं शताब्दी के अंत से होता है कार्तिक प्रसाद खत्री, भारतेंदु, राधाकृष्ण दास, बालमुकुंद गुप्त आदि इस युग के प्रसिद्ध जीवनी लेखक हैं।

आज जीवनी साहित्य नायक को जीवन तथ्यों को वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करता है।

आज के प्रमुख जीवनीकारों की कृतियों में

राहुल सांस्कृत्यायन कृत्य ' नए भारत के नए लोग ', ' सूरदास '

पृथ्वी सिंह की ' लेनिन ' तथा ' कार्ल मार्क्स ' विष्णु प्रभाकर कृत ' आवारा मसीहा, प्रमुख जीवनियां है।

आलोचना

आलोचना या समालोचना किसी वस्तु-विषय की, उसके लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, उसके गुण-दोषों एवं उपयुक्ततता का विवेचन करने वालि साहित्यिक विधा है। हिंदी आलोचना की शुरुआत 19वीं सदी के उत्तरार्ध में भारतेन्दु युग से ही मानी जाती है। 'समालोचना' का शाब्दिक अर्थ है–'अच्छी तरह देखना'।

'आलोचना' शब्द 'लुच' धातु से बना है। 'लुच' का अर्थ है 'देखना'। समीक्षा और समालोचना शब्दों का भी यही अर्थ है। अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' शब्द के समानार्थी रूप में 'आलोचना' का व्यवहार होता है। संस्कृत में प्रचलित 'टीका-व्याख्या' और 'काव्य-सिद्धान्तनिरूपण' के लिए भी आलोचना शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है, किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्पष्ट मत है कि आधुनिक आलोचना, संस्कृत के काव्य-सिद्धान्तनिरूपण से स्वतंत्र चीज है।

आलोचना का कार्य है किसी साहित्यक रचना की अच्छी तरह परीक्षा करके उसके रूप, गुण और अर्थव्यस्था का निर्धारण करना।

डॉक्टर श्यामसुन्दर दास ने आलोचना की परिभाषा इन शब्दों में दी है–

यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।

अर्थात् आलोचना का कर्तव्य साहित्यक कृति की विश्लेषण परक व्याख्या है। साहित्यकार जीवन और अनभुव के जिन तत्त्वों के संश्लेषण से साहित्य की रचना करता है, आलोचना उन्हीं तत्त्वों का विश्लेषण करती है। साहित्य में जहाँ रागतत्त्व प्रधान है वहाँ आलोचना में बुद्धि तत्त्व। आलोचना ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों और शिस्तयों का भी आकलन करती है और साहित्य पर उनके पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करती है।

व्यक्तिगत रुचि के आधार पर किसी कृति की निन्दा या प्रशंसा करना आलोचना का धर्म नहीं है। कृति की व्याख्या और विश्लेषण के लिए आलोचना में पद्धति और प्रणाली का महत्त्व होता है। आलोचना करते समय आलोचक अपने व्यक्तिगत राग-द्वेष, रुचि-अरुचि से तभी बच सकता है जब पद्धति का अनुसरण करे, वह तभी वस्तुनिष्ठ होकर साहित्य के प्रति न्याय कर सकता है। इस दृष्टि से हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को सर्वश्रेष्ठ आलोचक माना जाता है।

आलोचना के प्रकार–आलोचना करते समय जिन मान्यताओं और पद्धतियों को स्वीकार किया जाता है, उनके अनुसार आलोचना के प्रकार विकसित हो जाते हैं। सामान्यत: समीक्षा के चार प्रकारों को स्वीकार किया गया है–

(i) सैद्धान्तिक आलोचना
(ii) निर्णयात्मक आलोचना
(iii) प्रभावाभिव्यजंक आलोचना
(iv) व्याख्यात्मक आलोचना।

(i) सैद्धान्तिक आलोचना–सैद्धान्तिक आलोचना में साहित्य के सिद्धान्तों पर विचार होता है। इसमें प्राचीन शास्त्रीय काव्यांगो–रस, अलंकार आदि और साहित्य की आधुनिक मान्यताओं तथा नियमों की मुख्य रूप से विवचेना की जाती है। सैद्धान्तिक आलोचना में विचार का बिन्दु यह है कि साहित्य का मानदंड शास्त्रीय है या ऐतिहासिक। मानदंड का शास्त्रीय रूप, स्थिर और अपरिवर्तनशील होता है, किन्तु मानदंडों को ऐतिहासिक श्रेणी मानने पर उनका स्वरूप

परिवर्तनशील और विकासात्मक होता है। दोनों प्रकार की सैद्धान्तिक आलोचनाएँ उपलब्ध हैं। किन्तु अब उसी सैद्धान्तिक आलोचना का महत्त्व अधिक है, जो साहित्य के तत्त्वों और नियमों की ऐतिहासिक प्रक्रिया में विकासमान मानती है।

निर्णयात्मक आलोचना–निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर जब साहित्य के गुण-दोष, श्रेष्ठ-निकृष्ट का निर्णय कर दिया जाता है तब उसे निर्णयात्मक आलोचना कहते हैं। इसे एक प्रकार की नैतिक आलोचना भी माना जाता है। इसका मुख्य स्वभाव न्यायाधीश की तरह साहित्यक कृतियों पर निर्णय देना है। ऐसी आलोचना प्राय: ही सिद्धान्त का यांत्रिक ढंग से उपयोग करती है। इसलिए निर्णयात्मक आलोचना का महत्त्व कम हो जाता है।

यद्यपि मूल्य या श्रेष्ठ साहित्य और निकृष्ट साहित्य का बोध पैदा करना आलोचना के प्रधान धर्मों में से एक है, लेकिन वह सिद्धान्तों के यांत्रिक उपयोग से नहीं सभंव है। 'हिन्दी साहित्य कोश' में निर्णयात्मक आलोचना के विषय में बताया गया है–

वह कृतियों की श्रेष्ठता या अश्रेष्ठता के सबंधं में निर्णय देती है। इस निर्णय में वह साहित्य तथा कला संबन्धी नियमों से सहायता लेती है, किन्तु ये नियम साहित्य और कला के सहज रूप से सबंधंन रख वाह्य रूप से आरोपित हैं।

इस प्रकार आलोचना में निर्णय विवाद का बिन्दु उतना नहीं है जितना निर्णय के लिए अपनाया गया तरीका। जैसे, रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना में मूल्य निर्णय है, लेकिन उसका तरीका सृजनात्मक है, यांत्रिक नहीं। निर्णयात्मक आलोचना में मूल्य और तरीका, दोनों की में लचीलापन नहीं होता।

प्रभावाभिव्यजंक आलोचना–इस आलोचना में काव्य का जो प्रभाव आलोचक केमन पर पड़ता है उसे वह सजीले पद-विन्यास में व्यस्त कर देता है। इसमें वयैक्तिक रुचि ही मुख्य है। प्रभावाभिव्यजंक समालोचना कोई ठक-ठकाने की वस्तु नहीं है। न ज्ञान के क्षेत्र में उसका मूल्य है न भाव के क्षेत्र में।

एकांकी

एक अंक वाले नाटकों को एकांकी कहते हैं। अंग्रेजी के 'वन ऐक्ट प्ले' शब्द के लिए हिंदी में 'एकांकी नाटक' और 'एकांकी' दोनों ही शब्दों का समान रूप से व्यवहार होता है।

पश्चिम में एकांकी 20वीं शताब्दी में, विशेषत: प्रथम महायुद्ध के बाद, अत्यन्त प्रचलित और लोकप्रिय हुआ। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में उसका व्यापक प्रचलन इस शताब्दी के चौथे दशक में हुआ। इसका यह अर्थ नहीं कि एकांकी साहित्य की सर्वथा आभिजात्यहीन विधा है। पूर्व और पश्चिम दोनों के नाट्य साहित्य में उसके निकटवर्ती रूप मिलते हैं। सस्कृंत नाट्यशास्त्र में नायक के चरित, इतिवृत्त, रस आदि के आधार पर रूपकों और उपरूपकों के जो भेद किए गए उनमें से अनेक को डॉ. कीथ ने एकांकी नाटक कहा है। इस प्रकार 'दशरूपक' और 'साहित्यदर्पण' में वर्णित व्यायोग, प्रहसन, भाग, वीथी, नाटिका, गोष्ठी, सट्टक, नाटयरासक, प्रकाशिका, उल्लाप्य, काव्य प्रेंखण, श्रीगदित, विलासिका, प्रकरणिका, हल्लीश आदि रूपकों और उपरूपकों को आधुनिक एकांकी के निकट संबंधी कहना अनुचित न होगा। 'साहित्यदर्पण में 'एकांक' शब्द का प्रयोग भी हुआ है–

भाण: स्याद् धूर्तचरितो नानावस्थांतरात्मक:।
एकांक एक एवात्र निपुण: पण्डितो विट:॥

और

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोग: स्वल्पस्त्रीजनसंयुत:।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रित:॥

एकांककश्च भवेत्...

पश्चिम के नाट्यसाहित्य में आधुनिक एकांकी का सबसे प्रारंभिक और अविकसित किन्तु निकटवर्ती रूप 'इंटरल्यूड' है। 15वीं और 16वीं शताब्दियों में प्रचलित सदाचार और नैतिक शिक्षापूर्ण अंग्रेजी मोरैलिटी नाटकों के कोरे उपदेश से पैदा हुई ऊब को दूर करने के लिए प्रहसनपूर्ण अंश भी जोड़ दिए जाते हैं। ऐसे ही खंड इंटरल्यूड कहे जाते थे। क्रमश: ये मोरैलिटी नाटकों से स्वतंत्र हो गए और अंत में उनकी परिणति व्यंग्य-विनोद-प्रधान तीन पात्रों के छोटे नाटकों में हुई।

'कर्टेन रेजर' या पटोन्नायक कहा जाने वाला एकांकी, जिसकी तुलना संस्कृत नाटकों के अर्थोपक्षेपक या प्रेक्षणक से की जा सकती है, पश्चिम में आधुनिक एकांकियों का निकटतम पूर्ववर्ती था। रात्रि में देर से खाना खाने के बाद रंगशालाओं में आने वाले संभ्रांत सामाजिकों के कारण समय से आने वाले साधारण सामाजिकों को बड़ी असुविधा होती थी। रंगशालाओं के मालिकों ने इस बीच साधारण सामाजिकों को मनोरंजन में व्यस्त रखने के लिए द्विपात्रीय

प्रहसनपूर्ण संवाद प्रस्तुत करना शु–किया। इस प्रकार के स्वतंत्र संवाद को ही 'कर्टेन रेजर' कहा जाता था। इसमें कथानक एवं जीवन के यथार्थ और नाटकीय द्वंद्व का अभाव रहता था। बाद में 'कर्टेन रेजर' के स्थान पर यथार्थ जीवन को लेकर सुगठित कथानक और नाटकीय द्वंद्व वाले छोटे नाटक प्रस्तुत किए जाने लगे। इनके विकास का अगला कदम आधुनिक एकांकी था।

एकांकी इतना लोकप्रिय हो उठा कि बड़े नाटकों की रक्षा करने के लिए व्यावसायिक रंगशालाओं ने उसे अपने यहाँ से निकालना शुरू किया। लेकिन उसमें प्रयोग और विकास की संभावनाओं को देखकर पश्चिम के कई देशों में अव्यावसायिक और प्रयोगात्मक रंगमंचीय आंदोलनों ने उसे अपना लिया। लंदन, पेरिस, बर्लिन, डब्लिन, शिकागो, न्यूयार्क आदि ने इस नए ढंग के नाटक और उसके रंगमंच को आगे बढ़ाया। इसके अतिरिक्त एकांकी नाटक को पश्चिम के अनेक महान् या सम्मानित लेखकों का बल मिला। ऐसे लेखकों में रूस के चेखव, गोर्की और एकरीनोव, फ्रांस के जिराउदो, सार्त्र और एनाइल, जर्मनी के टालर और ब्रेख्ट, इटली के पिरैंदेली तथा इंग्लैंड, आयरलैंड और अमरीका के आस्कर वाइल्ड, गाल्सवर्दी, जे.एम.बैरी, लार्ड डनसैनी, सिंज, शिआँ ओ' केसी, यूजीन ओश्नील, नोएल कावर्ड, टी.एस.इलियट, क्रिस्टोफर फ्राई, ग्रैहम ग्रीन, मिलर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रंगमंचीय आंदोलनों और इन लेखकों के सम्मिलित एवं अदम्य प्रयोगात्मक साहस और उत्साह के फलस्वरूप आधुनिक एकांकी सर्वथा नई, स्वतंत्र और सुस्पष्ट विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। उनकी कृतियों के आधार पर एकांकी नाटकों की सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया जा सकता है।

रचनाविधान

सतह पर ही बड़े नाटकों और एकांकियों का आकारगत अंतर स्पष्ट हो जाता है। एकांकी नाटक साधारणत: 20 से लेकर 30 मिनट में प्रदर्शित किए जा सकते हैं, जबकि तीन, चार या पाँच अंकों वाले नाटकों के प्रदर्शन में कई घंटे लगते हैं। लेकिन बड़े नाटकों और एकांकियों का आधारभूत अंतर आकारात्मक न होकर रचनात्मक है। पश्चिम के तीन से लेकर पाँच अंकों वाले नाटकों में दो या दो से अधिक कथानकों को गूँथ दिया जाता था। इस प्रकार उनमें एक प्रधान कथानक और एक या कई उपकथानक होते थे। संस्कृत नाटकों में भी ऐसे उपकथानक होते थे। ऐसे नाटकों में स्थान या दृश्य, काल और घटनाक्रम में

अनवरत परिवर्तन स्वाभाविक था। लेकिन एकांकी में यह संभव नहीं। एकांकी किसी एक नाटकीय घटना या मानसिक स्थिति पर आधारित होता है और प्रभाव की एकाग्रता उसका मुख्य लक्ष्य है। इसलिए एकांकी में स्थान, समय और घटना का संकलनत्रय अनिवार्य सा माना गया है। कहानी और गीत की तरह एकांकी की कला घनत्व या एकाग्रता और मितव्ययता की कला है, जिसमें कम से कम उपकरणों के सहारे ज्यादा से ज्यादा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। एकांकी के कथानक का परिप्रेक्ष्य अत्यंत संकुचित होता है, एक ही मुख्य घटना होती है, एक ही मुख्य चरित्र होता है, एक चरमोत्कर्ष होता है। लंबे भाषणों और विस्तृत व्याख्याओं की जगह उसमें संवादलाघव होता है। बड़े नाटक और एकांकी का गुणात्मक भेद इसी से स्पष्ट हो जाता है कि बड़े नाटक के कलेवर को काट छाँटकर एकांकी की रचना नहीं की जा सकती, जिस तरह एकांकी के कलेवर को खींच तानकर बड़े नाटक की रचना नहीं की जा सकती।

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार बड़े नाटक के कथानक के विकास की पाँच स्थितियाँ मानी गई हैं–आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। पश्चिम के नाट्यशास्त्र में भी इन्हीं से बहुत कुछ मिलती-जुलती स्थितियों का उल्लेख है–आरम्भ या भूमिका, चरित्रों और घटनाओं के घात प्रतिघात या द्वंद्व से कथानक का चरमोत्कर्ष की ओर आरोह, चरमोत्कर्ष, अवरोह और अंत। पश्चिम के नाटकशास्त्र में द्वंद्व पर बहुत जोर दिया गया है। वस्तुतः नाटक द्वंद्व की कला है, कथा में चरित्रों और घटनाओं के क्रमिक विकास की जगह बड़े नाटक में कुछ चरित्रों के जीवन के द्वंद्वों को उद्घाटित कर कथानक को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया जाता है। एकांकी में इस चरमोत्कर्ष की धुरी केवल एक द्वंद्व होता है। बड़े नाटक के कथानक में द्वंद्वों का विकास काफी धीमा हो सकता है, जिसमें सारी घटनाएँ रंगमंच पर प्रस्तुत होती हैं, या उस घटना से कुछ ही पूर्व होता है, जो बड़े वेग से द्वंद्व को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देती है। अक्सर यही चरमोत्कर्ष एकांकी का अंत होता है। जीवन की समस्याओं के यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक चित्रण के अतिरिक्त रचनाविधान की यह विशेषता आधुनिक एकांकी को संस्कृत और पश्चिमी नाट्य साहित्य में उसके निकटवर्ती रूपों से पृथक् करती है।

अक्सर अभिनय के लिए कहानियों के रूपांतर से यह भ्रम पैदा होता है कि एकांकी कहानी का अभिनेय रूप है। लेकिन रचनाविधान में घनत्व और मितव्ययता की आधारभूत समानता के बावजूद कहानी और एकांकी में शिल्पगत भेद है। रंगमंच की वस्तु होने के कारण एकांकी में अभिनय और कथोपकथन

का महत्त्व सबसे ज्यादा है। इन्हीं के माध्यम से एकांकी चरित्रचित्रण, कथानक और उसके द्वंद्व, वातावरण और घटनाओं के अनुबंध का निर्माण करता है। कहानी की तरह एकांकी वर्णन का आश्रय नहीं ले सकता। लेकिन अभिनय की एक मुद्रा कहानी के लंबे वर्णन से अधिक प्रभावशाली हो सकती है। इसलिए रंगमंच एकांकी की सीमा और शक्ति दोनों है। इसकी पहचान न होने के कारण अनेक सफल कहानीकार असफल एकांकीकार रह जाते हैं।

इसी प्रकार किसी विषय पर रोचक संभाषण या कथोपकथन को एकांकी समझना भ्रममात्र है। जीवन के यथार्थ, घटना या कथानक, चरित्रों के द्वंद्व, संकलनत्रय इत्यादि के अभाव में संभाषण केवल संभाषण रह जाता है, उसे एकांकी की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

एकांकी की अद्‌भुत संभावनाओं के कारण आधुनिक काल में उसका विकास अनेक दिशाओं में हुआ है। रेडियो रूपक, संगीत तथा काव्यरूपक और मोनोलोग या स्वगत नाट्य इन नई दिशाओं की कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। रेडियो के माध्यम से इन सबके क्षेत्र में निरंतर प्रयोग हो रहे हैं। रंगमंच, संदेह अभिनेताओं और अभिनेत्रियों, उनके अभिनय और मुद्राओं के अभाव में रेडियो रूपक को शब्द और उनकी ध्वनि तथा चित्रात्मक शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग करना पड़ता है। मूर्त उपकरणों का अभाव रेडियो रूपक के लिए सर्वथा बाधा ही नहीं, क्योंकि शब्द और ध्वनि को उनके मूर्त आधारों से पृथक् कर नाटककार श्रोताओं के ध्यान को चरित्रों के आंतरिक द्वंद्वों पर केंद्रित कर सकता है। रेडियो रूपक मुश्किल से 50 वर्ष पुराना रूप है। प्रारंभिक अवस्था में इसमें किसी कहानी को अनेक व्यक्तियों के स्वरों में प्रस्तुत किया जाता था और रंगमंच का भ्रम उत्पन्न करने के लिए पात्रों की आकृतियों, वेशभूषा, साज सज्जा, रुचियों इत्यादि के विस्तृत वर्णन से यथार्थ वातावरण के निर्माण का प्रयत्न किया जाता था। अमरीका, जर्मनी, इंग्लैंड आदि पश्चिमी देशों में रेडियो एकांकी के प्रयोगों ने उसके रूप को विकसित किया और निखारा। रेडियो के लिए कई प्रसिद्ध अमरीकी और अंग्रेज कवियों ने काव्यरूपक लिखे। उनमें मैक्लीश, स्टीफेन विंसेंट बेने, कार्ल, सैंडवर्ग, टाइरोम, लूई मैकनीस, सैकविल वेस्ट, पैट्रिक डिकिंसन, डीलन टामस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन प्रयोगों से प्रेरणा ग्रहण कर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के एकांकीकारों ने भी रेडियो रूपक, गीतिनाट्य और काव्यरूपक प्रस्तुत किए हैं। पर इनमें अभी अनेक त्रुटियाँ हैं।

हिंदी एकांकी का इतिहास

हिंदी साहित्य के इतिहासकार एकांकी का प्रारंभ भारतेंदुयुग से मानते हैं। प्रसाद के 'एक घूँट' (1929 ई.) से दूसरा चरण, भुवनेश्वरप्रसाद के 'कारवाँ' (1935 ई.) से तीसरा तथा डॉ. रामकुमार वर्मा के 'रेशमी टाई' (1941 ई.) संकलन से चौथे चरण की शुरूआत कही गई है। किंतु उक्त कालविभाजन में उन एकांकीकारों को सम्मिलित नहीं किया गया है, जिन्होंने 1955 ई. के आस-पास लिखना प्रारंभ किया है और आज भी लिख रहे हैं। अत: हिंदी एकांकी का अद्यतन इतिहास संक्षेप में इस प्रकार है–

(1) भारतेन्दु काल में दो प्रकार के एकांकी लिखे गए। प्रथम, अनूदित या छायांकित एकांकी तथा द्वितीय, मौलिक एकांकी। पहली कोटि में भारतेन्दु का बांग्ला के 'भारतमाता' का अनुवाद 'भारत जननी', राधाचरण गोस्वामी द्वारा बँगला के 'भारतेर यवन' का अनुवाद 'भारतवर्ष में यवन लोग', कांचनाचार्य कृत 'धनंजय विजय' का छायाविष्ट रूपक, अयोध्यसिंह उपाध्याय का 'प्रद्युम्नविजय व्यायोग' आदि हैं। दूसरी कोटि में भारतेन्दुकृत 'विषस्यविषमौषधम्', 'प्रेमजोगिनी' (अपूर्ण), गीति:पक 'नीलदेवी' तथा 'सतीप्रताप' (अपूर्ण), राधाचरण गोस्वामी कृत 'तनमनधन गोसाई के अरपन', 'सती चंद्रावली', 'अमरसिंह राठौर', एवं 'श्रीदामा', किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट', राधाकृष्णदास का 'दु:खिनीबाला', अंबिकादत्त व्यास रचित 'कलियुग और घी' तथा 'मन की उमंग', श्रीशरण का 'बालविवाह', बालकृष्ण भट्ट के 'कलिराज की सभा', 'रेल का विकट खेल' तथा 'बाल विवाह', प्रतापनारायण मिश्र का 'कलिकौतुक', देवकीनंदन त्रिपाठी कृत 'जय नरसिंह की', काशीनाथ खत्री के 'सिंधु देश की राजकुमरियाँ', गुन्नौर की रानी' एवं 'लजबो का स्वप्न', लाला श्रीनिवासदास का 'प्रह्लाद चरित', बदरीनारायण प्रेमघन का 'प्रयाग रामागमन', कृष्णशरण सिंह गोपकृत 'माधुरी' आदि एकांकी आते हैं।

ऐतिहासिक आख्यान तथा समाजसुधार के प्रसंग ही उपर्युक्त एकांकियों के विषय हैं। इन्हें आधुनिक एकांकी का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। कला का विकसित रूप इनमें नहीं मिलता, शैलियाँ परस्पर कुछ भिन्न हैं पर परंपरा एक ही है। उक्त एकांकी अभिनेय की अपेक्षा पाठय अधिक हैं। लेखकों का झुकाव जीवन की स्थूलता का वर्णन करने की ओर है, वृत्तियों की सूक्ष्म विवृत्ति

इनमें नहीं मिलती। प्ररोचना, प्रस्तावना, सूत्रधार, नान्दी, मंगलाचरण, एकाधिक दृश्ययोजना, भरतवाक्य आदि के प्रयोग कहीं हैं, कहीं नहीं भी हैं। आकार सर्वत्र लम्बे हैं, अंक भी दृश्य और दृश्य भी गर्भाक जैसे हो गए हैं। संकलनत्रय के निर्वाह का अभाव है, शिथिल संवादों का बाहुल्य एवं विकास तथा विन्यासहीन कथायोजना का आधिक्य है। इनमें से कुछ प्रहसन के रूप में लिखे गए हैं, पर उनमें निर्मल हास्य न होकर व्यंग्य की मात्रा ही अधिक है। एकांकी के लिए अपेक्षित प्रमुख गुण कार्य (ऐक्शन) का इनमें अभाव है।

(2) एकांकी के दूसरे युग में जयशंकर प्रसाद का 'एक घूँट' लिखा गया जिस पर संस्कृत का भी प्रभाव है और बँगला के माध्यम से आए पाश्चात्य एकांकी शिल्प का भी। प्रसाद जी ने इसी बीच 'कल्याणी परिणय' भी लिखा, पर वह अभी तक अप्रकाशित है। साथ ही, इसे उनके 'चन्द्रगुप्त नाटक का एक भाग भी कहा जा सकता है। फ्रांसीसी नाटककार मोलियर के कुछ प्रहसनों का भी इस दौरान हिंदी में अनुवाद हुआ। 'एक घूँट' में एकांकी के कमोबेश लगभग सभी आधुनिक लक्षण मिल जाते हैं। विवाह समस्या का विवेचन एवं समाधान भावुकतापूर्ण शैली में किया गया है। परन्तु 'एक घूँट' एक ही रह गयाय अन्य लेखकों को यह एकांकी लेखन की ओर प्रवृत्त न कर सका।

(3) एकांकी का तीसरा चरण भुवनेश्वर प्रसाद के 'कारवाँ' संग्रह से शुरू होता है जिसमें छह एकांकी हैं। 1938 ई में 'हंस' का एकांकी अंक प्रकाशित हुआ। इसमें तत्कालीन प्रतिनिधि एकांकी प्रस्तुत किए गए। इसी बीच सत्येन्द्र का 'कुनाल', पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा', रामकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आँखें', सूर्यशरण पारीक का 'बैलावण या प्रतिज्ञापूर्ति' आदि प्रकाशित हुए। उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास प्रभृति एकांकीकार भी इसी काल में एकांकी लेखन की ओर प्रवृत्त हुए और उनके कई सशक्त एकांकी प्रकाश में आए।

इस युग में प्रख्यात और उत्पाद्य दोनों प्रकार के कथानकों को लेकर एकांकी लिखे गए। इनमें विवाहादि सामाजिक तथा साम्यावादादि राजनीतिक समस्याएँ प्रमुख रूप से उभरी हैं। प्राचीन विचारधारा की वकालत जोरदार शब्दों में की गई है, परन्तु इसके साथ नवीन को अपनाने का आग्रह भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पश्चिमी विचार ओर शैली के प्रभाव को लेकर एकांकी ने अपने रूप रंग में पर्याप्त परिवर्तन किया और इसकी तकनीक में यत्किंचित् स्थिरता आई। देखा जाए, तो यह काल एकांकी विधा का परिमार्जन काल था। लेखकों ने इस समय का सदुपयोग कर अपने हाथ साधे। सन् 1935 ई. से रेडियो प्रसारणों के

अंतर्गत एकांकियों को भी स्थान दिया जाने लगा था, अत: रेडियो एकांकी अथवा ध्वनिनाटक भी काफी संख्या में लिखे जाने लगे।

(4) चतुर्थ चरण तक पहुँचते-पहुँचते एकांकी का स्वरूप, शिल्प आदि पूरी तरह स्थिर हो जाते हैं, उनका प्रामाणिक रूप सामने आता है। इससे पहले तो वह अपना सही रूप तलाशने में लगा था। डॉ. रामकुमार वर्मा के 'रेशमी टाई' एकांकीसंग्रह से इस युग का सूत्रपात हुआ, यह पहले ही बताया जा चुका है। इसके अतिरिक्त वर्मा जी के 'ऐक्ट्रेस', 'रजनी की रात', 'एक तोले अफीम की कीमत', 'परीक्षा', 'नहीं का रहस्य', 'कहाँ से कहाँ', 'चारुमित्रा', 'दस मिनट' आदि एकांकी प्रसिद्ध हैं। पहाड़ी का 'युग-युग द्वारा शक्तिपूजा', भुवनेश्वर के 'शैतान', 'स्ट्राइक', 'असर', 'ताँबे के कीड़े', भगवतीचरण वर्मा के 'संदेह का अंत', 'दो कलाकार', 'सबसे बड़ा आदमी', उपेंद्रनाथ अश्क कृत 'जोंक', 'समझौता', 'घड़ी', 'छठा बेटा', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'विभा', 'तौलिये', 'आदिमार्ग', उदयशंकर भट्ट के 'दो अतिथि', 'वर निर्वाचन', 'मुंशी अनोखेलाल', 'असली नकली', 'नेता', 'सेठ भालचंद', 'मनुमानव', 'आदिम युग', सेठ गोविंददास रचित 'विटेमन', 'अधिकार लिप्सा', 'वह मरा क्यों', 'हंगर स्ट्राइक', 'कंगाल नहीं', 'ईद और होली', पांडेय बेचन शर्मा उग्र के 'राम करे सो होय', 'मियाँ भाई', 'अफजल वध', वृंदावनलाल वर्मा कृत 'पीले हाथ', 'सगुन' 'जहाँदार शाह', 'कश्मीर का काँटा', 'मानव', एस.पी. खत्री के 'चौराहा', 'माँ', 'मछुए की माँ', 'ठाकुर का घर', 'बंदर की खोपड़ी', विष्णु प्रभाकर के 'माँ का हृदय', 'संस्कार और भावना', 'रक्तचंदन', 'माँ बाप', जगदीशचंद्र माथुर के 'भोर का तारा', 'रीढ़ की हड्डी', मकड़ी का जाला', 'कलिंगविजय', 'खंडहर', लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'एक दिन', सद्गुरुशरण अवस्थी के 'मुद्रिका', 'कालीवध', गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'सोहाग की बिंदी', 'दूसरा उपाय ही क्या है', 'शर्मा जी', 'सर्वस्व समर्पण' आदि प्रमुख एकांकी इसी काल की देन हैं।

इस युग के एकांकी स्वतंत्र एवं सचेष्ट भाव से लिखे गए हैं। अत: विषय की अपेक्षा शिल्प उनमें विशेष है। बौद्धिक उत्सुकता, मानसिक विश्लेषण, अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति, हास्य तथा चुटीले व्यंग्य, संवादों की कसावट, मार्मिक स्थलों का चयन, यथार्थ प्रस्तुतीकरण के प्रति आग्रह, मनोवैज्ञानिक कार्यव्यवहार, पद्य का लगभग अभाव, सामान्य नायक की स्वीकृति, रंगसंकेत आदि उत्तरोत्तर बढ़ते गए हैं। युग की विभिन्न एवं विविध अभिरुचियों के अनुसार इस समय के

एकांकियों के विषय भी अनेक रहे हैं, जिनमें प्रेम, विवाह, घृणा, क्रूरता, हत्या, पौराणिक आख्यान, लोकगाथात्मक एवं लोकविश्रुत वीरों तथा राजाओं के कृत्य, सामाजिक कुरीतियाँ, वर्गसंघर्ष, देशभक्ति, हिंदु-मुसलमान-भ्रातृत्व, सत्याग्रह, यौनाकर्षण आदि प्रमुख हैं। ध्वनि नाटक भी इस बीच अधिक संख्या में लिखे गए हैं।

(5) हिंदी एकांकी पाँचवाँ अथवा अंतिम चरण एकांकी की विविध विधाओं को लेकर प्रारम्भ होता है जिनमें मंच एवं ध्वनि एकांकी के अलावा 'ओपेन एयर एकांकी', 'चित्र एकाकी' (टेलिविजन पर दिखाए जाने वाले) 'गली एकांकी' आदि सम्मिलित किए जा सकते हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण कृत 'बसन्त ऋतु का नाटक', 'मम्मी ठकुराइन', 'राजरानी', देवराज दिनेश के 'समस्या सुलझ गई', 'तुलसीदास', 'रिश्वत के अनेक ढंग', जयनाथ नलिन रचित 'भक्तों की दीनता', सत्येंद्र शरत् कृत 'नवजोती की नई हिरोइन', विनोद रस्तोगी का 'बहू की विदा', चिरंजीत के 'चक्रव्यूह' 'ढोल की पोल', (ध्वनि नाटक), पाँच प्रहसन' (संकलन)।

इस काल में कुछ बेमानी (ऐब्सर्ड) एकांकी भी लिखे गए हैं जिनमें सत्यदेव दुबे कृत 'थोड़ी देर पहले और थोड़ी देर बाद', धर्मचंद्र जैन का 'चेहरों के चेहरे', मोहन राकेश का बीज नाटक 'शायद' आदि उल्लेख्य हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, गंगाधर शुक्ल, विनोद रस्तोगी, उपेन्द्रनाथ अश्क, कमलेश्वर तथा मनहर चौहान ने इधर बहुत से चित्रएकांकी भी प्रस्तुत किए हैं।

पाँचवें चरण के एकांकियों में या तो पाश्चात्य रचनाप्रक्रिया को कठोरता के साथ ग्रहण किया गया है अथवा उसमें प्रतिभा और बुद्धि से नए वस्तुविधान, नई अभिव्यंजना द्वारा मौलिक रूप का निर्माण कर लिया गया है। गीतों का इनमें एकांत अभाव है, प्रकाश का जमकर उपयोग किया गया है, जिसमें पर्दों की जरूरत बहुत कुछ समाप्त हो गई है। संवाद अत्यंत कसे हुए तथा चुटीले हैं। जीवन के नए ढंग, उसकी आशाओं, निराशाओं, छोटी-छोटी समस्याओं तथा प्रति दिन की सामान्य घटनाओं को लेकर ये एकांकी रचे गए हैं। चित्र एकांकियों ने 'आउट-डोर-हीनता' को तोड़ा है। इसमें अब पहाड़ी नदी की चंचलता, सड़कों पर भागती कारें, समुद्र में चलते यान, आकाश में शत्रुविमानों से जूझते 'नैट' आदि दिखाए जाते हैं। गली एकांकी ने मंच को तोड़ा है तो बेमानी एकांकियों ने दर्शकों को ही मंचपर लाकर खड़ा कर दिया है।

कहानी

कहानी, हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्रा, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्त्व आदि की कथाएँ, जिनकी कथानक घटना प्रधान हुआ करती थीं, भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की 'वृहत्कथा' को, जिसमें 'उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है, प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है। वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी', 'सुबन्धु' की 'वासवदत्ता', 'धनपाल' की 'तिलकमंजरी', 'सोमदेव' के 'यशस्तिलक' तथा 'मालतीमाधव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली', 'मृच्छकटिकम्' जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर साफ-साफ परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् छोटे आकार वाली 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शुक सप्तति', 'कथा सरित्सागर', 'भोजप्रबन्ध' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई हैं।

कहानी की प्रमुख विशेषताएँ

इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ है–

(1) आज कहानी का मुख्य विषय मनुष्य है, देव या दानव नहीं। पशुओं के लिए भी कहानी में अब कोई जगह नहीं रही। हाँ, बच्चों के लिए लिखी गयी कहानियों में देव, दानव, पशु-पक्षी, मनुष्य सभी आते हैं। लेकिन श्रेष्ठ

कहानी उसी को कहते हैं, जिसमें मनुष्य के जीवन की कोई समस्या या संवेदना व्यक्त होती है। देवी, देवताओं, दानवों और पशु-पक्षियों का समय अब समाप्त हो गया।

(2) पहले कहानी शिक्षा और मनोरंजन के लिए लिखी जाती थी, आज इन दोनों के स्थान पर कौतूहल जगाने में जो कहानी सक्षम हो, वही सफल समझी जाती है। फिर भी, मनोरंजन आज भी साधारण पाठकों की माँग है। कौतूहल और मनोरंजन से अधिक हम कहानियों में मनुष्य की नयी संवेदनाओं की खोज करते हैं।

(3) आज की कहानियों में भाग्य की अपेक्षा पुरुषार्थ पर अधिक बल दिया जाता है। आज का मनुष्य यह जानने लगा है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है, वह किसी के हाथ का खिलौना नहीं। अतएव, आज की कहानियों का आधार जीवन का संघर्ष है।

(4) प्राचीन कहानियों का उद्देश्य रस का परिपाक था। आज की कहानी का लक्ष्य विविध प्रकार के चरित्रों की सृष्टि करना है। व्यक्ति-वैचित्र्य दिखाना उसका मुख्य उद्देश्य है। यही कारण है कि आज कहानी में चरित्र-चित्रण का महत्त्व अधिक बढ़ा है।

(5) पहले जहाँ कहानी का लक्ष्य घटनाओं का जमघट लगाना होता था, वहाँ आज घटनाओं को महत्त्व न देकर मानव-मन के किसी एक भाव, विचार और अनुभूति को व्यक्त करना है। प्रेमचन्द ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है, "कहानी का आधार अब घटना नहीं, अनुभूति है।"

(6) प्राचीन कहानी समष्टिवादी थी। सबके हितों को ध्यान में रखकर लिखी जाती थी। आज की कहानी व्यक्तिवादी है, जो व्यक्ति के 'मनोवैज्ञानिक सत्य' का उद्‌घाटन करती है। मनोवैज्ञानिकों ने मानव-मन के जिन स्तरों की खोज की है, उन स्तरों की गहराई में उतरकर मानवीय सत्य को खोलकर उपस्थित करना आज के कहानीकार का मुख्य लक्ष्य हो गया है।

(7) पहले की उपेक्षा आज की कहानी भाषा की सरलता पर अधिक बल देती है, क्योंकि उसका उद्देश्य जीवन की गाँठों को खोलना है।

(8) पुरानी कहानियाँ अधिकतर सुखान्त होती थीं, किन्तु आज की कहानियाँ मनुष्य की दु:खान्तक कथा को, उसकी जीवनगत समस्याओं और अन्तहीन संघर्षों को अधिक-से-अधिक प्रकाशित करती हैं।

सारांश यह है कि आज कहानी जीवन की प्रतिच्छाया के रूप में लिखी जा रही है। यह सब कुछ होते हुए भी सामान्य पाठक कहानी में मनोरंजन के तत्त्वों को भी ढूँढ़ता है।

समालोचना

कहानी एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में, पाठकीय माँग के फलस्वरूप, कहानियों का छापा जाना अनिवार्य हो गया है। इस देश की प्रत्येक भाषा में केवल कहानियों की पत्रिकाएँ भी संख्या में कम नहीं हैं। रहस्य, रोमांस और साहस की कहानियों के अतिरिक्त उनमें जीवन को गंभीर रूप में लेने वाली कहानियाँ भी छपती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन्हीं का महत्त्व है। ये कहानियाँ चारित्रिक विशेषताओं, 'मूड', वातावरण, जटिल स्थितियों आदि के साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन से भी संबंद्ध होती हैं। सामानयतः कहानी मीमांसा के लिए छः तत्त्वों का उल्लेख किया जाता है–

1. कथावस्तु
2. चरित्र-चित्रण
3. कथोपकथन
4. देशकाल
5. भाषाशैली
6. उद्देश्य।

किंतु इन प्रतिमानों का प्रयोग नाटक और उपन्यासों के लिए भी होता है। ऐसी स्थिति में भ्रांति की सृष्टि हो सकती है। लेकिन इसका परिहार यह कह कर लिया जाता है कि कहानी की कथावस्तु इकहरी होती है। चरित्र के लिए किसी पहलू का चित्रण होता है। कथोपकथन अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी होता है। कहानी में एक देश और एक काल की जरूरत होती है। सन् साठ के बाद की कहानियों का तेवर बदला हुआ है। इन कहानियों को साठोत्तरी कहानी कहा जाता है। इस दौर में कई कहानी आंदोलन चले जिनमें अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी और सक्रिय कहानी आंदोलन प्रमुख थे। बाद में जनवादी कहानी आंदोलन में इनका समाहार हो जाता है। नब्बे के दशक की कहानी और 21वीं सदी के पहले दशक की कहानी का अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है, लेकिन उनमें

वैश्वीकरण, सूचना तंत्र और बाजारवाद की अनुगूँज साफ सुनी जा सकती है। नब्बे का दशक दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के उभार का दशक भी था। इस दशक में स्त्री सशक्तिकरण, उसके अधिकारों की लड़ाई और अभिव्यक्ति की छटपटाहट की अनुगूंज स्त्री रचनाकारों की कहानियों में बखूबी सुनाई देती है। इसी तरह दलित रचनाकारों ने भी अपनी स्वानुभूतियों के रंग से हिंदी कहानी को नया रंग और मोड़ दिया। आज के दौर में तकनीकी विकास को रेखांकित करती हुई और उससे उत्पन्न खतरों को व्याख्यायित करने वाली कहानियां भी खूब लिखी जा रही हैं।

कहानी के तत्त्व

कहानी के 6 तत्त्व होते हैं, जो इस प्रकार से हैं–

1. कथावस्तु अथवा कथानक
2. कथोपकथन अथवा संवाद
3. चरित्र चित्रण अथवा पात्र
4. देशकाल-वातावरण
5. भाषा-शैली और शिल्प
6. उद्देश्य।

कहानी के विविध रूप, प्रकार या भेद

1. घटना प्रधान कहानी–घटना प्रधान कहानियों में क्रमशः अनेक घटनाओं को एकसूत्र में पिरोते हुए कथानक का विकास जाता है अथवा किसी दैवी घटना या संयोग पर ही कहानी आधारित होती हैं। आदर्श कहानियाँ, जासूसी और तिलस्मी कहानियाँ इसी प्रकार की होती हैं।

2. चरित्र प्रधान कहानी–चरित्र प्रधान कहानियों में विभिन्नता के कारण चरित्र चित्रण पर ध्यान दिया जाता है। साथ ही मनोवैज्ञानिक, पृष्ठभूमियों की सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन किया जाता है। अपने समय में प्रेमचंद सामाजिक धरातल की और प्रसाद ऐतिहासिक धरातल की चरित्र प्रधान कहानियों के सर्वश्रेष्ठ लेखक थें।

3. वातावरण प्रधान कहानी–इस प्रकार की कहानियों में वातावरण का चित्रण विशेष रूप से होता है और उसी के माध्यम से युग विशेष की अभिव्यक्ति किया जाता हैं। ऐतिहासिक कहानियों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

4. भाव प्रधान कहानी–ये कहानियाँ किसी भाव या विचार के आधार पर आधारित होती हैं और तद्नुरूप प्रतीकात्मक चरित्रों एवं वातावरण पर आधारित होती है।

काव्य

काव्य, कविता या पद्य, साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भारत में कविता का इतिहास और कविता का दर्शन बहुत पुराना है। इसका प्रारंभ भरतमुनि से समझा जा सकता है। कविता का शाब्दिक अर्थ है काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों की शृंखलाओं में विधिवत बांधी जाती है।

काव्य वह वाक्य रचना है जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो अर्थात् वह जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। रसगंगाधर में 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है। 'अर्थ की रमणीयता' के अंतर्गत शब्द की रमणीयता (शब्दलंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं। पर 'अर्थ' की 'रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। साहित्य दर्पणाकार विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे ठीक जँचता है। उसके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है'। रस अर्थात् मनोवेगों का सुखद संचार की काव्य की आत्मा है।

काव्यप्रकाश में काव्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र। ध्वनि वह है जिस, में शब्दों से निकले हुए अर्थ (वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अभिप्राय (व्यंग्य) प्रधान हो। गुणीभूत व्यंग्य वह है जिसमें गौण हो। चित्र या अलंकार वह है जिसमें बिना व्यंग्य के चमत्कार हो। इन तीनों को क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं। काव्यप्रकाशकार का जोर छिपे हुए भाव पर अधिक जान पड़ता है, रस के उद्रेक पर नहीं। काव्य के दो और भेद किए गए हैं, महाकाव्य और खंड काव्य। महाकाव्य सर्गबद्ध और उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुंण संपन्न क्षत्रिय होना चाहिए। उसमें शृंगार, वीर या शांत रसों में से कोई रस प्रधान होना चाहिए। बीच-बीच में करुणाय हास्य इत्यादि और रस तथा और और लोगों के प्रसंग भी आने चाहिए। कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए। काव्य दो प्रकार का माना गया है, दृश्य और श्रव्य। दृश्य

काव्य वह है, जो अभिनय द्वारा दिखलाया जाय, जैसे, नाटक, प्रहसन, आदि जो पढ़ने और सुनेन योग्य हो, वह श्रव्य है। श्रव्य काव्य दो प्रकार का होता है, गद्य और पद्य। पद्य काव्य के महाकाव्य और खंडकाव्य दो भेद कहे जा चुके हैं। गद्य काव्य के भी दो भेद किए गए हैं-कथा और आख्यायिका।

सामान्यत: संस्कृत के काव्य-साहित्य के दो भेद किये जाते हैं-दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य शब्दों के अतिरिक्त पात्रों की वेशभूषा, भावभंगिमा, आकृति, क्रिया और अभिनय द्वारा दर्शकों के हृदय में रसोन्मेष कराता है। दृश्यकाव्य को 'रूपक' भी कहते हैं क्योंकि उसका रसास्वादन नेत्रों से होता है। श्रव्य काव्य शब्दों द्वारा पाठकों और श्रोताओं के हृदय में रस का संचार करता है। श्रव्यकाव्य में पद्य, गद्य और चम्पू काव्यों का समावेश किया जाता है। गत्यर्थक में पद् धातु से निष्पन 'पद्य' शब्द गति की प्रधानता सूचित करता है। अत: पद्यकाव्य में ताल, लय और छन्द की व्यवस्था होती है। पुन: पद्यकाव्य के दो उपभेद किये जाते हैं-महाकाव्य और खण्डकाव्य। खण्डकाव्य को 'मुक्तकाव्य' भी कहते हैं। खण्डकाव्य में महाकाव्य के समान जीवन का सम्पूर्ण इतिवृत्त न होकर किसी एक अंश का वर्णन किया जाता है-

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।-साहित्यदर्पण, 6/321

कवित्व के साथ-साथ संगीतात्कता की प्रधानता होने से ही इनको हिन्दी में 'गीतिकाव्य' भी कहते हैं। 'गीति' का अर्थ हृदय की रागात्मक भावना को छन्दोबद्ध रूप में प्रकट करना है। गीति की आत्मा भावातिरेक है। अपनी रागात्मक अनुभूति और कल्पना के कवि वर्ण्यवस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतिकाव्य में काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्त होकर वैयक्तिक अनुभव को सरलता से अभिव्यक्त किया जाता है। स्वरूपत: गीतिकाव्य का आकार-प्रकार महाकाव्य से छोटा होता है। इन सब तत्त्वों के सहयोग से संस्कृत मुक्तककाव्य को एक उत्कृष्ट काव्यरूप माना जाता है। मुक्तकाव्य महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

संस्कृत में गीतिकाव्य मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रूपों में प्राप्त होता है। प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत है। अधिकांश प्रबन्ध गीतिकाव्य इसी के अनुकरण पर लिखे गये हैं। मुक्तक वह है जिसमें प्रत्येक पद्य अपने आप में स्वतंत्र होता है। इसके सुन्दर उदाहरण अमरूकशतक और भतृहरिशतकत्रय हैं। संगीतमय छन्द मधुर पदावली गीतिकाव्यों की विशेषता है। शृंगार, नीति, वैराग्य और प्रकृति इसके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। नारी

के सौन्दर्य और स्वभाव का स्वाभाविक चित्रण इन काव्यों में मिलता है। उपदेश, नीति और लोकव्यवहार के सूत्र इनमें बड़े ही रमणीय ढंग से प्राप्त हो जाते हैं। यही कारण है कि मुक्तकाव्यों में सूक्तियों और सुभाषितों की प्राप्ति प्रचुरता से होती है।

मुक्तककाव्य की परम्परा स्फुट सन्देश रचनाओं के रूप में वैदिक युग से ही प्राप्त होती है। ऋग्वेद में सरमा नामक कुत्ते को सन्देशवाहक के रूप में भेजने का प्रसंग है। वैदिक मुक्तककाव्य के उदाहरणों में वसिष्ठ और वामदेव के सूक्त, उल्लेखनीय हैं। रामायण, महाभारत और उनके परिवर्ती ग्रन्थों में भी इस प्रकार के स्फुट प्रसंग विपुल मात्रा में उपलब्ध होते हैं। कदाचित् महाकवि वाल्मीकि के शाकोद्गारों में यह भावना गोपित रूप में रही है। पतिवियुक्ता प्रवासिनी सीता के प्रति प्रेषित श्री राम के संदेशवाहक हनुमान, दुर्योधन के प्रति धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा प्रेषित श्रीकृष्ण और सुन्दरी दयमन्ती के निकट राजा नल द्वारा प्रेषित सन्देशवाहक हंस इसी परम्परा के अन्तर्गत गिने जाने वाले प्रसंग हैं। इस सन्दर्भ में भागवत पुराण का वेणुगीत विशेष रूप से उद्धरणीय है जिसकी रसविभोर करने वाली भावना छवि संस्कृत मुक्तककाव्यों पर अंकित है।

काव्य का इतिहास–आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास लगभग 800 साल पुराना है और इसका प्रारंभ तेरहवीं शताब्दी से समझा जाता है। हर भाषा की तरह हिंदी कविता भी पहले इतिवृत्तात्मक थी। यानि किसी कहानी को लय के साथ छंद में बांध कर अलंकारों से सजा कर प्रस्तुत किया जाता था। भारतीय साहित्य के सभी प्राचीन ग्रंथ कविता में ही लिखे गए हैं। इसका विशेष कारण यह था कि लय और छंद के कारण कविता को याद कर लेना आसान था। जिस समय छापेखाने का आविष्कार नहीं हुआ था और दस्तावेजों की अनेक प्रतियां बनाना आसान नहीं था उस समय महत्त्वपूर्ण बातों को याद रख लेने का यह सर्वोत्तम साधन था। यही कारण है कि उस समय साहित्य के साथ-साथ राजनीति, विज्ञान और आयुर्वेद को भी पद्य (कविता) में ही लिखा गया। भारत की प्राचीनतम कविताएं संस्कृत भाषा में ऋग्वेद में हैं जिनमें प्रकृति की प्रशस्ति में लिखे गए छंदों का सुंदर संकलन हैं। जीवन के अनेक अन्य विषयों को भी इन कविताओं में स्थान मिला हैं।

काव्य का प्रयोजन–राजशेखर ने कविचर्या के प्रकरण में बताया है कि कवि को विद्याओं और उपविद्याओं की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। व्याकरण, कोश, छन्द, और अलंकार–ये चार विद्याएँ हैं। 64 कलाएँ ही उपविद्याएँ हैं।

कवित्व के 8 स्रोत हैं-स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्कथा, बहुश्रुतता, स्मृतिदृढ़ता और राग।

स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्वत्कथा बहुश्रुतता।
स्मृतिदार्ढ्यमनिर्वेदश्च मातरोऽष्टौ कवित्वस्य॥ (काव्यमीमांसा)

मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताये हैं–

काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

(काव्य यश और धन के लिये होता है। इससे लोक-व्यवहार की शिक्षा मिलती है। अमंगल दूर हो जाता है। काव्य से परम शान्ति मिलती है और कविता से कान्ता के समान उपदेश ग्रहण करने का अवसर मिलता है।)

काव्य परिभाषा–कविता या काव्य क्या है इस विषय में भारतीय साहित्य में आलोचकों की बड़ी समृद्ध परंपरा है– आचार्य विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ, पंडित अंबिकादत्त व्यास, आचार्य श्रीपति, भामह आदि संस्कृत के विद्वानों से लेकर आधुनिक आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा जयशंकर प्रसाद जैसे प्रबुद्ध कवियों और आधुनिक युग की मीरा महादेवी वर्मा ने कविता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं। विद्वानों का विचार है कि मानव हृदय अनन्त रूपतामक जगत के नाना रूपों, व्यापारों में भटकता रहता है, लेकिन जब मानव अहं की भावना का परित्याग करके विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं। कविता मनुष्य को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित घेरे से ऊपर उठाती है और शेष सृष्टि से रागात्मक सम्बंध जोड़ने में सहायक होती है। काव्य की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। ये परिभाषाएं आधुनिक हिंदी काव्य के लिए भी सही सिद्ध होती हैं। काव्य सिद्ध चित्त को अलौकिक आनंदानुभूति कराता है तो हृदय के तार झंकृत हो उठते हैं। काव्य में सत्यं शिवं सुंदरम् की भावना भी निहित होती है। जिस काव्य में यह सब कुछ पाया जाता है वह उत्तम काव्य माना जाता है।

काव्य के भेद

काव्य के भेद दो प्रकार से किए गए हैं–

(1) स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद और
(2) शैली के अनुसार काव्य के भेद

स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद–स्वरूप के आधार पर काव्य के दो भेद हैं–श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य।

(i) श्रव्य काव्य–जिस काव्य का रसास्वादन दूसरे से सुनकर या स्वयं पढ़ कर किया जाता है उसे श्रव्य काव्य कहते हैं। जैसे रामायण और महाभारत।

श्रव्य काव्य के भी दो भेद होते हैं–प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य।

प्रबंध काव्य

इसमें कोई प्रमुख कथा काव्य के आदि से अंत तक क्रमबद्ध रूप में चलती है। कथा का क्रम बीच में कहीं नहीं टूटता और गौण कथाएँ बीच-बीच में सहायक बन कर आती हैं। जैसे रामचरित मानस।

प्रबंध काव्य के दो भेद होते हैं–महाकाव्य एवं खण्डकाव्य।

1. महाकाव्य इसमें किसी ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुष की संपूर्ण जीवन कथा का आद्योपांत वर्णन होता है। जैसे–पद्मावत, रामचरितमानस, कामायनी, साकेत आदि महाकव्य हैं।

   महाकाव्य में ये बातें होना आवश्यक हैं–

   (i) महाकाव्य का नायक कोई पौराणिक या ऐतिहासिक हो और उसका धीरोदात्त होना आवश्यक है।

   (ii) जीवन की संपूर्ण कथा का सविस्तार वर्णन होना चाहिए।

   (iii) श्रृंगार, वीर और शांत रस में से किसी एक की प्रधानता होनी चाहिए। यथास्थान अन्य रसों का भी प्रयोग होना चाहिए।

   (iv) उसमें सुबह शाम दिन रात नदी नाले वन पर्वत समुद्र आदि प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक चित्रण होना चाहिए।

   (v) आठ या आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए, प्रत्येक सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होना चाहिए तथा सर्ग के अंत में अगले अंक की सूचना होनी चाहिए।

2. खंडकाव्य इसमें किसी की संपूर्ण जीवनकथा का वर्णन न होकर केवल जीवन के किसी एक ही भाग का वर्णन होता है। जैसे–पंचवटी, सुदामा चरित्र, हल्दीघाटी, पथिक आदि खंडकाव्य हैं।

   खंड काव्य में ये बातें होना आवश्यक हैं–

   - कथावस्तु काल्पनिक हो।
   - उसमें सात या सात से कम सर्ग हों।

- उसमें जीवन के जिस भाग का वर्णन किया गया हो वह अपने लक्ष्य में पूर्ण हो।
- प्राकृतिक दृश्य आदि का चित्रण देश काल के अनुसार और संक्षिप्त हो।

मुक्तक–इसमें केवल एक ही पद या छंद स्वतंत्र रूप से किसी भाव या रस अथवा कथा को प्रकट करने में समर्थ होता है। गीत कवित्त दोहा आदि मुक्तक होते हैं।

दृश्य काव्य–जिस काव्य की आनंदानुभूति अभिनय को देखकर एवं पात्रों से कथोपकथन को सुन कर होती है उसे दृश्य काव्य कहते हैं। जैसे नाटक में या चलचित्र में।

शैली के अनुसार काव्य के भेद

1. पद्य काव्य–इसमें किसी कथा का वर्णन काव्य में किया जाता है, जैसे गीतांजलि

2. गद्य काव्य–इसमें किसी कथा का वर्णन गद्य में किया जाता है, जैसे जयशंकर की कमायनी। गद्य में काव्य रचना करने के लिए कवि को छंद शास्त्र के नियमों से स्वच्छंदता प्राप्त होती है।

3. चंपू काव्य–इसमें गद्य और पद्य दोनों का समावेश होता है। मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' चंपू काव्य है।

हिंदी उपन्यास

हिंदी उपन्यास का आरम्भ श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (1843 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चंद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरम्भ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात प्रेमचंद (1880–1936) से हुआ। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी की ओर मुड़े। आपके 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान', आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का उत्तम चित्रण है। चरित्र-चित्रण में प्रेमचंद गांधी जी के 'हृदयपरिवर्तन' के सिद्धांत को मानते थे।

बाद में उनकी रुझान समाजवाद की ओर भी हुई, ऐसा जान पड़ता है। कुल मिलाकर उनके उपन्यास हिंदी में आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यासों में भिन्न प्रकार के समाजों का चित्रण है, परंतु शैली अधिक काव्यात्मक है। प्रेमचंद की ही शैली में, उनके अनुकरण से विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था। परंतु पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि ने फरांसीसी ढंग का यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नैचुरॉलिज्म) अपनाया और समाज की बुराइयों का दंभस्फोट किया। इस शेली के उपन्यासकारों में सबसे सफल रहे 'चित्रलेखा' के लेखक भगवतीचरण वर्मा, जिनके 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' का भी इस समाज की बुराइयों के चित्रण-वाली रचनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र' इसी यथार्थवादी शैली में आगे बढ़कर आंचलिकता मिलाने वाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। सियारामशरण गुप्त की नारी' की अपनी-अलग विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से शुरू हुए। 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि से भी अधिक आप के 'त्यागपत्र' ने हिंदी में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जैनेंद्र जी दार्शनिक शब्दावली में अधिक उलझ गए। मनोविश्लेषण में स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने 'शेखर–एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' में उत्तरोत्तर गहराई और सूक्ष्मता उपन्यासकला में दिखाई। इस शैली में लिखने वाली बहुत कम मिलते हैं। सामाजिक विकृतियों पर इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी' आदि में अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस शैली के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और नरेश मेहता का 'वह पथबंधु था' उत्तम उपलब्धियाँ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक बहुत मनोरंजक कथा प्रयोग है जिसमें प्राचीन काल के भारत को मूर्त किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा के 'महारानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिकता तो बहुत है, रोचकता भी है, परंतु काव्यमयता द्विवेदी जी जैसी नहीं है। राहुल सांकृत्यायन (1895-1963), रांगेय राघव (1922-1963) आदि ने भी कुछ संस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास दिए हैं।

यथार्थवादी शैली सामाजिक यथार्थवाद की ओर मुड़ी और 'दिव्या' और 'झूठा सच' के लेखक भूतपूर्व क्रांतिकारी यशपाल और 'बलचनमा' के लेखक नागार्जुन इस धारा के उत्तम प्रतिनिधि हैं। कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में प्रचार का आग्रह बढ़ गया है। हिंदी की नवीनतम विधा आंचलिक उपन्यासों की है, जो शुरू होती है फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' से और उसमें अब कई लेखक हाथ आजमा रहे हैं, जैसे राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, मनहर चौहान, शिवानी इत्यादि।

हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास

हिंदी के मौलिक कथासाहित्य का आरम्भ ईशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात् पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाजसुधार है।

भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाजसुधारक के रूप में लिखा। बाबू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यास लेखक थे जिन्होंने विशुद्ध उपन्यास लेखक के रूप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिए ही कहानी कही। वह अपने युग के घात प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी शृंखला जोड़ी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम ईशांकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलतापूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथासाहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में पं. किशोरीलाल गोस्वामी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा में घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी

जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्रायः सभी कहीं पड़ा हुआ है।

जासूसी उपन्यास लेखकों में बाबू गोपालराम गहमरी का नाम महत्त्वपूर्ण है। गहमरी जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण स्वयं अनुभव की हुई घटनाओं के आधार पर किया है, इसलिए कथावस्तु पर प्रामाणिकता की छाप है। कथावस्तु हत्या या लाश के पाए जाने के विषयों से संबंधित है। जनजीवन से संपर्क होने के कारण उपन्यासों की भाषा में ग्रामीण प्रयोग प्रायः मिलते हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यास लेखकों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। तिलस्मी उपन्यासों की दिशा में जौहर ने बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा स्थापित उपन्यास परंपरा को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। आधुनिक जीवन की विषमाओं एवं सभ्य समाज के यथार्थ जीवन का प्रदर्शन करने के लिए ही बाबू हरिकृष्ण जौहर ने जासूरी उपन्यासों का निर्माण किया है। 'काला बाघ' और 'गवाह गायब' आपके इस दिशा में महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों का निर्माण लोकसाहित्य की आधारशिला पर हुआ। कौतूहल और जिज्ञासा के भाव ने इसे विकसित किया। आधुनिक जीवन की विषमताओं ने जासूसी उपन्यासों की कथा को जीवन के यथार्थ में प्रवेश कराया। असत्य पर सत्य की सदैव ही विजय होती है यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति का केंद्रबिंदु है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मूल रूप से पाई जाती है।

5

कार्यालयी हिंदी

आमतौर पर सरकारी कार्यालयों को कार्यप्रणाली से अपरिचित लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं होता की सामान्य जीवन में जिस हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं वह कार्यालय हिंदी नहीं है इतना ही नहीं विश्व के अनेक देशों की सामान्य बोलचाल की भाषा, जिसे राष्ट्रभाषा कहा जाता है और सरकारी कामकाज की भाषा एक ही है। उन देशों में जब एक ही भाषा होने के बावजूद उसकी प्रयोगात्मक के समय भ्रम रहता है तो भारत जैसे देश में यह और भी अस्पष्ट हो जाती है।

भारत के संविधान में आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध इस समय 22 भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाओं का स्थान दिया गया है। इसलिए संवैधानिक रूप से भारत की एक राष्ट्रभाषा नहीं है। इसलिए आम समाज में बोली जाने वाली हिंदी और कार्यालय हिंदी की कार्य प्रक्रिया में भिन्नता का ज्ञान समाज का होना अनिवार्य है। वैसे तो सामान्य हिंदी भाषा और कार्यालय हिंदी में आपसी संबंध आत्मकता भी हैं। इन दोनों की भाषिक संरचना या व्याकरणिक आधार एक ही है।

सामान्य हिंदी का मौखिक रूप भले ही व्याकरण सम्मत ना हो लेकिन सामान्य हिंदी का लिखित रूप मूलत: व्याकरणिक आधार पर ही निर्धारित किया जाता है उसी तरह कार्यालय हिंदी का स्वरूप भी सामान्य हिंदी की तरह ही व्याकरण सम्मत होता है। किसी भी भाषा की भाषिक संरचना से उसकी मानकता का आधार बिंदु एक ही है। लेकिन वाक्य संरचना और प्रयोग की दृष्टि से दोनों में बहुत अंतर होता है।

कार्यालयी हिन्दी का अभिप्राय

भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। अलग-अलग क्षेत्रों में भाषा का रूप भी बदलता है। दैनिक जीवन में मनुष्य अपने सम्प्रेषण के लिए जिस भाषा का प्रयोग करता है वह मौखिक व बोलचाल की भाषा होती है। वैसे तो भाषा के प्रत्येक रूप में मानकता का निर्वाह होना आवश्यक है, लेकिन बोलचाल की भाषा में यदि मानकता का प्रयोग नहीं भी किया जाता तब भी वह सामाजिक जीवन में लगातार प्रयोग में अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त आधार रहती है। इसी तरह सांस्कृतिक संदर्भ में भाषा का रूप लोकगीतों में जिस प्रकार होता है वह मौखिक परम्परा के कारण मानकता का निर्वाह भले ही न करती हो लेकिन हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को संजोए रखने में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी तरह साहित्यिक हिन्दी का स्वरूप जहाँ अपनी परिनिष्ठता के कारण अपनी अलग पहचान रखता है वहीं आंचलिक साहित्य में क्षेत्रीयता के प्रभाव के कारण साहित्यिक हिन्दी एक नए रूप में भी हमारे सामने आती है। इसलिए साहित्यिक हिन्दी का रूप भी पूर्णत: निर्धारित नहीं किया जा सकता।

वर्तमान दौर में तकनीकी के आगमन के बाद जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में हिन्दी का वर्चस्व तेजी से बढ़ने लगा है। जनसंचार के इन माध्यमों की हिन्दी सामान्य बोलचाल के निकट होती है। लेकिन मानकता की दृष्टि से वह भी निर्धारित मापदण्ड पर सही नहीं ठहरती। इसका कारण है कि जनसंचार का मुख्य उद्देश्य समाज के विशाल वर्ग तक सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की सूचना को सम्प्रेषण करना है और भारत जैसे विशाल राष्ट्र में सरल और सुबोध भाषा के द्वारा ही विशाल जनसमुदाय तक अभिव्यक्ति सम्भव हो सकती है। इसीलिए जनसंचार के माध्यमों में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्दों का व्यावहारिक प्रयोग उसे मानकता से परे करता है। इन रूपों के अतिरिक्त व्यापार, वाणिज्य, विधि, खेल आदि अनेक क्षेत्रों में हिन्दी के रूप पारिभाषिक के साथ-साथ स्वतंत्र भी थे। इन क्षेत्रों की अपनी विशिष्ट भाषा के कारण इसका प्रयोग सीमित रूप में ही किया जा सकता था। इन क्षेत्रों से सम्बन्धित लोगों में ही इस भाषा के अर्थ को समझने की क्षमता होती है। लेकिन इन क्षेत्रों में हिन्दी का मानकीकृत रूप ही स्वीकार्य होता है।

हिन्दी के इन विभिन्न रूपों और अनेक अन्य रूपों में भाषा का जो स्वरूप होता है वह कार्यालयी हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होता। कार्यालयी हिन्दी इससे भिन्न

पूर्णत: मानक एवं पारिभाषिक शब्दों को ग्रहण करके चलती है। कार्यालयी हिन्दी सामान्य रूप से वह हिन्दी है जिसका प्रयोग कार्यालयों के दैनिक कामकाज में व्यवहार में लिया जाता है। विभिन्न विद्वानों ने यह माना है कि चाहे वह किसी भी क्षेत्र का कार्यालय हो, उसमें प्रयोग में ली जाने वाली हिन्दी कार्यालयी हिन्दी ही कहलाती है। डॉ. डी.के. जैन का मत है कि-'वह हिन्दी जिसका दैनिक व्यवहार, पत्राचार, वाणिज्य, व्यापार, प्रशासन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, योग, संगीत, ज्योतिष, रसायनशास्त्र आदि क्षेत्रों में प्रयोग होता है, उसे कार्यालयी या कामकाजी हिन्दी कहा जाता है।' (प्रयोजनमूलक हिन्दी, पृष्ठ 9) इसी तरह डॉ. उषा तिवारी का मानना है कि 'सरकारी कामकाज में प्रयुक्त होने वाली भाषा को प्रशासनिक हिन्द्री या कार्यालयीन हिन्दी कहा जाता है। हिन्दी का वह स्वरूप जिसमें प्रशासन के काम में आने वाले शब्द, वाक्य अधिक प्रयोग में आते हों।

इन दोनों परिभाषाओं में देखा जाए तो एक परिभाषा कार्यालय के कार्यक्षेत्र को अत्यन्त विस्तृत दिखाती है वहीं दूसरी परिभाषा में बह केवल सरकारी कार्यालयों में प्रयोग में ली जाने वाली भाषा ही है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यालयों की उपस्थित के कारण कार्यालय को किसी भी परिभाषा के वृत्त में समेटना बहुत कठिन कार्य है, किन्तु प्रचलन की दृष्टि से कार्यालयी हिन्दी को सरकारी कार्यालयों में प्रयोग में ली जाने वाली भाषा के रूप में ही जाना है। इन सरकारी कार्यालयों में केन्द्र अथवा राज्य सरकारों के अपने अथवा उनके अधीनस्थ आने वाले विभिन्न मंत्रालय तथा उनके अधीन आने वाले संस्थान, विभाग अथवा उपविभाग एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों आदि को शामिल किया जाता है। सरकार का कोई भी कार्यालय, चाहे वह उसकी अधीनस्थ हो अथवा सम्बद्ध हो, वह सरकारी कार्यालय ही कहा जाएगा। इसलिए इन कार्यालयों के कामकाज में प्रयोग की जाने वाली हिन्दी को कार्यालयी हिन्दी का जाता है।

कार्यालयी हिंदी का उद्देश्य

कार्यालय हिंदी प्रशासन की राज-काज की भाषा है। इसका उद्देश्य कार्यालयी स्तर पर हिंदी के प्रचलन को बढ़ाना है और हिंदी को सर्वसामान्य कि पहुँच तक लाना है। भारत में हिंदी बोली जाती है मगर ऐसी भी स्थिति है कि कहीं-कहीं हिंदी भाषा को नहीं बोला जाता है। हिंदी को वह महत्त्व प्राप्त नहीं है, जो उसको होना चाहिए। भारत में एक राष्ट्रभाषा हो वह भी स्वप्न है, जो आज तक पूर्ण ना हो सका है और हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए यह कार्यालय

हिंदी के रूप में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। ऐसे कई देश है, जो प्रशासन और सामान्य स्तरों पर एक ही भाषा का प्रयोग करते हैं और वे भारत के क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से विस्तृत है। भारत में ऐसे स्थान जहां लोग हिंदी बोल सकते हैं समझ सकते हैं परंतु उसे लिख और पढ़ नहीं पाते हैं इसलिए हिंदी भाषी लोगों को हिंदी पढ़ने और लिखने की बात भारतीय संविधान में निर्दिष्ट की गई। भारत अनेक भाषाओं का राष्ट्र होने के कारण और राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के चलते हिंदी राजभाषा तो बन गई किंतु उसे अभी तक वह सम्मान प्राप्त नहीं हो सका जो वास्तव में किसी एक राष्ट्र की प्रधान भाषा को मिलना चाहिए।

न्यायालय में आज भी काम-काज की भाषा अंग्रेजी ही मानी जाती है। भारत में विधि के क्षेत्र में हिंदी की जितनी अपेक्षा की गई उतनी किसी अन्य क्षेत्र में नहीं। अधिकांश न्यायालयों में प्रस्तुत किए जाने वाले बाद और होने वाली बहसें आज भी अंग्रेजी में होती है अपने-अपने वाद के संबंध में वादी या प्रतिवादी को यह भी नहीं पता चल पाता कि न्यायालय में प्रस्तुत उनके वाद को अधिवक्स द्वारा कितनी मजबूती से प्रस्तुत किया है और उनके उस वाद को उस के पक्ष में प्रस्तुत किया भी है अथवा नहीं।

जिस समय राजभाषा संबंधी प्रावधानों को रखा गया था उस समय उसमें यह भी सुनिश्चित किया गया कि जहां भी राजभाषा हिंदी में कार्य करते हुए कर्मचारी को परेशानी का सामना करना पड़े वहां अंग्रेजी के शब्दों को यथावत देवनागरी में लिख सकता है क्योंकि प्रशासन की अपनी सुनिश्चित शब्दावली होती है ऐसे में अंग्रेजी के अनेक शब्दों का अनुवाद संभव ही नहीं हो सकता इसलिए उन शब्दों को देवनागरी में लिप्यांतरित कर उसका प्रयोग किया जा सकता है जिससे सामान्य व्यक्ति उस पत्र के मत्व्य को समझ सके।

समाज से की बहुसंख्यक वर्ग तक शासन की नीतियों को सहज रूप से पहुँचाते हुए सामान्य नागरिक को उसके अधिकारों के प्रति जानकारी देना कार्यालय हिंदी का उद्देश्य है। इसके अलावा शासन और प्रजा के बीच सीधा संवाद स्थापित करना। राष्ट्र के विकास में सामान्य नागरिक की सीधी भागीदारी सुनिश्चित करना यह सभी कार्यालय हिंदी के उद्देश्य हैं।

कार्यालयी हिंदी का स्वरूप

भाषा का मुख्य उद्देश्य है अपनी बात सामने वाले से या जिसके लिए प्रयुक्त हो उसे आसानी से समझाई जा सके वह आसानी से ग्राह्य हो। समस्त

उपबंधों के होते हुए भी आम लोगों में यह धारणा है कि हिन्दी का प्रयोग कठिन होगा क्योंकि साहित्यिक हिन्दी अपेक्षाकृत कठिन होती है और यदि इस हिन्दी का प्रयोग आम पत्राचार में किया जाए तो हास्यास्पद या समझने में कठिनाई आएगी। शायद इसी भ्रम के कारण लोग हिन्दी को अपनाने से कतराते हैं। इस समस्या के निजात के लिए भारत सरकार, राजभाषा विभाग द्वारा आसान हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया जाता है। आसान हिन्दी का अर्थ है स्थानीय एवं आम बोलचाल कि भाषा का प्रयोग सरकारी कार्यों के लिए किया जाए। इस प्रकार से हिन्दी का प्रचलन बढ़ेगा। चूंकि हमारा देश विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों से युक्त है अत: आसान हिन्दी समझ पाना सबके लिए आसान होगा तथा क्षेत्र विशेष के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से भाषा की धारा भी सुचारु रूप से चलती रहेगी तथा इससे हिन्दी का प्रयोग भी बढ़ेगा। आमतौर पर देखा गया है कि आसान शब्दों को ग्रहण करने में जितनी आसानी होगी उतनी ही कठिनाई एवं भारी भरकम शब्दों के साथ आएगी। जिन सरकारी कार्यालयों में इस विधि का अनुसरण किया गया वहाँ हिन्दी का प्रचार-प्रसार अपेक्षाकृत अधिक ही हुआ। उदाहरणस्वरूप अंग्रेजी का शब्द approval के लिए हिन्दी के कई विकल्पों का प्रयोग किए जा सकते हैं, जो अनुमोदन, संस्तुति आदि हो सकता है। यह भी प्रावधान किया गया कि यदि कोई कार्मिक हिन्दी लिखने में वर्तनी संबन्धित यदि कोई त्रुटि भी करता है तो उसे इस बात के लिए हतोत्साहित करने की बजाय प्रोत्साहित किया जाए कि उसने हिन्दी में लिखने का प्रयास तो प्रारम्भ किया।

कई बार ऐसा देखा गया ही कि अंग्रेजी में प्राप्त पत्रों को हिन्दी में अनूदित करवाने की आवश्यकता पड़ जाती है। अनुवाद करते समय अधिकांशत: लोग शब्दानुवाद का प्रयास करते हैं। शब्दानुवाद कुछ हद तक तो ठीक है पर जब हम यह अनुवाद आसानी से भाषा के कथ्य को समझने के लिए करते हैं तो कहीं-कहीं शब्दानुवाद के कारण उस विषय का मूल अर्थ भारी और उबाऊ होने के साथ समझ से परे हो जाता है। ऐसे में यह सलाह दी जाती है कि भावानुवाद किया जाए तथा दिये गए अंग्रेजी पाठ के मूल कथ्य को प्रदर्शित किया जाए ताकि उसे समझने में आसानी हो तथा उसके अनुरूप पत्राचार किया जा सके। सरकारी कामकाज में पहले देखा गया है कि अंग्रेजी के कुछ ऐसे वाक्य होते हैं जिनका हिन्दी अनुवाद बड़ा ही कठिन लगता है या हिन्दी में उन शब्दों या वाक्यों का प्रयोग करना बड़ा ही अटपटा लगता है जैसे I am directed to say/I am directed to forward ऐसा माना जाता है कि पत्र जारी करने वाला अधिकारी

अपने से कुछ नहीं कर रहा है। वह सरकार के अनुदेश पर समस्त कार्य करता है इसी लिए हमेशा पत्राचार में यह वाक्य प्रयोग किया जाता है। इनका हिन्दी में अनुवाद मुझे यह कहने का निदेश हुआ है, मुझे.... अग्रेषित करने का निदेश हुआ है। अंग्रेजी के पत्र में सम्बोधन के लिए Dear Sir का प्रयोग होता है पर हिन्दी में महोदय लिखा जाता है। अंग्रेजी पत्राचार में Yours faithfully, लिखा जाता है पर इसके हिन्दी रूपमें आपका विश्वासी लिखना कतई उपयुक्त नहीं होगा। इसके स्थान पर हम भवदीय लिखते हैं।

कार्यालयों में आम पत्राचार के अतिरिक्त एक और चीज प्रचलन में है जिसे नोटिंग कहा जाता है। सरकारी कार्यालयों में कोई भी कार्य बिना फाइल पर टिप्पणी के नहीं की जा सकती। कार्य करने वाला सहायक कोई भी बात या अपने उच्चाधिकारी को फाइल पर नोट के रूप में लिखकर करता है। इसे अंग्रेजी में नोटिंग कहा जाता है। उसकी बात पर उच्चाधिकारी द्वारा तदनुसार कार्य करने का अनुदेश दिया जाता है। कार्यालय के पत्राचार का यह प्रथम सोपान होता है। अंग्रेजी में लिखे जाने वाले नोट अमूमन passive voice, third person के रूप में लिखे जाते हैं पर हिन्दी में सीधे सपाट शब्दों में तथा आसान वाक्यों में लिखने पर बल दिया जाता है। उदाहरण के लिए नोट शीट में किसी बात को प्रस्तुत करने के लिए अंग्रेजी में Submitted please लिखकर शुरुवात की जाती है ऐसे मान लीजिये कार्यालय में दो कार्मिकों की कमी है। इस कमी को दूर करने के लिए मुख्यालय से दो कार्मिकों की मांग की जानी है।

कार्यालयी हिन्दी के कार्य-पद्धति

संघीय कार्य-पद्धितः-केन्द्रीय सरकार के सभी मंत्रालयों, सचिवालयों, विभागों तथा उनके अधीन सभी कार्यालयों की कार्य-प्रणाली लगभग एक-सी होती है। परन्तु सरकारी नियन्त्रण के बैंकों, निगमों, संस्थाओं तथा कम्पनियों आदि की कार्य-पद्धति भिन्न-भिन्न होती है। सरकारी कार्यालयों में टिप्पण-लेखन एवं मसौदा-लेखन को अत्यधिक प्रधानता प्राप्त है, किन्तु सरकारी क्षेत्र के बैंकों, निगमों, संस्थाओं तथा कम्पनियों आदि के कार्यालयों में गौण है।

भारतीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का स्थान अपनी-अपनी व्यवस्था में सर्वोपरि होता है। राष्ट्रपति संघ का कार्यकारी प्रमुख होता है। प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद (Council of Ministers) का अध्यक्ष होता है। केन्द्रीय सरकार का कार्यालयीन कामकाज विभिन्न मंत्रालयों के माध्यम से किया जाता

है। कैबिनेट मंत्री (Cabinet Minister) सम्बन्धित मंत्रालय का प्रमुख होता है जिसकी सहायता राज्य मंत्री (Minister of State) अथवा उपमंत्री (Deputy Minister) करते हैं। भारतीय संघ विधान के अनुच्छेद 77(3) के अधीन मंत्रिपरिषद के मंत्रियों के माध्यम से सरकारी कार्य को सुचारु रूप से चलाने एवं शासन की सुविधा हेतु 'कार्यसंचालन नियमावली' बनाई गई है। प्रत्येक मंत्रालय के अधीन विशिष्ट कार्य सौंपा जाता है। सरकार की निति के निर्धारण, कार्यान्वयन तथा समीक्षण आदि के लिए सम्बन्धित मंत्रालय उत्तरदायी होते हैं। प्रधानमंत्री की सलाह पर विभिन्न मंत्रालयों के कार्य का आबंटन भारत के राष्ट्रपति करते हैं। प्रत्येक मंत्रालय का कामकाज केबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री या उपमंत्री, सचिव, उपसचिव, संयुक्त सचिव, विभागप्रमुख निदेशक तथा वरिष्ठ अधिकारी आदि की सहायता से सम्पन्न होता है। सरकारी क्षेत्र के नियमों, बैंकों, उधमों तथा कम्पनियों की कार्य-प्रणाली शासकीय कार्य-पद्धति से भिन्न होती है। इनमें कार्यालय या निगम अथवा कम्पनी के प्रमुख के रूप में अध्यक्ष एवं निदेशक कार्य करता है जिसकी सहायता कार्याकारी या कार्यापालक निदेशक, महाप्रबंधक, उपमहाप्रबंधक, आंचलिक प्रबंधक, क्षेत्रीय प्रबंधक तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारी करते हैं।

'राज्य-शासन कार्य-पद्धित'-जिस प्रकार भारतीय संघ का संवैधानिक अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है, उसी प्रकार राज्यों का संविधानिक अध्यक्ष राज्पाल होता है, जो राज्यस्तर विधान सभा और विधान-परिषद द्वारा बहुमत से चुने गये मुख्यमंत्री के परामर्श से राज्य-सरकार के विभागीय कार्यों का विनियोजन कर, मंत्रियों की नियुक्ति करता है। केन्द्र सरकार की भाँति राज्य सरकार के भी तीन प्रकार के मंत्री होते हैं-कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री तथा उपमंत्री।

राज्य-सरकारों के कार्य–संचालन के लिए भी केन्द्रीय सचिवालय होते हैं, जिसका प्रशासनिक अध्यक्ष राज्य का मुख्य सचिव होता है। उससे संलग्न शाखा-कार्यालयों के सचिव, उपसचिव होते हैं। अलग-अलग कार्यालय अधिकारी अपने विभाग के क्लर्कों की सहायता से अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में कार्य-सम्पादन करते हैं।

सचिवालय कार्य-पद्धति-केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के प्रशासन की महत्त्वपूर्ण कड़ी उनके सचिवालय होते हैं जिनके माध्यम से सरकारी कामकाज का सूत्र-संचालन किया जाता है। केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक मंत्रालय, विभाग अथवा प्रधान में एक केन्द्रीय पंजीकरण अनुभाग होता है। जो बाहर के

स्थानों से आई डाक को प्राप्त कर उचित कार्यवाही करता है। गोपनीय अंकित पत्रों को छोड़कर शेष सभी बंद लिफाफों के पत्रों खोलता है। तथा पत्रों के प्राप्त होने की तिथि की तारिख-मुहर लगाकर अनुभागों के अनुसार छंटनी होने के बाद पत्रों का आवक रजिस्टर दर्ज किया जाता है। सचिवालय में सामान्यता सचिव ही प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी होता है। सचिव के अतिरिक्त संयुक्त सचिव, उपसचिव, अवर सचिव, अनुभाग अधिकारी, सुपरिटेंडेंट, सहायक, उच्चश्रेणी लिपिक, निम्नश्रेणी लिपिक, निजि सचिव, वैयक्तिक सहायक, अशुलिपिक तथा टंकक आदि अधिकारी-कर्मचारी होते हैं।

कार्यालय हिंदी का क्षेत्र

यह स्पष्ट है कि जहां किसी भी संस्था के अधिकारियों द्वारा उस संस्था का कार्य सहज रूप से क्रियान्वित किया जाता है वह कार्यालय होता है। राजभाषा संबंधी संवैधानिक प्रावधानों में 'कार्यालयी हिंदी' के क्षेत्र अधिकार के संबंध में राजभाषा नियम, सन् 1970 में पूरी तरह से स्पष्ट किया गया है। लेकिन शासन ने इस व्यवस्था को निर्धारित करते समय भारत के सभी राज्यों को 'क', 'ख' व 'ग' तीनों क्षेत्रों में विभाजित किया।

'क' क्षेत्र के अंतर्गत–बिहार, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर-प्रदेश तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य।

'ख' क्षेत्र के अंतर्गत–गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़ दमन और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र।

'ग' क्षेत्र के अंतर्गत–'क' तथा 'ख' क्षेत्र के राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के अतिरिक्त।

इन क्षेत्रों में 'क' वर्ग में आने वाले राज्यों में सरकारी कामकाज की भाषा पूर्णत: हिंदी होगी। लेकिन यदि वे किसी अन्य वर्ग के राज्य या संघ शासित प्रदेश से पत्र व्यवहार करते हैं तो उनके अंग्रेजी पत्रों के साथ हिंदी अनुवाद भी अनिवार्य रूप से भेजा जाएगा। केंद्र सरकार के सभी कार्यालय 'ख' क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले कार्यालयों को आंशिक रूप से हिंदी में तथा आवश्यकतानुसार अंग्रेजी में भेजे गए पत्रों के अनुवाद हिंदी में भेजना अनिवार्य होगा।

'ख' क्षेत्र के किसी भी राज्य संघ राज्य क्षेत्र द्वारा किसी भी व्यक्ति या कार्यालय को हिंदी अंग्रेजी में पत्र भेजे जा सकते हैं।

'ग' क्षेत्र में केंद्र सरकार द्वारा भेजे जाने वाले सभी पत्र अंग्रेजी में होंगे किंतु 'ग' क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय अथवा केंद्र सरकार के कार्यालय से 'क' अथवा 'ख' क्षेत्र को भेजे जाने वाले पत्र हिंदी अंग्रेजी किसी भी भाषा में हो सकते हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो कार्यालय हिंदी का क्षेत्र विशाल होते हुए भी विभिन्न उपबंधों और नियमों द्वारा उसे सीमित किया गया है।

सामान्य हिंदी तथा कार्यालयी हिंदी में संबंध और अंतर

सामान्य हिंदी और कार्यालय हिंदी में आपसी संबंध होने के बावजूद भी बहुत अंतर है। जिसे निम्न बिंदुओं द्वारा समझा जा सकता है।–

1. सामान्य हिंदी समाज के अपने व्यवहार की भाषा है इस भाषा का प्रयोग सामान्य नागरिक अपने दैनिक क्रियाकलापों में करता है उसके लिए यह संपर्क की भाषा है अपनी अभिव्यक्ति को सहज रूप से संप्रेषित करने के लिए समाज सामान्य हिंदी की सरल शब्दावली का चयन करता है जिसमें वह अन्य भाषाओं या गोलियों के शब्दों को सहजता से ग्रहण कर लेता है जबकि कार्यालय हिंदी शासक वर्ग की भाषा है इसका प्रयोग सरकारी अर्द्ध सरकारी और अन्य क्षेत्रों में किया जाता है सामान्य तौर पर कार्यालय में सरकार के विभागीय कार्य वृत्ति का विवरण ही होता है सरकार द्वारा उचित दिशा निर्देशों को जारी करना, विभिन्न सरकारी नियमों को सर्वमान्य संज्ञा देना, विनिमय बनाना, मंत्रालयों के बीच संवाद करना,विभागों के मध्य संपर्क स्थापित करना आदि कार्य किसी भी सरकारी कार्यालय में होते हैं।
2. सामान्य हिंदी का क्षेत्र अध्ययन व्यापक है वह समाज के प्रत्येक वर्ग द्वारा बोली जाती है। शिक्षित अथवा अशिक्षित प्रत्येक वर्ग का सामाजिक इस भाषा का प्रयोग करता है विभिन्न क्षेत्रों में सामान्य हिंदी में क्षेत्रीयता का प्रभाव लक्षित होता है अर्थात् जो क्षेत्र सामाजिक हिंदी का प्रयोग करता है वह अपने क्षेत्र की बोलियों के शब्दों को सहजता से सामान्य हिंदी में स्वीकार कर लेता है सामान्य हिंदी मूल रूप से विभिन्न बोलियों का समुच्चय ही है इसलिए सामान्य हिंदी लगातार विकसित होती रहती है, लेकिन कार्यालय हिंदी कार्यवृत्त की अपनी एक विशिष्ट भाषा होती है कार्यालय पर युक्तियों की भाषागत संरचना और उसकी शाब्दिक द्वारा ही कार्यालय का कार्य सुचारु रूप से चलाया जा सकता है इसके शब्दों में

परिवर्तन संभव नहीं होता इसमें प्रयोग में लिए जाने वाले शब्द परिभाषिक शब्द होते हैं यह प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक स्थान पर एकरूपता का निर्वाह करते हैं प्रत्येक क्षेत्र का सामाजिक चाहे उसकी अपने क्षेत्र की कोई भी बोली क्यों ना हो वह कार्यालय हिंदी में उस बोली का प्रभाव नहीं ला सकता इसलिए प्रयोग की दृष्टि से कार्यालय हिंदी मानक होती है और सामान्य हिंदी अमानक।

3. सामान्य हिंदी का प्रयोग कोई भी सामाजिक कर सकता है वह अपने दैनिक कार्यों के अतिरिक्त पत्र व्यवहार में भी इसका प्रयोग कर सकता है वह सामान्य हिंदी को सुव्यवस्थित बनाते हुए उसमें साहित्य रचना भी कर सकता है ध्यातव्य है कि प्रत्येक सामान्य भाषा या बोली ही धीरे-धीरे साहित्य की भाषा बन जाती है साहित्य की भाषा भी सामान्य हिंदी की तरह निरंतर परिवर्तनशील होती है, लेकिन कार्यालय हिंदी अपरिवर्तनीय होती है उसमें किसी एक शब्द के स्थान पर उस का पर्यायवाची शब्द नहीं रखा जा सकता।
4. सामान्य हिंदी का प्रयोग पूरे राष्ट्र के बहुसंख्यक सामाजिकओं द्वारा किया जाता है यहां तक कि अहिंदिभाषी प्रदेशों के लोग भी इस भाषा को जान समझ सकते हैं और आंशिक तौर पर संपर्क के लिए इसका प्रयोग भी करते हैं, लेकिन कार्यालय हिंदी के प्रयोक्ता बहुत ही कम होते हैं कार्यालय की कार्यप्रणाली और पद्धति के अनुसार उसके प्रयोक्ता किसी भी क्षेत्र से संबंध होने पर भी कार्यालय हिंदी का एक जैसा प्रयोग ही करते हैं।
5. सामान्य हिंदी पूर्णता अनौपचारिक होती है और उस पर अन्य भाषाओं और बोलियों का प्रभाव सहज रूप से पड़ता है इसलिए शामा ने हिंदी को उन्मुक्त और स्वच्छंद भाषा कहा जाता है। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सामान्य हिंदी में अपेक्षित परिवर्तन सहज रूप से दिखाई देता है वह कई बार व्याकरण का भी अतिक्रमण करती है, लेकिन कार्यालय हिंदी औपचारिक होती है इस हिंदी का प्रयोग कार्यालयों में विभिन्न विषयों की सूचना पहुँचाना होता है वह भाषा की संरचनाओं के भीतर रहकर ही कार्य करती है।
6. सामान्य हिंदी में आम नागरिक अपने लोक के मुहावरों, लोकोक्तियां और व्यंजनआत्मक शब्दों का प्रयोग करता है इतना ही नहीं सामान्य हिंदी में

अलंकारिक और लाक्षणिक्ता का पुत्र सहज ही दिखाई देता है। लेकिन कार्यालय हिंदी में लक्षण या व्यंजना का प्रयोग पूर्णतया वर्जित है। सूचना प्रधान होने के कारण उसमें मुहावरों, लोकोक्तियों या अलंकारिकता का प्रयोग पूरी तरह से निषिद्ध है।

7. सामान्य हिंदी का प्रयोग संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है इसमें सामाजिक अपने राग द्वेष, आक्रोश, राष्ट्र प्रेम तथा विद्रोह कि अभी व्यक्तियों को आवश्यकता अनुरूप प्रयोग में लाता है, लेकिन कार्यालय हिंदी का संबंध सामाजिक की संवेदना हो या भावनाओं से नहीं होता न ही वह समाज के विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है वह केवल शासन की कार्यप्रणाली और उसकी सूचनाओं को संप्रेषित करने का आधार बिंदु है।
8. सामान्य हिंदी में राष्ट्र के लोगों की सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक चेतना विद्यमान रहती है वह भारत राष्ट्र की आत्मा की प्रतिध्वनि है लोक के समस्त व्यापार, जिनका संबंध उसकी सामाजिक सांस्कृतिक चेतना से है, उसे क्रियान्वित करने के लिए सामान्य हिंदी का प्रयोग किया जाता है, किंतु कार्यालय हिंदी में प्रशासन, विधि और संवैधानिक विधाओं का विवेचन किया जाता है उसका प्रयोग भले ही समाज के सामाजिक द्वारा किया जा रहा हो लेकिन उसमें सामाजिक की सोच, उसकी आस्था और विश्वास का प्रभाव नहीं होता वह पूर्णत: निर्व्यक्तिक होती है।
9. भाषिक संरचना की दृष्टि से सामान्य हिंदी और कार्यालय हिंदी दोनों में पर्याप्त अंतर है जहां सामान्य हिंदी में कृत वाच्य का प्रयोग अधिक होता है वही कार्यालय हिंदी में कर्म वाच्य को अधिक महत्त्व दिया जाता है।
10. सामान्य हिंदी और कार्यालय हिंदी में एक विशेष अंतर उसकी शब्दावली को लेकर भी है जहां कार्यालय हिंदी में परिभाषित शब्दों का प्रयोग किया जाता है वहीं सामान्य हिंदी में इनका प्रयोग संभव नहीं है।

अंतत: कहा जा सकता है कि सामान्य हिंदी में आम समाज की भावुक्ता और संवेदनाएं अभिव्यक्त होकर आती है इसलिए वह निरंतर समय हुआ क्षेत्र अनुसार परिवर्तित होती रहती है कार्यालय हिंदी यांत्रिक होती है और उसका एक सुनिश्चित प्रारूप होता है जिसमें कार्यालय की अभिव्यक्ति यां प्रस्तुत की जाती है।

प्रशासनिक हिन्दी

हमारे देश में काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा गुजरात से लेकर नागालैंड तक अनेक भाषाएँ, उपभाषाएँ, बोलियाँ तथा उप-बोलियाँ बोली जाती हैं। इनमें विभिन्नता के होते हुए भी एकता के दर्शन होते हैं। प्राचीन काल से भावनात्मक एकता के संदेश के साथ-साथ भारतीय साहित्य में देश की सांस्कृतिक गरिमा, यहाँ की सभ्यता, यहाँ के आदर्श और जीवन के शाश्वत मूल्यों, यहाँ की सभ्यता, यहाँ के आदर्श और जीवन के शाश्वत मूल्यों को समान रूप से वाणी मिली है। यही कारण है कि सभी भारतीय भाषाएँ भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इस धरती पर सांस्कृतिक एकता की पावन गंगा प्रवाहित करती है। भाषा मानव को मानव से जोड़ती है। यह विचारों के आदान-प्रदान में सहायक होने के साथ-साथ परंपराओं, संस्कृतियों और मान्यताओं तथा विश्वासों को समझने का माध्यम भी हे। प्राचीनकाल से ही विभिन्न भाषाएँ इस देश में पारस्परिक स्नेह, भाई-चारे की भावना तथा सांस्कृतिक एकता और अखंडता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमका निभाती रही है। इस विचार से देखा जाए तो संस्कृत, हिन्दी तथा भारतीय संविधान में मान्यता प्राप्त अन्य प्रादेशिक भाषाएँ इस देश की सामासिक संस्कृति के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

हिन्दी के विकास में संस्कृत की भूमिका

संस्कृत भाषा के विषय में संस्कृत के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मोनियर विलियम ने कहा है कि 'यद्यपि भारत में पाँच सौ से अधिक बोलियाँ प्रचालित हैं, परंतु हिन्दुत्व को मानने वाले सभी व्यक्तियों के लिए, चाहे वे कितनी जाति, कुल, मर्यादा, संप्रदाय और बोलियों की भिन्नताओं के क्यों न हों, सर्वसम्मति से स्वीकृत और समादूत एक ही पवित्र भाषा और साहित्य है और वह भाषा है–संस्कृत और वह साहित्य है–संस्कृत साहित्य। इसे किसी काल और सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। संस्कृत को विश्व की 3 प्राचीन महान् भाषाओं में गिना जाता है। यदि पिछली कई शताब्दियों के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होगा कि जब देश छोटे-छोटे राज्यों और प्रांतों में बँटा था तो संस्कृत को कार्य व्यवहार के लिए महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में अपनाया गया था। भारत की प्रादेशिक भाषाएँ भी संस्कृत के प्रभाव के अंतर्गत रही हैं। अनेक सरकारी लेखपत्रों, कानूनों नियमों तथा सरकार और नागरिकों से संबंधित अनेक अभिलेखों का संस्कृत में पाया

जाना इस बात का प्रमाण है कि प्रशासनिक कार्यों में इस भाषा का प्राचीन काल में प्रचलन था। इसके अतिरिक्त यह भाषा हमारे धर्मग्रंथों तथा शैक्षिणिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक साहित्य की प्राण रही है। हिन्दी साहित्य की अनेक कृतियों पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दी के आदिकाल को ही लिया जाए तो उससे पहले की भाषा अपभ्रंश पर भी संस्कृत का व्यापक प्रभाव रहा है। जहाँ तथा प्रशासनिक हिन्दी का प्रश्न है स्वतंत्रता से पूर्व अनेक रियासतों का कामकज अंग्रेजी में न होकर हिन्दी में चलता था। 1000 ई. के बाद मुसलमानों के आगमन पर अवश्य ही संस्कृत का प्रयोग समाप्त हो गया और प्रशासनिक भाषा पर अरबी-फारसी का प्रभाव पड़ा तथा मुसलमान शासकों के समय सरकार, तहसीलदार, वकील, चपरासी, सिपाही अमीन, जिला, दफ्तरी, खजांची, माल कमान आदि के समान शब्द सरकारी कामाकज में प्रचलित हो गये जो आज भी लोकप्रिय हैं और बराबर प्रयोग में आ रहे हैं।

यह परिवर्तन स्वाभाविक भी था क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों तथा ज्ञान और विज्ञान की विकसित अवस्था के साथ-साथ कोई भी जीवंत भाषा नए शब्दों और अर्थों को अपनाती है। इस प्रकार सरकारी कामकाज की हो या सामान्य जनता के प्रयोग की, किसी भी भाषा को नई दिशा मिलती रहती है। अंग्रेजी राज्य के दौरान शिक्षा, ज्ञान विज्ञान और राजनीति के क्षेत्र में परिवर्तन हुए। अत: नये आयाम और नई दिशाओं को वाणी देने के लिए भाषा भी अपने रूप को उसी के अनुकूल परिवर्तित करती गई है। जहां तक शब्दावली का प्रश्न है भाषा में संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी, फारसी और उर्दू के शब्द खपते चले गये। अंग्रेजी ने अपने शासन की सुविधा के लिए हिन्दी और संस्कृत के शब्दों को भी अपनाया। इसीलिए मुकदमा, गवाह, खारिज, पेशी तथा अर्जी जैसे शब्दों के साथ-साथ समन, जज, वारंट तथा एडवोकेट जैसे शब्द भी आम प्रचलन में आ गए।

हिन्दी का राष्ट्रव्यापी रूप

अंग्रेजों के विरुद्ध सुदूर उत्तर से दक्षिण तक पूर्व से पश्चिम तक जो राष्ट्रव्यापी आंदोलन चला उसका माध्यम अधिकांश रूप में हिन्दी होने के कारण यह भाषा राष्ट्रवयापी रूप में सामने आई। इस प्रकार हिन्दी एक अखिल भारतीय भाषा के रूप में इस देश को जोड़ती हुई धीरे-धीरे पारस्परिक कार्य व्यवहार की भाषा के रूप में विकसित होने लगी और उसे संस्कृत के पश्चात् इस देश के जनमानस को जोड़ने वाली भाषा का रूप मिला। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का

कथन है कि 'अपने देश से प्रेम रखने वाले जो भारतीय राष्ट्र को अखंड मानते हैं, अवश्य स्वीकार करेंगे कि हमारी राष्ट्रीय, व्यापारिक तथा सांस्कृतिक एकता के बाद हिन्दी को ईश्वर के आशीर्वाद स्वरूप मानता हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत की महत्त्वपूर्ण भूमिका के साथ साहित्यिक और अंतप्रांतीय व्यवहार में हिन्दी को जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ उसमें बदलती हुई परिस्थितियों और उर्दू तथा भारत की सभी भाषाओं का सहयोग सम्मिलित है। चूंकि संस्कृत की भूमिका भारत के संविधान में मान्यता प्राप्त अन्य सभी भाषाओं और हिन्दी के विकास तथा पोषण का मार्ग सुगम बनाने में उसका योगदान महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। अंतप्रांतीय विचार से हिन्दी की शब्दावली में संस्कृत अथवा तत्सम शब्दों को प्रधानता देना आवश्यक है। इसी आधार पर हिन्दी की शब्दावली का आवश्यक अंग अखिल भारतीय रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

मेरा मत तो यह है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा (जो नाम अब भारत की सभी मान्यता प्राप्त भाषाओं के लिए प्रयुक्त होता है) का स्थान इसलिए प्राप्त नहीं हुआ कि वह सभी भारतीय भाषाओं में श्रेष्ठ है वरन् इसलिए प्राप्त हुआ कि इस भाषा का देश में सबसे अधिक प्रचार और प्रसार है तथा इसे अधिकांश जनता समझती तथा बोलती है। हिन्दी प्रारंभ से भारत के सभी प्रांतों में बोली व समझी जाती थी और प्राय: सभी प्रांतों के अहिन्दी भाषी लेखकों ने इस भाषा में साहित्य सृजन भी किया है। इससे इस भाषा को संस्कृत की भांति अखिल भारतीय रूप मिला है। हिन्दी को उसका अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने में देश के कोने-कोने में फैले हुए मजदूर वर्ग, व्यापारी वर्ग, आजीविका व विभिन्न व्यवसाय वाले लोगों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

जब भारत स्वतंत्र हुआ तो इस बात की आवश्यकता पड़ी कि नवोदित राष्ट्र की गरिमा और आत्मसम्मान के अनुकूल हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अंगीकृत और विकसित किया जाए। अत: समाज की नई-नई आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में और भारतीय जन जीवन के चिंतन तथा भावनाओं और संवेदनाओं की अभिव्यंजना के माध्यम के रूप में अन्य भारतीय भाषाओं के सहयोग के साथ-साथ हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में चुना गया। भाषायी स्वाभिमान स्वतंत्र राष्ट्र के जीवन का एक अंश होता है। अत: स्वतंत्रता के पश्चात्

हिन्दी को राजकाज की भाषा बनाने के पीछे यह भावना थी कि संपर्क भाषा के रूप में विकसित होकर हिन्दी, ज्ञान विज्ञान, अध्ययन-अध्यापन और साहित्य की ही भाषा न रहे वरन् उसे प्राशसनिक भाषा का रूप भी दिया जए और सरकारी काम-काज बोलचाल तथा कार्य व्यवहार की भाषा बना दिया जाए। यह ठीक भी था क्योंकि कोमलकांत पदावली प्रशासनिक कार्यों के लिए प्रयोग में नहीं लाई जा सकती। जिस भाषा ने संत कबीर की साखियों को सजाया, सूरदास और तुलसीदास की कविता को संवारा और प्रसाद, पंत तथा महादेवी के गीतों को मधुर रूप दिया उसे संपर्क भाषा के रूप में विकसित करने तथा प्रशासन के क्षेत्र में जन-जन की भाषा बनाने के प्रयत्न किए गए। अत: साहित्यिक हिन्दी तथा बोलचाल की हिन्दी को न्यायालयों, विद्यालयों, कार्यशालाओं, प्रशासनिक संस्थाओं और सरकारी पत्र व्यवहार में अपनाए जाने के लिए नया रूप दिया जाने लगा। अत: यह प्रयास किया गया कि धीरे-धीरे सरकारी क्षेत्रों में ऐसा वातावरण बने जो हिन्दी को अपने दैनिक कार्य में अपनाने के लिए सहायक हो। इसके लिए वैधानिक व्यवस्था के साथ-साथ मानवीय और भौतिक साधन जुटाने का प्रयास किया गया और राजभाषा के रूप में हिन्दी को सरकारी कामकाज का माध्यम चुन लिया गया। भारत के संविधान निर्माताओं ने हिन्दी का महत्त्व सामझते हुए उसे राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में अंगीकार करने की व्यवस्था की। फलत: भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 में यह व्यवस्था की गई कि देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी यहां की राजभाषा होगी। संविधान के अनुच्छेद 351 में इसकें लिए जो निर्देश दिए गये हैं वे इस प्रकार हैं–

'हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि कर उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।'

प्रारंभ में यह व्यवस्था थी कि अंग्रेजी का प्रयोग सन् 1965 तक चलता रहे तथा बीच में हिन्दी को विकसित रूप दे दिया जाए। भाषा के प्रश्न पर सन् 1965 में खेर आयोग की स्थापना की गई और उस आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए सन् 1957 में पंत समिति बनाई गई। इस आयोग तथा

समिति दोनों ने जहां हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने की सिफारिश की वहीं अंग्रजी का प्रयोग सन् 1965 के बाद भी जारी रखने की सिफारिश की। इन परिस्थितियों को कार्य रूप देने के लिए 1963 में संसद द्वारा राजभाषा अधिनियम 1963 पास किया गया। इसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि संघ के जिन कार्यों के लिए 26 जनवरी, 1965 से पहले अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता था उनके लिए उस तारीख के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग किया जा सकता है। बाद में परिस्थितियां बदलीं और 1967 में राजभाषा (संशोधन) अधिनियम 1967 पास किया गया। इस प्रकार यह व्यवस्था हुई कि 'हिन्दी ही संघ की राजभाषा होगी, किंतु अंग्रेजी के इस्तेमाल की छूट तब तक बनी रहेगी, जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने वाले सभी राज्यों के विधानमंडल अंग्रेजी का प्रयोग समाप्त करने के लिए संकल्प न पारित करें और उनके संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद के दोनों सदन भी ऐसा ही न करें।' इस प्रकार कानून के विचार से सरकारी कागजपत्रों, लिखा-पढ़ी और दैनिक कार्यों में हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं को चलाने की व्यवस्था हुई। हाल ही में भारत सरकार द्वारा हिन्दी के संबंध में एक अधिसूचना जारी की गई है जिससे प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी के व्यापक प्रयोग की व्यवस्था की गई है।

हिन्दी में तकनीकि शब्दावली का विकास

हिन्दी को प्रशासनिक कार्यों में लाने के लिए सबसे पहले तकनीकी शब्दावली की आवश्यकता पड़ी। इस दिशा में केंद्रीय हिन्दी निदेशालय तथा वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग ने बड़ा काम किया। उनके प्रयास से विभिन्न विषयों की शब्दावली के संकलन तैयार किए गए और प्रशासनिक क्षेत्र में प्रयोग के लिए पारिभाषिक शब्द संग्रह बनाए गए। यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत की शब्द निर्माण सामर्थ्य की बराबरी कोई भाषा नहीं कर सकती। संस्कृत की लगभग 2000 धातुएं अनेक शब्दों के निर्माण में सहायक हैं। इसके साथ ही प्रत्यय और उपसर्ग लगाकर नए शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। यहां तक कहा गया है कि उपसर्ग, प्रत्यय और धातुओं की सहायता तथा शब्दों के क्रम परिवर्तन, संधि आदि से लगभग 85 करोड़ शब्द बनाए जा सकते हैं। परंतु देखना है कि अनेक शब्द केवल कोश की ही शोभा बनाने के लिए हैं या वे व्यवहारोपयोगी भी हैं। अत: अति उत्साह और केवल संस्कृत निष्ठ शब्दावली के प्रयोग का मोह छोड़ना व्यावहारिक दृष्टि से कहीं अधिक उपयोगी है। यही कारण

है कि आरंभ में संवैधानिक, विधि और प्रशासनिक क्षेत्र में शब्दावली से संबंधित समस्या को हल करने के लिए बनाए गए कुछ कोश महत्त्वपूर्ण होते हुए भी लोकप्रिय नहीं हो सके। इसका कारण यह है कि प्रशासनिक कार्य के क्षेत्र में ऐसी शब्दावली का स्वागत होता है, जो व्यावहारिक रूप से सहज, स्वाभाविक और समझ में आ सकने योग्य हो। वास्तव में जिस भाषा का प्रयोग सरकारी कार्यों में किया जाता है और जो विभिन्न विभागों अथवा दैनिक सरकारी पत्र व्यवहार के लिए अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान के प्रयोग में आती है। उस भाषा का स्वरूप न तो पूरी तरह से सामान्य बोलचाल की भाषा से मेल खा सकता है और न पूरी तरह स साहित्यिक भाषा से। अतः उसका स्वरूप कुछ अलग ही होता है और उसकी शब्दावली भी उसी के अनुरूप होना अनिवार्य है।

जहां तक हिन्दी की अपनी शब्द संपदा का प्रश्न है हमें अनेक शब्दकोश मिलते हैं। इस बीच नए-नए शब्द इन कोशों में और भी जुड़ गए हैं। यहां तक कि हिन्दी शब्दसागर के 11 भागों में लगभग 2,11,50,000 शब्द उपलब्ध हैं। प्रश्न हिन्दी की संपदा का उतना नहीं है जितना कि अभिव्यंजना शक्ति और समय की संपूर्ण परिस्थितियों के अनुरूप ज्ञान विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से संबंधित पारिभाषिक और प्राविधिक अर्थ रूपों को समझा सकने योग्य होने की उसकी सामर्थ्य का है। अतः हिन्दी के विकास की यह नई दिशा अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है और भाषा को नए-नए शब्द और अर्थ मिले हैं। अब धीरे-धीरे न्यायालयों में, कायालयों में, समाचार पत्रों में, कार्यशालाओं में और जनता तथा सरकार के पारस्परकि कार्य व्यवहार में एक नए रूप में उभर कर सामने आ रही है। इस कार्य में विभिन्न राज्यों ने शब्दावली के निर्माण का कार्य किया है और उसके द्वारा बनाए गए अनेक कोश, शब्द संग्रह अथवा शब्द संकलन निरंतर प्रयोग में आ रहे हैं। इनमें उत्तर-प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश तथा दिल्ली प्रशासन आदि सम्मिलित हैं।

विधि शब्दावली

जहां तक कि विधि शब्दावली का संबंध है विधि मंत्रालय के अधीन राजभाषा विधायी आयोग द्वारा इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है। ऐसी शब्दावली का निर्माण हुआ है, जो अनेक अधिनियमों के हिन्दी रूपों में प्रयोग में लाया जाता गया है। यह आवश्यक है कि कानून के क्षेत्र में जनता को अपनी

भाषा के प्रयोग की छूट होनी चाहिए। अब तक न्यायालयों में हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी और अन्य क्षेत्रों में वहां की क्षेत्रीय भाषा का स्थान नहीं मिलता तब तक यह समस्या उलझी ही रहेगी। यह कैसी विडंबना है कि न्यायालय में जिस समय निर्णय सुनाया जाता है उस समय अंग्रेजी न जानने वाले अपराधी या पक्ष को यह मालूम भी नहीं हो पाता कि उसे क्या दंड दिया जा रहा है अथवा उसके मामले में क्या किया गया। यहां हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कानून के क्षेत्र में शब्दों का विशेष महत्त्व है। वहां एक शब्द के लिए निर्वाचन द्वारा एक ही निर्धारित अर्थ होता है। जैसे–

नियम (रूल)	अभियोग (चार्ज)
उपनियम (बाइ लाज)	अभियोजन (प्रोसीक्यूशन)
विनिमय (रेग्यूलेशन)	अभियोक्ता (प्रोसीक्यूटर)
अधिनियम(एक्ट)	अभियुक्त (क्रिमिनल)
नियमावली (रूल्स एंड रेग्यूलेशन)	द्वेष (कनविक्शन)
विधेयक (बिल)	द्वेष मुक्त (एक्टिवेटेड)
धारा (सेक्शन)	सिद्ध द्वेष (कंविक्ट)
उपधारा (सबसेक्शन)	द्वेषी (एक्यूज्ड)
खंड (क्लौज)	वादी (प्लैंटिफ)

उपखंड (सब क्लौज) प्रतिवादी (डिफैडैंट)

कानून की भाषा में वाक्य की यथावतता भी आवश्यक है। इस क्षेत्र में यदि हम भाषा को सरल और सुबोध बनाने के लिए प्रयास द्वारा शब्द परिवर्तन करेंगे तो अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। अत: कानून की शब्दावली में हमें कभी-कभी कठिन शब्दों का स्वागत करना पड़ेगा जो प्रयोग द्वारा ही सरल लग सकेंगे। संस्कृत शब्दावली इस दिशा में सहायक हुई। सरलता के विचारा से इस समय आज प्रचलन में आए शब्द जैसे समन, अर्जी, हलफनामा, बयान, बहस, वारंट, जिरह, वकील, अपील, आदि शब्दों को प्रयोग में लाते रहने की परंपरा बनी हुई है। कानून के क्षेत्र मं प्रत्येक शब्द का अपना निश्चित और स्पष्ट अर्थ होने के कारण कानूनी शब्दावली के निर्माण में कानूनी पहलू का विचार भी महत्त्वपूर्ण है। इस दिशा में हिन्दी भाषी राज्य के विधि व भाषा मंत्रियों के जयपुर और भोपाल के सम्मेलनों में नीति संबंधी दिशा संकेत दिया गया है और कानूनी शब्दावली के अनेक मानक शब्दकोश तैयार किए गए हैं।

प्रशासनिक शब्दावली तथा संस्कृत

सरकारी कामकाज की शब्दावली में कुछ तो पदनाम होते हैं और कुछ पत्र व्यवहार के लिए प्रयोग में आने वाले विशिष्ट शब्द तथा वाक्यांश होते हैं। इसके अतिरिक्त नियमों, विनियमों, अधिसूचनाओं, संहिताओं और विभिन्न विभागों से संबंधित नियमों की शब्दावली होती है। आरंभिक स्थिति में उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर अनेक शब्द बनाए गए। उदाहरण के लिए, सचिव (सेक्रेटरी) शब्द को लें। इसके साथ आरंभ में आने वाले पर्याप्त शब्द आसानी के साथ बन गए। उपसचिव, अवर सचिव, सह सचिव, संयुक्त सचिव, निजी सचिव, वैयक्तिक सचिव, महासचिव, संसदीय सचिव, मंत्रि परिषद सचिव आदि शामिल हैं। इसी भांति सचिवालय (सेक्रेटेरियेट), सचिवालयीय (सेक्रेटेरियल) आदि शब्द भी गिने जा सकते हैं। ऐसे शब्दों के निर्माण में संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है।

इस पद्धति को अपनाने पर विभिन्न प्रकार की संकल्पनाओं को व्यक्त करने के लिए थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ हमारे पास एक शब्द समूह उपलब्ध हो जाता है। जैसे प्रारूप (ड्राफ्ट) शब्द की सहायता से प्रारूपण, प्रारूपकार, प्रारूपित आदि शब्द बनाए जा सकते हैं। परंतु इसके उर्दू समानार्थी 'मसौदा' शब्द को इस प्रकार के रूपों में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। यही नियम हिंदी के पत्र, परिपत्र (सर्कुलर) प्रपत्र (फार्म), पत्रावली (फाइल), पत्राचार अथवा पत्रव्यवहार पर भी लागू होता है, जो कदाचित चिट्ठी अथवा खत शब्द से पूरा नहीं हो सकता। विभिन्न प्रकार की संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने के सिलसिले में अधिकार शब्द को भी लिया जा सकता है जिसको यदि अधिकृत बना दिया जाए तो अंग्रजी के ऑथराइज्ड शब्द का अर्थ बन जाता है। हमें औथेंटिक के लिए शब्द की आवश्यकता होती है तो इसी की सहायता से प्राधिकृत शब्द बना लिया जाता है। इसी संदर्भ में ऑफिसर के लिए अधिकारी शब्द का प्रयोग भी अफसर के स्थान पर अधिक ऊपरयोगी लगता है। यही बात कानून के क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली शब्दावली पर भी निर्भर है। उदाहरण के लिए, विधि शब्द को लीजिए। इसका प्रयोग कानून के बदले किया जाता है। हम इसकी सहायता से उपविधि (बाइ-लॉ), विधायक (लेजिस्लेटर), विधायिका (लेजिस्लेचर), विधिक (लीगल), विधिसम्मत (इन कंफर्मिटी विद लॉ), विधिवेत्ता (कानून का जानकार) विधिविशेषज्ञ (स्पेशलिस्ट इन लॉ) आदि शब्द बना सकते हैं यह स्पष्ट है कि केवल कानून शब्द से हम इतने अधिक शब्द

नहीं बना सकेंगे। इसी प्रकार विधान, वैधानिक, संविधान, वैधानिकता और संवैधानिक आदि शब्दों का उदाहरण दिया जा सकता है।

प्रशासनिक क्षेत्र में कुछ शब्द ऐसे भी प्रयोग में आते हैं। जिनका अर्थ सामान्य तथा एक सा लगता है और साधारण बोलचाल में ऐसे शब्दों के लिए हम एक ही शब्द से काम चला सकते हैं। परंतु जब कार्यालय की औपचारिकता का ध्यान रखते हुए यदि सरकारी प्रयोजनों के लिए उन शब्दों का प्रयोग किया जाए तो यह आवश्यक हो जाता है कि उनके लिए अलग-अलग शब्द प्रयोग में लाएं उदाहरण के लिए, आदेश, निदेश, अनुदेश, अध्यादेश तथा समादेश शब्दों को लिया जा सकता है, जो क्रमशः अंग्रेजी के आर्डर, डायरेक्शन इंस्ट्रक्शन ऑर्डिनेंस और कमांड के लिए प्रयोग में आते हैं। इसी तरह यदि हम कार्यालयी बातचीत में कहे कि आप क्या रिमार्क देंगे या आपके कमेंट्स क्या हैं अथवा आपका ओबजरवेशन क्या है या आप की ओपिनियन क्या है अथवा आप के व्यूज क्या है तो ऐसा लगता है कि हम किसी विषय पर किसी के विचार जानना चाहते हैं और साधारणतया आपकी क्या राय है कहने से काम चल सकता है। परंतु व्यावहारिक प्रयोग में जहाँ कभी-कभी ये शब्द साथ-साथ प्रयोग में आ जाएँ वहाँ कठिनाई आती है और नए-नए शब्दों की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप रिमार्क के लिए टिप्पणी, कमेंट्स के लिए राय, ऑबजर्वेशन के लिए मंतव्य, ओपिनियन के लिए मत और व्यूज के लिए विचार शब्द प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है, जबकि सामान्य बोलचाल में हम इन सब के लिए सलाह शब्द से ही काम चला सकते हैं।

सरल भाषा तथा लोक-प्रचलित प्रयोगों का महत्त्व

प्रशासन के क्षेत्र में हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक है कि भाषा सरल और समझ में आ सकने योग्य हो। इसके लिए प्रचलित प्रयोगों का भी अपना-अलग महत्त्व है। इसीलिए प्रशासनिक भाषा में शब्द चयन में बड़ी सतर्कता आवश्यक है, जिससे मूल सामग्री का अर्थ परिवर्तित न हो। शब्दावली के क्षेत्र में एक बात यह भी है कि किसी विशेष क्षेत्र में कार्य करने वालों को उस क्षेत्र-विशेष की शब्दावली की ही अधिक आवश्यकता पड़ती है जैसे शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग में आने वाली शब्दावली की चिकित्सा के क्षेत्र में या न्यायालयों में काम करने वाले कर्मचारियों को उतना प्रयोग नहीं करना पड़ता है इसके लिए उन्हें अपने दैनिक कार्य से संबंधित बुनियादी शब्दावली के ज्ञानार्जन की ही अधिक आवश्यकता रहती हैं।

हिन्दी में मशीन, डायरी, बस, कार, मोटर, बैंक, चैक बैक-ड्राफ्ट, मनी आर्डर, रेडियो, सिनेमा, गैस, कार्ड, मैनेजर, कमीशन, बिल आदि शब्द बहुत ही लोकप्रिय रूप में चल रहे हैं। इसी तरह सलाहकार बोर्ड, जिला बोर्ड, जांच कमेटी, वार्ड अधिकारी, जनाना वार्ड, सेमिनार कक्ष जैसे शब्द सामान्य बोलचाल के अतिरिक्त प्रशासनिक कार्यों में भी पूरी तरह से अपना लिए गये हैं। यहां तक कि 'कल' के बदले 'मशीन' और 'सुई लगाना' के बदले 'इंजेक्शन' अधिक आसान प्रतीत होने लगा है। इतना ही नहीं अंग्रेजी के एटम शब्द से एटमी, मैनेजर से मैनेजरी, इंजीनियरिंग से इंजीनियरी और डॉक्टर से डॉक्टरी आदि शब्द हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल ढाल लिए गए हैं। इसीलिए अभियांत्रिकी या चिकित्सकीय जैसे प्रयोग अधिक लोकप्रिय नहीं रहे हैं।

उपर्युक्त स्थिति से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत की शब्दावली में नए शब्दों का निर्माण भले ही सुगम हो जाता हो परंतु ऐसे शब्द जो जनता की जबान पर चढ़ चुके हैं और आम बोलचाल अथवा सामान्य कार्यव्यवहार में निरंतर प्रयोग में आ रहे हैं, हिन्दी को अधिक जीवंत और लोकप्रिय बनाने में सहायक हैं। शब्दकोश में जितने शब्द दिए जाते हैं, सामान्य कार्यव्यवहार में प्रयोग के लिए अर्थ की स्पष्टता और विभिन्न संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति के लिए शब्द चयन में पूरी सतर्कता अपेक्षित होती है केवल कोश के सहारे शब्दों का मनमाना या अंधाधुंध प्रयोग भाषा की एकरूपता की दृष्टि से तो ठीक नहीं ही है वरन् इससे अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। प्रशासन का कार्य एक विशेष कार्य-प्रणाली पर आधारित होता है। यही कारण है कि इस कार्य की भाषा भी तकनीकी प्रकार की होती है जिसका स्वरूप साहित्यिक भाषा तथा साधारण भाषा की बोलचाल में प्रायः अलग होता है। इस भाषा का संबंध केवल सरकारी कार्यालयों से नहीं वरन् सामान्य से भी होता है। अतः जितना अधिक सरल रूप इसे दिया जा सके उतनी ही अधिक सुविधा जन सामान्य को मिल सकेगी। यही कारण है कि सरकारी भाषा अर्थात् प्रशासनिक हिन्दी के संबंध में सरल या कठिन भाषा की बात उठाई जाती रहती है। कठिन शब्दावली के प्रयोग से भाषा जितनी बोझिल होगी उतनी वह जन साधारण से दूर हो जाएगी। परंतु अखिल भारतीय रूप को ध्यान में रखा जाए तो वह समस्या भी सामने आती है कि किस शब्द को सरल कहा जाए और किसे कठिन। उर्दू जानने वालों के लिए मंजूरी, दखल, पेश करना आदि सरल हैं तो संस्कृत अथवा बंगला आदि जानने वालों के लिए स्वीकृति, हस्तक्षेप तथा प्रस्तुत करना आदि सरल हो सकते हैं। वास्तव

में भाषा का संबंध विषय से है। अत: भारत जैसे देश में जहां अनेक प्रकार की क्षेत्रीय भाषाएं हैं, सरल और कठिन भाषा की समस्या और भी उलझ जाती है। निरंतर प्रयोग से शब्द सरल लगने लगते हैं और भाषा भी उन्हें आत्मसात कर लेती है। आरंभ में राष्ट्रपति, संसद, विधेयक आदि शब्द कठिन लगते थे परंतु अब अभ्यास और प्रयोग के कारण ये शब्द बहुत लोकप्रिय हो गये हैं। यही कारण है कि गढ़े हुए शब्दों से भाषा को बोझिल बनाने की अपेक्षा भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओं में से प्रचलित शब्द बदल दिए जाएं तो धीरे-धीरे से शब्द हिन्दी में खप जाएंगे और इससे भाषायी एकता भी विकसित होगी। 'सबडिविजनल मजिस्ट्रेट' के लिए 'खंडमंडलाधीश' तथा 'एक्जीक्यूटिव इंजीनियर डिविजन-1' के लिए अधिशासी अभियंता प्रथम प्रखंड जैसे प्रयोगों से जितना बचा जा सके उतना अच्छा है।

हिन्दी अनुवाद व मूल प्रारूपण की समस्या

सरकारी कामकाज कई वर्षों से अंग्रेजी में किया जा रहा है। अत: माध्यम परिवर्तन के लिए अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है। यह कहा गया है कि अनुवाद यदि सुंदर है तो वह ईमानदार नहीं हो सकता और ईमानदार है तो वह सुंदर नहीं हो सकता है। इस सुंदरता का आशय उस भाषा के लालित्य तथा उसकी प्रकृति के अनुकूल होने से है जिस भाषा में अनुवाद किया गया है। इसके लिए प्रारूप तथा पत्र की रूपरेखा मूल से हिन्दी अथवा संबंधित क्षेत्रीय भाषा में तैयार करना अधिक उचित होगा।

टिकट, स्टेशन, प्लेटफार्म जैसे शब्दों के लिए यात्रा पत्र, गाड़ी-विश्राम-स्थल, यात्री विश्राम स्थल जैसे शब्दों का प्रयोग उचित नहीं है। कभी-कभी शब्द गढ़ने का मोह हमें मक्षिकास्थाने मक्षिका की स्थिति में ला देता है। इससे अनुवाद में अस्वाभाविकता आ जाती है और वह अशुद्ध भी हो सकता है। जैसे 'वैल इक्विप्ड हॉस्पीटल' का हिन्दी अनुवाद भूल से 'कुओं से सज्जित अस्पताल' किया जा सकता है, जो अशुद्ध है। अंग्रेजी में प्रचलित परिपाटी के अनुसार 'द अंडर साइंड इज डाइरेक्टिड टू से' का हिन्दी अनुवाद 'निम्नहस्ताक्षरकर्ता या अधोहस्ताक्षरी को यह कहने का निदेश हुआ है' किया जाता है। यह हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। इसी तरह 'कोल्ड ब्लडैड मर्डर' के लिये नृशंस हत्या न लिखकर 'शीत रुधिर हत्या' लिखना तथा 'रेफ्रीजरेटर वाटर' के लिए सरल व स्वाभाविक रूप में 'मशीन का ठंडा पानी' न लिखकर 'प्रशीतनकृत जल' लिखना कहां तक ठीक

होगा, इसका स्वयं ही अनुमान लगाया जा सकता है। किंतु प्रचलन में इस तरह के कुछ विशेष शब्द हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल भी जान पड़ते हैं और उनका प्रयोग विशुद्ध रूप से शब्द के स्थान पर शब्द का अनुवाद होते हुए भी अटपटा नहीं लगता। जैसे-लालफीताशाही (रेडटेपिज्म), 'वेत पत्र (व्हाईट पेपर), रजत जयंती (सिल्वर जुबली), ललित कला (फाइन आर्ट), शीर्षक (हैडिंग) आदि। अंग्रेजी के 'इंटर' शब्द के लिए हिन्दी ने संस्कृत 'अंतर' शब्द अपना लिया है और इसके साथ अन्य शब्द जोड़कर हिन्दी के अनेक शब्द बना लिए गए हैं, जो बराबर प्रयोग में आ रहे हैं। जैसे अंतर-विद्यालीय, अंतर-राजयीय, अंतर्राष्ट्रीय, अंतर्देशीय, अंतर-प्रांतीय, अंतर-विभागीय आदि सभी इसी प्रकार रिंग सर्विस के लिए मुद्रिका सेवा अथवा तीव्र मुद्रिका जैस कठिन लगने वाले शब्द लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं। इसी प्रकार मेघ-संदेश तथा आर्यभट जैसे प्रयोग भी उल्लेखनीय हैं।

आज हमें हिन्दी को ऐसा स्वरूप प्रदान करना है, जो हमारे देश की आशाओं और आकांक्षाओं के अनुकूल तो हो ही अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी सुविधाजनक हो। इसके लिए हमें उदार दृष्टिकोण अपनाना होगा। संस्कृत का महत्त्व रहा है और है। हिन्दी के विकास में उसके योगदान की बात भी महत्त्वपूर्ण है। परंतु बदलती हुई परिस्थितियों और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्रों में असीम विकास की संभावनाओं को देखते हुए हमें हिन्दी को एक ऐसी भाषा के रूप में विकसित करना है, जो आज के युग में अभिव्यक्ति का सक्षम माध्यम हो। अत: केवल संस्कृतनिष्ठ भाषा की बात पर बल न देते हुए आज हमें भारत की सभी भाषाओं के लिए और विशेषकर प्रशासनिक क्षेत्र में राजभाषा तथा निजी क्षेत्र में संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी के पोषण के लिए अपना कर्तव्य समझना चाहिए। हिन्दी इस देश की भाषा है। इसका संबंध इस धरती, इस मिट्टी और यहां के जनमानस से है परंतु सभी क्षेत्रीय भाषाएं यहां की सभ्यता और संस्कृति की पोषक हैं। क्षेत्रीय भाषाओं का विकास प्रचार व प्रसार संपर्क भाषा हिन्दी के लिए संजीवनी शक्ति है। यदि सभी भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि अपना ली जाए तो भाषायी एकता को बल मिलेगा ओर अंग्रेजी तो केवल सुविधा की भाषा कही जा सकती है। अत: इस देश में प्रत्येक नागरिक, कर्मचारी तथा अधिकारी का यह राष्ट्रीय कर्तव्य है कि वह अपने दैनिक कार्य व्यवहार में इस देश की राजभाषा हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में प्रोत्साहित करे तथा संस्कृत के परिष्कृत, सारगर्भित एवं सहज शब्दों से इस भाषा को वह रूप दे जिससे भारतवर्ष के सभी प्रांतों में सहजगम्य सूत्र भाषा का विकास हो सके।

इस भाषायी एकता को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि भाषा की क्षेत्रीय एवं आंचलिक भाषाओं के शब्दों को भी राजभाषा की तकनीकि शब्दावली में यथोचित स्थान दिया जाए। देश की विभिन्न प्रांतों की राज्य सरकारें अर्न्तदेशीय शब्दों को प्रशासनिक दृष्टि से लोकप्रिय बनाने में विशेष सहायक हो सकती हैं। नागपुर और मॉरीशस में आयोजित क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया है कि हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित किया जाए, जिससे इसको विश्व भाषा का स्वरूप प्राप्त हो सके। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम भारत के प्रत्येक राज्य में वहां की क्षेत्रीय भाषा को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करें और राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को उसका अपेक्षित स्थान दिलाएं। आशा है तीसरे विश्व हिन्दी सम्मेलन से इस दिशा में और अधिक सफलता मिलेगी।

प्रशासनिक (सरकारी) पत्राचार

केंद्रीय या प्रांतीय सरकारें कार्य-संचालन की सुविधा के लिए अनेक कार्यालयों की व्यवस्था करती हैं। ये कार्यालय देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले रहते हैं। उनका सम्बन्ध पत्रों द्वारा स्थापित होता है। सरकारी कार्यालयों में सबसे अधिक प्रयोग पत्राचार से ही होता है। पत्र सरकारी कार्यालयों में उनकी कार्य-पद्धति एवं सम्प्रेषण की रीढ़ की हड्डी होती है। 'जब एक सरकार दूसरी राज्य सरकार को अर्थात् भारत सरकार राज्य सरकार को, एक राज्य सरकार दूसरी राज्य सरकार को, अपने से सम्बन्ध या अपने अधीनस्थ कार्यालयों एवं विभागों, सरकारी संगठनों, संस्थाओं, बैंकों, कर्मचारी संघों, तथा सामान्य जनता विभिन्न विषयों पर पत्र लिखती अथवा उत्तर देती हैं तब उन्हें सरकारी या प्रशासकीय पत्र कहते हैं। सरकार द्वारा विदेशी सरकारों, उनके राजदूतावासों, स्वदेश स्थित कार्यालयों तथा अन्तर्राष्टीय संगठनों को लेखे गये पत्र भी इसी वर्ग में आते हैं। पत्र के कच्चे रूप को आलेखन या मसौदा तैयार करना कहा जाता है। जिसे कार्यालयीन सहायक एवं वरिष्ठ लिपिक तैयार करते हैं। प्रारूप को फिर से पढ़कर अपने उच्च अधिकारी के पास अनुमोदन के लिए भेजा जाता है। अधिकारी संशोधित कर टंकित या साइक्लोस्टाइल कर कार्यालय को प्रेषित करते हैं। तद्नुसार पत्राचार के अलग-अलग रूप निश्चित किए गये हैं। कार्यालयों में कभी साधारण पत्र, तत्काल, अर्द्ध-सरकारी, तार देना होता है। यही नहीं

कार्यालय-ज्ञापन द्वारा सूचना देने, अनौपचारिक टिप्पणी मंत्रालयों में छुट्टी के घोषणा, प्रेस नोट प्रसारित अत: कार्य, महत्त्व और अवसर की आवश्यकतानुसार विभिन्न रूपों के पत्रों का प्रयोग किया जाता है।

पत्राचार से आप क्या समझते हैं।

पत्राचार मुनुष्य की समाजशीलता का प्रमाण माना जाता है। इच्छाओं, आवश्यकताओं के साथ भावों और विचारों के परस्पर आदान-प्रदान के माध्यम से सामाजिक रिश्तों के निर्माण और निर्वहन में पत्राचार में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। निजी-व्यवहार और व्यावसायिक तथा प्रशासकीय कार्यों के लिए पत्राचार आवश्यक ही नहीं, एक अनिवार्य माध्यम रहा है। केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में प्रयुक्त पत्रों की रचना-प्रक्रिया, शैली तथा भाषा की अपनी विशिष्ट परम्परा व पद्धति होती है। सामान्यत: सरकारी पत्र विशिष्ट ढ़र्रे पर चलते हैं, उनमें न तो स्वतन्त्र विचारों, भावों का स्थान होता है, न ही स्वतन्त्र शैली का, परन्तु युग परिवर्तन के साथ जिस प्रकार शासन-प्रणाली बदलती है, उसी प्रकार उसकी कार्य-पद्धति में भी बदलाव आना जरूरी है। अत: प्रशासनीक पत्र लिखने के कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ है–

(1) सरलता–आदर्श पत्र-लेखन की एक प्रमुख विशेषता उसकी सरलता होती है। दुर्बोध पत्र प्रेषक के समझ में उलझने पैदा करता है। अत: पत्र द्वारा कही जाने वाली बातों एवं तथ्यों को सीधे ढ़ग से और स्पष्ट शब्दों में कहा जाना चाहिए उनमें पांडित्य-प्रदर्शन करना मूर्खता हो सकता है।

(2) स्पष्टता–पत्र-लेखन का दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, उसकी स्पष्टता पत्र में स्पष्टता लाने के लिए लेखन का विशेष शैली अपनानी जानी चाहिए। पत्र में लम्बे वाक्य-विन्यास तथा अत्यन्त कठिन शब्दों का कभी भी उपयोग नहीं करना चाहिए, वरना पत्र पढ़ते समय पाठक को शब्दावली या शब्दकोश सामने रखना पड़ सकता है, जो अमान्य, हास्यास्पद होगा। विद्वता प्रर्दशन के लिए जीवन एवं साहित्य में अनेक क्षेत्र खुले पड़े है। अत: पत्र में प्रचलित शब्दों और छोटे-छोटे वाक्यों संजोना चाहिए।

(3) संक्षिप्तता–कोई भी कार्यालयीन पत्र संक्षिप्त होना बहुत जरूरी है। संक्षिप्तता पत्र की प्रभावोत्पादकता करती है। किसी भी पत्र में निबन्ध का स्वरूप नहीं होना चाहिए वरना मूल अभीष्ट बातों का संम्प्रेषण छूटकर अन्य बातों का ही प्रक्षेपण अधिक मात्रा में हो जायेगा संक्षिप्तता से प्रेषक तथा प्रेषिती दोनों को

ही सुविधा होती हे। तथा संक्षिप्त पत्र में गलतियाँ अपेक्षाकृत कम होकर कथन के प्रभाव महत्ता में वृद्धि करती है।

(4) शिष्टता–कार्यालयीन पत्र ही नहीं, अपितु सभी प्रकार के पत्र-लेखन की भाषा शिष्ट तथा विनम्र होनी चाहिए। पत्र अगर नकारसूचक भी है, अर्थात् पत्र द्वारा किसी बात को नकारात्मक भी कहना हो, तो उसे विनम्रतापूर्वक ही कहा जाना चाहिए ताकि पत्र पाने वाले के मन को चोट न लगने पाये। जनता तथा कर्मचारियों की माँगों एवं शिकायतों आदि का तुरन्त और उचित ध्यान देकर शीध्र निर्णय की सूचना तत्काल पत्र सम्बन्धियों को दी जानी चाहिए। इन बातों से जनता के मन में संतोष एवं सम्मान की भावना जाग्रत होगी।

(5) प्रभावोत्पादकता–शासकीय पत्र में भाषा, पद-विन्यास, वाक्य-विन्यास, विचार तथा भावों की ऐसी सुगठित अन्विती होनी चाहिए जिससे पत्र का प्रभाव प्रेषिती के मन पर पड़ सके। पत्र-लेखन में प्रभावोत्पादकता लाने के लिए पत्र-लेखक की शासकीय कार्यप्रणाली, सरकारी नीति तथा सम्बन्धित विषय की गहरी समझ होनी चाहिए। जहाँ पर्यायवाची शब्द नहीं मिलते, वहाँ उटपटाँग हिन्दी शब्दों के बदले अंग्रेजी के ही प्रचलित शब्दों को देवनागरी लिपि में लिख देना उचित होगा।

(6) वैशिष्ट्यपूर्ण भाषा-शैली–पत्राचार की भाषा और सहित्यिक भाषा में पर्याप्त अन्तर होता है। सरकारी पत्रों में साहित्य से सम्बन्धित मुहावरों, कहावतों, तथा शेरो-शायरी आदि कदापि उपयोग नहीं किया जाता। सरकारी पत्रों की भाषा प्राय: निश्चित शब्दावली, वाक्य-विन्यास तथा विषय के अनुरूप शब्दों, वाक्यांशों प्रयोग किया जाता है। पत्र की भाषा में अप्रचलित और दुर्बोध शब्दों का कभी प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए वरना पत्र की भाषा उबाउ तथा अरुचिपूर्ण हो जायेगी। इस प्रकार, सरकारी पत्र की भाषा में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

टिप्पण लेखन

टिप्पण–प्रशासनिक पत्राचार में टिप्पण तथा आलेखन का विशेष महत्त्व होता है। कार्यालय में आएँ पत्र पर अथवा कार्यालय की स्वतंत्र आवश्यकताओं की संपूर्ति के लिए टिप्पणी तैयार की जाती है। टिप्पणी का अर्थ है-पत्र अथवा पत्र-संदर्भ के बारे में आवश्यक जानकारी तथा टिप्पणीकार का कार्यालय के विधिविधान के अन्तर्गत उस पर अपना सुझाव देना। इन्हीं सुझावों के आधार पर

आलेखनकार पत्रोत्तर का प्रारूप तैयार करता है। अर्थात्, सरकारी कार्यप्रणाली में विचाराधीन कागज या मामले के बारे में उनके निपटान हेतु सुझाव या निर्णय देने के परिणामस्वरूप जो अभ्युक्तिया फाइल पर लिखी जाती है, उन्हें टिप्पण या टिप्पणी कहते हैं। टिप्पणी में सन्दर्भ के रूप में इससे पहले पत्रों का सार, निर्णय आदि हेतु प्रश्न तथा विवरणादि सब कुछ अंकित किया जाता है। वास्तव में सभी प्रकार की टिप्पणियाँ सम्बन्धित कर्मचारी-अधिकारियों द्वारा विचाराधीन मामले के कागज पर लिखी जाती है। कार्यालयीन आवश्यकता के अनुसार अत्याधिक महत्त्व प्राप्त मामलों में अनुभाग अधिकारी आदि के स्तर से टिप्पणी आरम्भ होती है अन्यथा मामले के स्वरूप के अनुसार परम्परागत रूप से टिप्पणी लिपिक अथवा सहायक के स्तर में शुरू की जाती है। मंत्री, प्रधानमंत्री अथवा राष्ट्रपति आदि के द्वारा लिखी गई विशेष टिप्पणियाँ 'मिनट' कही जाती है। टिप्पण को बनाते समय कुछ उद्देश्य को ध्यान में रखना पड़ता है जैसे, सभी तथ्यों को स्पष्ट रूप में तथा संक्षेप में अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करना और अगर किसी मामले में दृष्टांत अथवा विशिष्ट निर्णय उपलब्ध हो तो उनकी ओर संकेत करना। दूसरा-वांछनीय विषय अथवा पत्र-व्यवहार पर अपने विचारों को स्पष्ट करना। तीसरा-यह स्पष्ट करना कि 'आवती' के अंतिम निर्वाण के लिए क्या कार्यवाही की जानी चाहिए। इससे अधिकारी को निर्णय करने में सहायता मिल जाती है।

टिप्पणी के प्रकार

प्रकार—कार्यालयों में टिप्पणी का उपयोग अनेक स्तरों पर किया जाता है। मामलों का स्वरूप, अधिकार की स्थिति तथा कार्यालय की आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार की टिप्पणियाँ लिखी जाती हैं, जिनमें प्रमुख हैं-नेमी टिप्पण, सामान्य टिप्पण, अनुभागीय टिप्पण, सम्पूर्ण टिप्पण तथा अनौपचारिक टिप्पण आदि।

(1) प्रशासनिक(नेमी) टिप्पण—कार्यालयीन कामकाज के एक भाग के रूप में नेमी टिप्पण लिखे जाते हैं। ये टिप्पण रोजमर्रा के कार्य का एक अंग होने के कारण संक्षिप्त रूप में छोटी-छोटी बातों के लिए लिखे जाते हैं। इनका महत्त्व केवल कार्यालयीन अभिलेख और औपचारिकता के निर्वाह तक ही सीमित होता है।

(2) सामान्य टिप्पण—सरकारी कार्यालयों में जो पत्रध्मामले पहली बार प्राप्त होते हैं, उन्हें प्रस्तुत करने की एक प्रक्रिया के रूप में जो टिप्पण लिखे जाते

हैं, उन्हें सामान्य टिप्पण कहते हैं। ऐसे टिप्पणों में पत्र का पूर्ववर्ती सन्दर्भ अथवा प्रसंग का उल्लेख नहीं होगा।

(3) अनुभागीय टिप्पण–इसे विभागीय टिप्पण भी कहा जाता है। कुछ मामलों पर सरकारी आवश्यकता के अनुसार विभिन्न विभागों अथवा अनुभावों से अनुदेश प्राप्त करना जरूरी होता है। ऐसी स्थिति में मामलों के स्वरूप के अनुसार टिप्पण कर्ताओं को प्रत्येक मामले पर स्वतन्त्र टिप्पण लिखना आवश्यक होता है और वे ऐसे स्वतन्त्र टिप्पणों पर अलग से अनुदेश प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के टिप्पणों को विभागीय अथवा अनुभागीय टिप्पण कहते हैं।

(4) सम्पूर्ण टिप्पण–विस्तृत टिप्पणों को सम्पूर्ण टिप्पण कहा जाता है। कार्यालयों में बहुत बार मामलों की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए उनके पूरे इतिवृत, तर्क-वितर्क, प्रसंग आदि को सम्रग रूप से फाइल में रखना होता है ताकि उसके आधार पर उच्चाधिकारी उचित निर्णय लेकर आदेश जारी कर सके। इस प्रक्रिया में टिप्पण में सम्पूर्ण इतिवृति के साथ-साथ पूर्व संदर्भ, पूर्ववर्ती फाइलों के संदर्भ, पुराने फैसले आदि भी देने होते हैं। इस प्रकार मामले के बारे में पूरे अध्ययन के साथ विश्लेषणात्मक पद्धति से जो टिप्पण लिखा जाता है उसे सम्पूर्ण टिप्पण कहते हैं।

(5) सूक्ष्म टिप्पण–सूक्ष्म टिप्पण अत्यंत संक्षिप्त रूप में लिखे जाते हैं। कुछ पत्रों पर अनुभाग अधिकारी अथवा सम्बन्धित अधिकारी पत्र के हाशिये पर बाईं ओर निर्देश देता है, जो सामान्यतया संक्षिप्त वाक्यों के रूप में होता है उसे ही सूक्ष्म टिप्पण कहा जाता है। सूक्ष्म टिप्पण में सामान्यत: 'सम्मति हेतु', 'स्वीकृति के लिए', 'अवलोनाथ' आदि वाक्य लिखे जाते हैं। बाद में सम्बन्धित फाइल वरिष्ठ अधिकारी के पास आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज देने पर वह अधिकारी भी सूक्ष्म टिप्पण के रूप में 'स्वीकृत', 'अनुमोदित', 'देख लिया, ठीक है', 'मैं सहमत हूँ' आदि वाक्य लिखता है।

(6) अनौपचारिक टिप्पण–एक कार्यालय से किसी दूसरे कार्यालय अथवा एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय को कुछ कार्यालीन जानकारी देने के लिए अनौपचारिक टिप्पण सीधे भेजे जाते हैं। अनौपचारिक टिप्पण में सभी कार्यालयीन नियमों तथा शर्तों आदि का सही-सही अनुपालन नहीं किया जाता है। इन टिप्पणों के उत्तर में जो टिप्पणादि प्राप्त होते हैं, उनका स्वरूप भी अनौपचारिक टिप्पण का ही होता है।

टिप्पण की विशेषताएँ

(1) संक्षिप्तता–टिप्पण का उद्देश्य ही कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक आशय व्यक्त करना होता है। अत: टिप्पण संक्षिप्त तथा सुस्पष्ट होना चाहिए। अधिकारियों के पास समय की कमी रहती है और इस बात को ध्यान में रखकर आवश्यक है। उन बातों को ही सीधे ढ़ग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि पढ़ने वालों को अपना निर्णय तुरन्त देने में कठिनाई महसूस न हो।

(2) भाषा–टिप्पण की भाषा सुस्पष्ट हो और उसमें वर्णनात्मकता के बजाय भावों को अभिव्यक्ति देने की तीव्र शक्ति हो। सम्प्रेषण का उचित माध्यम भाषा को बनाया जाना चाहिए। टिप्पणी में कहावतों तथा मुहावरों का प्रयोग न करके विचारों तथा तथ्यों को वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। टिप्पण में ऐसे शब्दों का इस्तेमाल भी नहीं करना चाहिए जिसे कि अर्थ-विषयक भ्रम पैदा हो। टिप्पण की भाषा सरल, स्पष्ट तथा संयत होनी चाहिए।

(3) क्रमबद्धता–टिप्पण लिखते समय विषय या तथ्यों को असम्बद्ध तरीके से प्रस्तुत न करके क्रम के साथ विचारों की शृंखल को रखना चाहिए। आशय के आकलन के लिए टिप्पण में क्रमबद्धता होना बहुत ही आवश्यक बात है। इसी प्रकार टिप्पण यदि विस्तृत है तो उसके प्रथम अनुच्छेद को छोड़कर अन्य अनुच्छेदों को क्रम संख्या में बाँट देना चाहिए। इससे टिप्पण के निर्णय लेने वाले प्राधिकारी को विषय के आकलन में काफी सहायता मिलती है।

(4) स्पष्टता–कार्यालयी टिप्पण प्राय: स्पष्ट ढंग से लिखे जाने चाहिए। टिप्पण लेखन में शब्दों या वाक्यों का अनुचित और भ्रामक इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। अतिशय उलझनपूर्ण, जटिल तथा कठिन विषय अथवा मामले को भी स्पष्टता के साथ बोधगम्य रीति से प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(5) तटस्थता–किसी भी उत्कृष्ट टिप्पण के लिए तटस्थता का होना भी निहायत जरूरी है। टिप्पण लिखते समय पदाधिकारी व्यक्ति को चाहिए कि व्यक्तिगत भावों, विचारों, अनुभूतियों तथा अच्छे बुरे पूर्वाग्रहों से नितान्त दूर रहकर केवल आवश्यक बातों एवं तथ्यों को ही टिप्पण में प्रक्षेपित करें।

(6) प्रभावान्विति–टिप्पणी का संक्षिप्त एवं बोधागम्य होना आवश्यक होता है और साथ ही साथ उसे जहाँ आवश्यक हो अनुच्छेदों में विभाजित किया जाना चाहिए। परन्तु ऐसा करते समय इस बात की ओर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है

कि शब्द, विचार, अनुच्छेद आदि के प्रभाव की अन्वति अस्त-व्यस्त न होकर ठीक ढ़ग से सुगठित रूप में होना चाहिए। पूरे टिप्पण का सकल प्रभाव स्पष्ट होना चाहिए।

(7) शैली–टिप्पण लेखन में शैली की अपनी स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता होती है। वैसे, प्रत्येक व्यक्ति की लेखन की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है, किन्तु इसके बावजूद, शैली के बारे में कुछ सामान्य एवं सर्वमान्य बातों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। एक बात विशेष ध्यान में रखी जानी चाहिए कि हिन्दी लेखन की शैली अंग्रेजी लेखन शैली से भिन्न होती है। अतः अंग्रेजी में सोचकर हिन्दी में अनुवाद के रूप में टिप्पण नहीं लिखा जाना चाहिए। जैसे–Necessary action may kindly be taken at the earliest–इसे हिन्दी में लिखते समय 'कृपया तुरन्त आवश्यक कार्रवाई करें।' लिखा जाना चाहिए।

6

आलेखन

सरकारी कार्यालयों में पत्र-व्यवहार की पद्धितियों के अनुसार पत्रों का प्रारूप या आलेख तैयार किया जाना ही आलेखन कहलाता है। इसे प्रालेखन या प्रारूपण भी कहा जाता है।

आलेख आवश्यकतानुसार लिपिक से लेकर अधिकारियों तक को तैयार करना पड़ता है अत: इसका सम्यक ज्ञान सभी के लिए आवश्यक है। आलेखन के ज्ञान के अभाव में कार्यालय की कार्यक्षमता गिरने के साथ-साथ कार्य सम्पादन में भी अनावश्यक विलम्ब होता है, अत: इसका ज्ञान हमारे लिए बहुत उपयोगी है।

आलेखन पत्राचार का एक अंग है। समाज के विकास के साथ आलेखन के भिन्न-भिन्न रूप विकसित होते रहे हैं। विशेषकर सरकारी सेवाओं में और कार्यालयों में काम करने वालों के लिए आलेखन में निपुण होना आवश्यक है। इसकी कुशलता दो बातों पर निर्भर है–

(1) भाषा का अच्छा ज्ञान और

(2) आलेखन के विविध रूपों और उसके विशिष्ट नियमों की जानकारी।

आलेखन की सफलता शुद्ध, सुगठित और परिमार्जित भाषा पर निर्भर है। यहाँ आलेखन से हमारा तात्पर्य सरकारी कार्यालय में व्यवहृत आलेखनों से है। इसे 'प्रारूप' भी कहते हैं।

आलेखन की विशेषताएँ

आलेखन की कुछ मूलभूत विशेषताएँ हैं–

(1) शुद्धता—प्रशासकीय आलेखन वह चाहे पत्र रूप में हो या कार्यालय ज्ञापन के रूप में, उसमें साम्रगी एवं प्रस्तुतीकरण का प्रयोग स्पष्टता एवं शुद्धता से किया जाना चाहिए। शुद्धता से तात्पर्य है-आलेखन सम्बन्धी सभी निर्देश, संख्या, तारीख और कथन शुद्धि और इनमें से किसी को लिखने में जरा सी भी गलती हो जाए तो उसके परिणाम बहुत घातक हो सकते हैं।

(2) परिपूर्णता—प्रशासकीय कर्मचारी का तबादला होता रहता है अत: आवश्यक है कि जो भी पत्र लिखा जाए वह अपने आप में परिपूर्ण हो तथा स्वयं स्पष्ट हो। उसे किसी प्रश्न की सूचना अथवा जानकारी की अतिरिक्त आवश्यकता न हो, क्योंकि अगर पत्र में अपेक्षित पूर्णता एवं स्पष्टता नहीं होगी तो स्थानांतरित कर्मचारी उसे ठीक से समझ नहीं आएगा। अतएव उस पर कार्यवाही में विलंब होना स्वाभाविक है। अत: पत्र पर संदर्भ, संख्या, दिनांक इत्यादि का स्पष्ट रूप उल्लेख हो, पत्र का विषय भी साफ-साफ शब्दों में लिखा जाना चाहिए ताकि उसकी पृष्ठभूमि से आलेखन को परिपूर्ण बनाया जा सके।

(3) विषय—सरकारी कार्यालयों में तैयार मसौदे के विषय भी आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। फलत: मामलों की स्थिति, लिये गए निर्णय तथा विषय-वस्तु के अनुसार मसौदे का आकार-प्रकार भी अलग-अलग रूप का होगा। अत: आलेखन के विषय और उसके उद्देश्य का आलेखक को पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए ताकि उसके बारे में लिखते समय आलेखन में कही किसी प्रश्न की कोई अस्पष्टता न रह जाए।

(4) संक्षिप्तता—प्रारूप जहाँ तक सम्भव हो छोटा होना चाहिए ताकि अधिकारी को उस पर अधिक समय व्यय न करना पड़े। परन्तु संक्षिप्ति का यह अर्थ नहीं है कि पत्रोत्तर के सभी मुद्दों का उसमें समावेश ही न हो। संक्षिप्त पर पूर्ण आलेखन आलेखकार की प्रतिभा, अनुभव एवं आलेखन कला की निपुणता का प्रतीक होता है।

(5) उद्धरण—अगर पत्रोत्तर में किसी नियम अथवा किसी उच्चतर अधिकारी के आदेश को उद्धृत करना आवश्यक हो तो यथासम्भव मूल शब्दों में ही उसका उल्लेख किया जाना चाहिए।

(6) विभाजन—आलेखन को स्थूल रूप से जिन भागों में विभक्त किया जाता है उन्हें क्रमश: निर्देश, प्रकरण, वक्तव्य एवं निष्कर्ष कहते हैं। पहले भाग में आलेखन के विषय का वर्णन रहता है और अगर इस संदर्भ में कोई पिछला पत्र-व्यवहार हो तो उसका भी निर्देश किया जाता है। इसके बाद आलेखन के

दूसरे भाग अर्थात् प्रकरण वक्तव्य विषय के पक्ष में विभिन्न तर्क प्रस्तुत कर अपने कथन की पुष्टि की जाती है। तीसरे एवं अंतिम भाग में उन तर्कों के आधार पर निष्कर्ष निकाल कर अपनी सिफारिशें उपस्थित कर दी जाती हैं।

(7) अनुच्छेदों पर क्रमांक–सामान्यत: प्रारूप-लेखन में भी विषय की आवश्यकता के अनुसार अनुच्छेद किये जाते हैं। छोटे या संक्षिप्त प्रारूपों में एक या दो ही अनुच्छेद होते हैं, किन्तु प्रेस विज्ञप्ति, निविदा सूचना, राष्ट्रपति की ओर से जारी किये जाने वाले पत्र या परिपत्र में कभी-कभी दो-चार पृष्ठों में प्रारूप तैयार किये जाते हैं। तथा ऐसे प्रारूप में अनुच्छेदों को क्रमांक भी दिये जाने चाहिए जिससे विषय-वस्तु के आकलन में सुविधा होती है।

(8) प्रतिलिपियाँ–शासकीय पत्र-व्यवहार में अगर मूल पत्र की प्रतिलिपियाँ अन्य अधिकारियों को भिजवानी हों तो पत्र के अन्त में उन सभी महानुभावों का उल्लेख कर देना चाहिए जिन्हें प्रतिलिपि भिजवाई जा रही हैं।

(9) संलग्न पत्र–अगर मूल पत्र के साथ कुछ संलग्न पत्र भेजना आवश्यक हो तो पत्र के नीचे बाईं ओर उसकी सूची दे देनी चाहिए।

(10) भाषा–भाषा में अर्ध-विराम एवं पूर्णविराम अत्यन्त महत्त्व का होता है। अत: आलेखन में भद्रजनोनित भाषा का प्रयोग होना चाहिए। संक्षिप्तता, शिष्टता, स्पष्टता एवं विनम्रता प्रशासनिक भाषा की अनिवार्यताएँ हैं। अतिशयोक्ति वाक्य,वक्रोक्ति, पुनरुक्ति तथा मुहावरों-कहावतों के लिए प्रशासनिक भाषा में कोई स्थान नहीं होता है। अत: संक्षेप में आलेखन की भाषा व्याकरण सम्मत सरल, स्पष्ट तथा परिमार्जित हो तथा उसमें संयम, गरिमा, गांभीर्य निवैयक्तिकता होनी चाहिए।

(11) शैली–प्रारूप अथवा मसौदा लिखने की एक विशिष्ट शैली होती है। जिसका अनुपालन आवश्यक है। कार्यालयीन मसौदा पर कागज के दोनों ओर आधा हाशिया छोड़कर लिखा या टाइप किया जाता है। दो पंक्तियों के बीच में काफी जगह छोड़नी चाहिए ताकि आवश्यकता होने पर उनमें कुछ शब्द या वाक्यांश जोड़े जा सके। तथा उसके साथ 'अनुमोदनार्थ आलेख' स्वीकृति के लिए चिट लगाकर सम्बन्धित अधिकारी को भेजी जानी चाहिए।

आलेखन के प्रकार

आलेखन दो प्रकार के होते है–

(1) प्रारम्भिक आलेखन,

(2) उन्नत अथवा उच्चतर आलेखन।

(1) प्रारम्भिक आलेखन–प्रारम्भिक आलेखन में वैयक्तिक और सामाजिक पत्राचार आते हैं। इनके अन्तर्गत पारिवारिक पत्र, आवेदनपत्र, पदाधिकारियों से पत्र-व्यवहार, व्यावसायिक पत्र, सम्पादक के नाम पत्र, निमन्त्रण पत्र इत्यादि आते हैं।

(2) उन्नत अथवा उच्चतर आलेखन–उच्चतर आलेखन में सरकारी कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्राचारों का समावेश होता है।

उच्चतर आलेखन का स्वरूप

आलेखन का अभिप्राय,मोटेतौर पर पत्रों, सूचनाओं, परिपत्रों और समझौतों के आलेख (मसौदे या मसविदे) तैयार करने से है, जिनकी आवश्यकता सरकारी दफ्तरों या कार्यालयों और प्राइवेट फर्मों तथा संस्थाओं में हर दिन पड़ती रहती है। आलेखन की जानकारी न केवल सरकारी कार्यालयों में काम करने वाले लिपिकों और सहायकों को होनी चाहिए, बल्कि अन्य व्यवसायों में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए भी जरूरी है। सरकारी कार्यालयों से अनेक प्रकार के पत्र, आदेश, परिपत्र, अधिसूचनाएँ आदि भेजी जाती है। इनका आलेख लिपिकों से उच्चतम अधिकारियों तक किसी को भी तैयार करना पड़ सकता है। अतएव, केन्द्रीय सचिवालय और राज्य सचिवालयों में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए आलेखन-ज्ञान अनिवार्य है।

आलेखन के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखना चाहिए। आलेख तैयार करते समय आलेखक को इन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

(1) विषय–आलेख का विषय आसानी से समझ में आ जाय, उसमें किसी बात की अस्पष्टता नहीं रहनी चाहिए। हर शब्द का अर्थ पारदर्शी हो।

(2) निर्देश–यदि आलेख में प्रस्तुत विषय के साथ पिछले पत्र-व्यवहार का सम्बन्ध जुड़ा हो, तो आलेख में उसका भी निर्देश होना चाहिए, क्योंकि विषय की पृष्ठभूमि जाने बिना आलेख को समझना कठिन होगा।

(3) विभाजन-प्रत्येक आलेख को तीन भागों में विभाजित करना चाहिए। पहले भाग में विषय का स्पष्ट कथन सप्रसंग होना चाहिए, दूसरे भाग में विषम का युक्तिपूर्ण समर्थन होना चाहिए। तीसरे भाग में प्रस्तुत तर्क अथवा युक्तियों के आधार पर निष्कर्ष देते हुए अपनी सिफारिश अथवा संस्तुति देनी चाहिए।

(4) क्रमसंख्या का आलेख–यदि आलेख लम्बा हो तो प्रत्येक अनुच्छेद (पैराग्राफ) के स्थान पर क्रमसंख्या का उल्लेख करना चाहिए और आवश्यकतानुसार हर अनुच्छेद के विषय के प्रसंगानुसार एक छोटा-सा उपशीर्षक भी दे देना चाहिए। हालाँकि, अनुच्छेद, क्रमसंख्या और उपशीर्षक के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं है, फिर भी आलेख का विषय हर हालत में सुस्पष्ट होना चाहिए। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि आलेख के पहले अनुच्छेद में क्रमसंख्या नहीं दी जाती दूसरे अनुच्छेद से संख्या 2 और आगे क्रमशः 3, 4 संख्याएँ उल्लिखित करनी चाहिए।

(5) भाषा–आलेख की भाषा साहित्य की भाषा नहीं होती। इसे अत्यन्त सरल होना चाहिए। तथ्यों का सीधा और स्पष्ट कथन होना चाहिए। भाषा शिष्ट हो। गंवारू शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। वाक्य छोटे-छोटे होने चाहिए। उनसे एक ही अर्थ निकलना चाहिए।

(6) उद्धरण–यदि पत्र की प्रतिलिपियाँ एक से अधिक व्यक्तियों को भेजनी हों तो उनका उल्लेख कर देना चाहिए।

(7) प्रतिलिपियाँ–यदि पत्र की प्रतिलिपियाँ एक से अधिक व्यक्तियों को भेजनी हों तो उनका उल्लेख कर देना चाहिए।

(8) संलग्न पत्र–यदि पत्र के साथ कुछ अन्य पत्र संलग्न करने हों तो उनका उल्लेख पत्र के नीचे अन्त में करना चाहिए।

पत्र में निम्नलिखित बातें अवश्य होनी चाहिए–

(1) सबसे ऊपर संख्या दी जाए।
(2) उसके नीचे पत्र-प्रेषक के कार्यालय का उल्लेख हो।
(3) उसके बाद प्रेषक का नाम और पद लिखे होने चाहिए।
(4) उसके बाद प्रेषिती का नाम, पद और पता लिखा जाना चाहिए।
(5) फिर प्रेषक का पता और दिनांक लिखा जाय।
(6) इसके बाद पृष्ठ के बीच में विषय का उल्लेख किया जाय। यहाँ पत्र का सारांश एक वाक्यांश में दिया जाना चाहिए।
(7) इसके बाद पत्र के प्रारम्भ में बाईं ओर सम्बोधन लिखा जाय।
(8) सम्बोधन के बाद पत्र प्रारम्भ करते हुए पिछले पत्र-व्यवहार का उल्लेख किया जाना चाहिए।
(9) पत्र के अन्त में स्वनिर्देश तथा उसके नीचे हस्ताक्षर होना चाहिए।

आलेखन के अन्तर्गत निम्न पत्रों का प्रारूप अथवा आलेख तैयार करना बताया गया है–

(1) सरकारी पत्र,
(2) शासनादेश,
(3) अर्द्ध-शासकीय पत्र,
(4) गैर-सरकारी पत्र,
(5) अनुस्मारक-पत्र,
(6) कार्यालय आदेश,
(7) ज्ञापन,
(8) परिपत्र या गश्तीपत्र,
(9) आरोप-पत्र,
(10) संकल्प या प्रस्ताव,
(11) अधिसूचना,
(12) प्रेस विज्ञप्ति,
(13) प्रतिवेदन,
(14) ई-पत्र या ई-मेल।

(1) सरकारी पत्र–सरकारी कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाले पत्रों के विभिन्न प्रारूपों में सरकारी पत्र का प्रयोग सबसे अधिक होता है। एक सरकारी अधिकारी, दूसरे सरकारी अधिकारी, किसी व्यक्ति, फर्म, संस्था अथवा अन्य व्यावसायिक संगठन को सरकारी कार्य हेतु जो पत्र लिखता है, उसे सरकारी पत्र कहते हैं।

सरकारी-पत्र के लिए सामान्य निर्देश

सरकारी पत्र के लिए सामान्य निर्देश निम्नलिखित हैं–

(i) सर्वप्रथम कागज के शीर्ष पर पत्र संख्या लिखनी चाहिए। पत्र जिस पत्र-बन्ध (फाइल) से भेजा जा रहा है उसकी संख्या ही पत्र संख्या होती है। कभी-कभी कार्यालय अथवा विभाग का उल्लेख करने के बाद पत्र संख्या अंकित की जाती है। कहीं-कहीं कार्यालय अथवा विभाग का उल्लेख करने के बाद पत्र संख्या अंकित की जाती है। कहीं-कहीं प्रेषिती का पता लिखने के ऊपरान्त पत्र संख्या और दिनांक लिखने की परम्परा है।

(ii) पत्र संख्या लिखने के ऊपरान्त प्रेषक के कार्यालय का नाम लिखना चाहिए। इसके बाद बायीं ओर स्थान और दिनांक लिखे जाते हैं।

(iii) कार्यालय नाम लिखने के बाद बायीं ओर प्रेषक का नाम तथा पद लिखना चाहिए।

(iv) इसके ऊपरान्त बायीं ओर 'सेवा में' लिखकर प्रेषिती का पद और पता लिखना चाहिए।

(v) प्रेषिती का पता लिखने के बाद पत्र विषय को ही वाक्य में लिख देना चाहिए।

(vi) सरकारी पत्रों में सम्बोधन के लिए 'महोदय' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

(vii) इसके ऊपरान्त पत्र का मुख्य प्रतिपाद्य होता है। यदि पत्र का सम्बन्ध पिछले पत्र-व्यवहार से है तो संक्षेप में उसका भी उल्लेख करना चाहिए। इसके बाद पत्र की विषय-वस्तु को सरल, सुस्पष्ट भाषा में लिखकर निष्कर्ष एवं सुझाव भी प्रस्तुत करना चाहिए।

(viii) पत्र की समाप्ति पर बायीं ओर स्वनिर्देश के लिए 'भवदीय' या 'आपका विश्वास-पात्र' लिखना चाहिए। इसके नीचे (प्रेषक) अधिकारी के हस्ताक्षर होते हैं, हस्ताक्षर के नीचे अधिकारी का नाम और पद लिखा जाता है।

(ix) यदि पत्र के साथ संलग्नक भेजने हैं तो उनका भी उल्लेख कर देना चाहिए।

सरकारी कर्मचारियों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार के गृह मन्त्रालय की ओर से आलेख प्रस्तुत कीजिए, जिसमें अन्तिम शनिवार के बजाय दूसरे शनिवार की छुट्टी दिए जाने के विषय में विचार किया गया हो।

(2) शासनदेश–सरकार द्वारा लिए गए किसी निर्णय से अधीन कार्यालयों को अवगत कराने के लिए सचिवालय द्वारा जो पत्र भेजे जाते हैं, 'शासनादेश' कहलाते हैं।

शासनादेश को 'राजाज्ञा' और संक्षेप में 'जी.ओ' भी कहते हैं। प्रमुख कार्यालयाध्यक्षों और विभागाध्यक्षों आदि को भेजे जाने वाले शासनादेश, 'परिपत्र-शासनादेश' कहलाते हैं। इसका आरम्भ 'मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि..... ' जैसे उपवाक्य से किया जाता है। सचिवालय के सभी पत्र उत्तम पुरुष में लिखे जाते हैं।

एक शासनादेश प्रस्तुत कीजिए जिसमें अतिरिक्त जिला अधिकारी को राज्यपाल के आदेश के अन्तर्गत चपरासी के पद को अस्थायी रूप से स्वीकृत किया गया हो।

(3) अर्द्ध-शासकीय पत्र–सरकारी अधिकारियों के मध्य, सरकारी काम से व्यक्तिगत शैली में लिखे जाने वाले पत्रों को अर्द्ध-शासकीय पत्र कहते हैं। इन पत्रों में व्यक्तिगत पत्रों की भाँति आत्मीयता एवं भावुकता के दर्शन होते हैं।

अर्द्ध-शासकीय पत्र निम्नलिखित परिस्थितियों में लिखे जाते हैं–

(i) जब कोई अधिकारी किसी दूसरे अधिकारी का ध्यान किसी बात की ओर विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहता है।

(ii) जब किसी पत्र की विषयवस्तु को गोपनीय रखना होता है।

(iii) जब तत्काल कार्यवाही या स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है।

(iv) जब किसी अधिकारी को अपने अधीन कर्मचारी की, वरिष्ठ अधिकारी से शिकायत करनी होती है अथवा उसे किसी विशेष आदेश/निर्देश देने हेतु सुझाव देना होता है।

(v) जब किसी सम्मानित अधिकारी या व्यक्ति को किसी उत्सव, समारोह या सभा की अध्यक्षता अथवा सम्बोधन हेतु आमन्त्रित करना होता है।

अर्द्ध-शासकीय पत्र के लिए सामान्य निर्देश

अर्द्ध-शासकीय पत्र के लिए सामान्य निर्देश निम्नलिखित हैं–

(अ) सर्वप्रथम कागज के शीर्ष पर अर्द्ध-सरकारी पत्र संख्या लिखनी चाहिए।

(ब) पत्र संख्या लिखने के ऊपरान्त प्रेषक के कार्यालय का नाम लिखना चाहिए, तदुपरान्त बायीं ओर दिनांक लिखनी चाहिए।

(स) अर्द्ध-सरकारी पत्रों में सम्बोधन शब्द 'महोदय' शब्द न लिखकर व्यक्तिगत पत्रों की तरह 'प्रिय डॉ. मिश्रजी' या 'माननीय प्रधानमन्त्री जी' या 'प्रिय गुप्त जी' आदि जैसा लिखना चाहिए।

(द) इन पत्रों में स्वनिर्देश के लिए 'भवन्निष्ठ 'या' आपका सद्भावी' या आपका 'शुभेच्छु' या 'भवत् हितैषी' आदि शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

(न) पत्र के नीचे बायीं ओर सेवा में लिखने के बाद प्रेषिती का नाम, पद और पता लिख देना चाहिए।

उत्तर-प्रदेश के प्रशिक्षण एवं सेवायोजन निदेशालय की ओर से एक अर्द्ध-शासकीय पत्र लिखिए जिसमें गणित अनुदेशक का कार्यभार सीमा से अधिक हो जाने के कारण प्रशिक्षार्थियों के प्रति न्याय न हो पाने का उल्लेख प्रस्तुत हो।

प्रतिवेदन

सरकारी कार्यालयों में लेखन की अनेक पद्धतियां होती हैं। इन पद्धतियों में प्रतिवेदन लेखन विशेष महत्त्व रखती है। प्रतिवेदन अंग्रेजी के रिपोर्ट शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है। समाचार पत्र के लिए किसी घटना अथवा दुर्घटना का विवरण रिपोर्ट या प्रतिवेदन है। किसी सामाजिक अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रम के विवरण को भी प्रतिवेदन कहा जाता है। थाने में किसी दुर्घटना, अपराध (जैसे चोरी आदि) की शिकायत या रिपोर्ट के लिए प्रतिवेदन कक्ष बने होते हैं। इन स्थितियों में प्रतिवेदन से विवरण, सूचना, समाचार अथवा शिकायत आदि अर्थ लिए जाते हैं। प्रतिवेदन का एक विशेष अर्थ भी है। किसी कार्य-योजना, परियोजना, समस्या आदि पर किसी उच्च अधिकारी द्वारा नियुक्त समिति प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है जिसमें उस योजना या समस्या का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है। यह विवरण गहन पूछताछ तथा छानबीन पर आधारित होता है।

सरकारी शब्दावली में प्रतिवेदन एक प्रकार का लिखित विवरण है जिसमें किसी कार्य या जांच के विभिन्न तथ्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है। इस विवरण का उद्देश्य उन लोगों को किसी कार्य या विषय के बारे में आवश्यक सूचना देना होता है, जो उससे संबंधित तो है, परंतु उन्हें उसके सभी तथ्यों की जानकारी नहीं है। यह प्रतिवेदन किसी घटना, समारोह, उत्सव, संगोष्ठी, उद्घाटन, सभा, जुलूस, बैठक आदि के बारे में भी लिखे जाते हैं। किसी प्रस्ताव या किसी कार्य विशेष की प्रगति की जांच करने पर जो निष्कर्ष सुझाव तथा संस्तुतियाँ आदि दी जाती है उनका विवरण भी प्रतिवेदन के रूप में तैयार किया जाता है। विभिन्न संस्थाओं, संगठनों, समितियों में विभागों आदि की साधारण तथा विशेष बैठकें समय-समय पर होती रहती हैं, इन बैठकों की कार्यवाही का लिखित रूप प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके अतिरिक्त किसी सरकारी या गैर-सरकारी संस्था की व्यवसायिक स्थिति के बारे में भी प्रतिवेदन

लिखे जाते हैं। इस प्रकार सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं तथा कार्यालयों में प्रतिवेदन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रतिवेदन की परिभाषा

भूत अथवा वर्तमान की विशेष घटना, प्रसंग या विषय के प्रमुख कार्यों के क्रमबद्ध और संक्षिप्त विवरण को 'प्रतिवेदन' कहते हैं।

अथवा

वह लिखित सामग्री, जो किसी घटना, कार्य-योजना, समारोह आदि के बारे में प्रत्यक्ष देखकर या छानबीन करके तैयार की गई हो, प्रतिवेदन या रिपोर्ट कहलाती है। यह अतिसंक्षिप्त, किन्तु काफी सारगर्भित रचना होती है, जिसे पढ़कर या सुनकर उस घटना या अन्य कार्यवाई के बारे में वस्तुपरक जानकारी मिल जाती है। इससे किसी कार्य की स्थिति और प्रगति की सूचना मिलती है।

प्रतिवेदन अंग्रेजी के रिपोर्ट शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है। समाचार पत्र के लिए किसी घटना अथवा दुर्घटना का विवरण रिपोर्ट या प्रतिवेदन है। किसी सामाजिक अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रम के विवरण को भी प्रतिवेदन कहा जाता है। थाने में किसी दुर्घटना, अपराध (जैसे चोरी आदि) की शिकायत या रिपोर्ट के लिए प्रतिवेदन कक्ष बने होते हैं।

इन स्थितियों में प्रतिवेदन से विवरण, सूचना, समाचार अथवा शिकायत आदि अर्थ लिए जाते हैं। प्रतिवेदन का एक विशेष अर्थ भी है। किसी कार्य-योजना, परियोजना, समस्या आदि पर किसी उच्च अधिकारी द्वारा नियुक्त समिति प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है जिसमें उस योजना या समस्या का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है।

यह विवरण गहन पूछताछ तथा छानबीन पर आधारित होता है। अच्छे प्रतिवेदन में घटना, समस्या आदि से सम्बद्ध तथ्यों का प्रामणिक तथा निष्पक्ष विवरण होता है। संक्षिप्तता तथा स्पष्टता प्रतिवेदन के अनिवार्य गुण हैं।

प्रतिवेदन लिखने के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

(1) प्रतिवेदन संक्षिप्त हो।

(2) घटना या किसी कार्रवाई की मुख्य बातें प्रतिवेदन में अवश्य लिखी जानी चाहिए।

(3) इसकी भाषा सरल और शैली सुस्पष्ट हो।
(4) विवरण क्रमिक रूप से हो।
(5) पुनरुक्ति दोष नहीं हो यानी एक ही बात को बार-बार भिन्न-भिन्न रूपों में नहीं लिखना चाहिए।
(6) इसके लिए एक सटीक शीर्षक जरूर हो।

प्रतिवेदन की विशेषताएँ

प्रतिवेदन के निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

(1) प्रतिवेदन में किसी घटना या प्रसंग की मुख्य-मुख्य बातें लिखी जाती हैं।
(2) प्रतिवेदन में बातें एक क्रम में लिखी जाती हैं। सारी बातें सिलसिलेवार लिखी होती हैं।
(3) प्रतिवेदन संक्षेप में लिखा जाता है। बातें विस्तार में नहीं, संक्षेप में लिखी जाती हैं।
(4) प्रतिवेदन ऐसा हो, जिसकी सारी बातें सरल और स्पष्ट हों, उनको समझने में सिरदर्द न हो। उनका एक ही अर्थ और निष्कर्ष हो। स्पष्टता एक अच्छे प्रतिवेदन की बड़ी विशेषता होती है।
(5) प्रतिवेदन सच्ची बातों का विवरण होता है। इसमें पक्षपात, कल्पना और भावना के लिए स्थान नहीं है।
(6) प्रतिवेदन में लेखक या प्रतिवेदक की प्रतिक्रिया या धारणा व्यक्त नहीं की जाती। उसमें ऐसी कोई बात न कही जाय, जिससे भम्र पैदा हो।
(7) प्रतिवेदन की भाषा साहित्यिक नहीं होती। यह सरल और रोचक होती है।
(8) प्रतिवेदन किसी घटना या विषय की साफ और सजीव तस्वीर सुनने या पढ़ने वाले के मन पर खींच देता है।

प्रतिवेदन का उद्देश्य

प्रतिवेदन का उद्देश्य बीते हुए समय के विशेष अनुभवों का संक्षिप्त संग्रह करना है ताकि आगे किसी तरह की भूल या भम्र न होने पाये। प्रतिवेदन में उसी कठोर सत्य की चर्चा रहती है, जिसका अच्छा या बुरा अनुभव हुआ है। प्रतिवेदन का दूसरा लक्ष्य भूतकाल को वर्तमान से जोड़ना भी है।

भूत की भूल से लाभ उठाकर वर्तमान को सुधारना उसका मुख्य प्रयोजन है। किंतु, प्रतिवेदन डायरी या दैनंदिनी नहीं है। प्रतिवेदन में यथार्थ की तस्वीर

रहती है और डायरी में यथार्थ के साथ लेखक की भावना, कल्पना और प्रतिक्रिया भी व्यक्त होती है। दोनों में यह स्पष्ट भेद है।

प्रतिवेदन के प्रकार

मनुष्य की जीवन बहुरंगी है। उसमें अनेक घटनाएँ नित्य घटती रहती हैं और अच्छे-बुरे कार्य होते रहते हैं। प्रतिवेदन में सभी प्रकार के प्रसंगों और कार्यों को स्थान दिया जाता है। सरकारी या गैर-सरकारी कर्मचारी समय-समय किसी कार्य या घटना का प्रतिवेदन अपने से बड़े अफसर को देते रहते हैं। समाचारपत्रों के संवाददाता भी प्रधान संपादक को प्रतिवेदन लिखकर भेजते हैं।

स्कूल के प्रधानाध्यापक भी शिक्षा पदाधिकारियों को अपने स्कूल के संबंध में प्रतिवेदन लिखकर भेजते हैं गाँव का मुखिया भी अपने गाँव का प्रतिवेदन सरकार को भेजता है। किसी संस्था का मंत्री भी उसका वार्षिक या अर्द्धवार्षिक प्रतिवेदन सभा में सुनाता है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि सामाजिक और सरकारी जीवन में प्रतिवेदन का महत्त्व और मूल्य दिन-दिन बढ़ता जा रहा है।

प्रतिवेदन के प्रमुख तत्त्व

एक अच्छे प्रतिवेदन में निम्नलिखित तत्त्व होने चाहिए–

(i) प्रसंग विशेष या विषय वस्तु–प्रसंग विशेष या विषय वस्तु प्रतिवेदन का प्रमुख एवं आवश्यक तत्त्व है। यदि कोई विषय ही नहीं होगा तो प्रतिवेदन का लिखा जाना ही संभव नहीं है। प्रतिवेदन के अनेक विषय हो सकते हैं जैसे यह किसी भी प्रकार की घटना, समस्या, आरोप-प्रत्यारोप, दंगा-फसाद, विवाद, किसी संस्था की नीति, आय-व्यय, निर्माण की योजना, राज्यों का सीमा विवाद, जल-विवाद, सरकार की आरक्षण नीति, विश्वविद्यालय और कॉलेजों की शुल्क नीति, पुस्तकालय की समस्याएं, विविध प्रकार के समारोह, चुनाव नीति, उद्घाटन समारोह, प्राकृतिक आपदाएं, बीमारी-महामारी आदि। अतः स्पष्ट है कि ऐसा कोई भी विषय जिसके अध्ययन अथवा जाँच-पड़ताल की आवश्यकता होती है वह प्रतिवेदन का विषय हो सकता है।

(ii) प्रतिवेदन हेतु नियुक्त व्यक्ति अथवा समिति–प्रतिवेदन का दूसरा आवश्यक तत्त्व उसके लिए किसी व्यक्ति अथवा समिति को नियुक्त किया जाना है। जब प्रतिवेदन का विषय निश्चित हो जाता है तब यह तय किया जाता है कि इस विषय पर प्रतिवेदन लिखने के लिए एक व्यक्ति काफी है या

फिर अनेक व्यक्तियों की समिति तैयार की जाए। इसका निर्णय विषय की गंभीरता, गहनता और उसके आयामों को दृष्टि में रखकर किया जाता है। प्रत्येक स्थिति में नियुक्त व्यक्ति अथवा समिति के सदस्यों का चुनाव इसी आधार पर किया जाता है कि उन्हें उस विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो। यदि समिति का गठन किया गया है, तो विषय के अच्छे जानकार व्यक्ति को ही समिति का अध्यक्ष बनाया जाता है, इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति सचिव तथा शेष सदस्य के रूप में कार्य करते हैं।

(iii) निश्चित समय सीमा–प्रतिवेदन के लिए समय सीमा अवश्य निश्चित की जाती है। यदि ऐसा न हो तो संभव है कि प्रतिवेदन आने के समय तक उसका महत्त्व भी समाप्त हो जाए। किसी भी घटना या विषय पर प्रतिवेदन लिखने का एक निश्चित समय तय किया जाता है और उसी समय सीमा के भीतर उस विषय पर रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है। उदाहरण के लिए बरसात का मौसम भी जाने के बाद जल निकासी की समस्या पर लिखे गए प्रतिवेदन का क्या लाभ? या चुनाव हो जाने के बाद विभिन्न दलों की नीतियों पर प्रतिवेदन लिखने से क्या फायदा? अत: प्रतिवेदक को चाहिए कि पूर्ण प्रयास करके वह निश्चित समय सीमा तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करें। प्रतिवेदन की अवधि कितनी हो यह विषय की गंभीरता पर निर्भर करता है। यह समय सीमा एक दिन से लेकर एक वर्ष अथवा अधिक समय की भी हो सकती है।

(iv) प्रामाणिक जानकारी व पूर्ण जांच-पड़ताल–विषय की प्रामाणिक जानकारी एवं पूर्ण जांच-पड़ताल प्रतिवेदन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्रतिवेदक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह जिस विषय पर प्रतिवेदन लिखने जा रहा है उसके लिए प्रामाणिक तथ्य एकत्रित करें। उसे कुछ चित्र, दस्तावेज, वीडियो, टेप आदि देखने व सुनने पड़ सकते हैं। कई बार साक्षी के रूप में अनेक व्यक्तियों से बातचीत भी करनी पड़ सकती है। प्रत्येक स्थिति में आवश्यक है कि यह सामग्री प्रामाणिक हो। जिन व्यक्तियों को साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है वे प्रत्यक्षदर्शी हो और उनका आचरण संदिग्ध न हो। प्रतिवेदन चाहे किसी सामान्य व्यक्ति से संबंधित हो या किसी उच्चाधिकारी से, जो भी तथ्य प्रस्तुत किए जा रहे हैं वह प्रामाणिक और उचित जांच के बाद ही प्रतिवेदन में प्रस्तुत किए जाने चाहिए ताकि उसके आधार पर सही निर्णय लिया जा सके।

(v) अभिमत–पूर्ण जांच पड़ताल के बाद प्रतिवेदक संक्षिप्त विवरण देता हुआ अपने निर्णय को प्रतिवेदन में प्रस्तुत करता है। आवश्यकता पड़ने पर

प्रतिवेदक द्वारा सिफारिश अथवा निजी अभिमत प्रस्तुत करना भी आवश्यक होता है। संपूर्ण जांच पड़ताल प्रतिवेदक द्वारा ही की गई होती है, अतः उसके अभिमत का विशेष महत्त्व रहता है। यदि समिति द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जा रहा है तो यह भी संभव है कि किसी सदस्य का मत शेष सदस्यों के मत से भिन्न हो ऐसी स्थिति में उस सदस्य की सम्मति भी प्रतिवेदन में लिखित रूप में प्रस्तुत की जाती है।

(vi) क्रमबद्धता एवं लिपिबद्धता–प्रतिवेदन तथ्यों एवं प्रमाणों पर आधारित होती है। यह तथ्य और प्रमाण क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किए जाने चाहिए ताकि घटना की क्रमबद्ध जानकारी प्राप्त हो सके। उदाहरण के लिए यदि प्रतिवेदक ने तिथि क्रम अपनाया है तो वर्ष, माह और दिनांक की दृष्टि से तथ्य प्रस्तुत किए जाने चाहिए न कि जनवरी, फरवरी या मार्च के हिसाब से। क्रमबद्धता के साथ-साथ प्रतिवेदन का लिपिबद्ध होना अनिवार्य है क्योंकि मौखिक रूप से बताई गई बात प्रतिवेदन नहीं कहलाती और न ही वह विश्वसनीय हो सकती है। अतः प्रतिवेदन सरल एवं स्पष्ट भाषा में लिखी थी या टंकित होना चाहिए तथा उसमें व्याकरण की अशुद्धियां नहीं होनी चाहिए।

संक्षेपण

संक्षेपण अथवा सार-लेखन से तात्पर्य है किसी अनुच्छेद, परिच्छेद, विस्तृत टिप्पणी या प्रतिवेदन आदि को संक्षिप्त कर देना। संक्षेपण को अंग्रेजी में Précis कहा जाता है और बोलचाल की भाषा में Summary प्रचलित है। किसी विस्तार से लिखे गये विषय मामले अथवा प्रतिवेदन आदि को संक्षेप में लिखकर प्रस्तुत कर देना सार लेखन या संक्षेपण कहलाता है। सार लेखन में मूल विषय-वस्तु या कथ्य सम्बन्धित मुख्य विचारों या तथ्यों को ही प्रथामिकता एवं महत्ता दी जाती है। इसमें अनावश्यक बातें, संदर्भ, तर्क-वितर्क आदि को हटा दिया जाता है और मूल विचार, तथ्य और भावों को ही रखा जाता है। संक्षेपण अर्थात् सार-लेखन भी एक कला है और अध्ययन, अनुशीलन से उसे प्राप्त किया जा सकता है। कार्यालयीन कामकाज ही नहीं अपितु दैनंदिन जीवन में भी संक्षेपण कला का अत्यधिक उपयोग है। संक्षेपण को मानसिक प्रशिक्षण भी कहा गया है जिससे लेखन में स्पष्टता, सरलता तथा प्रभावशीलता पैदा होती है। मंत्रालयों, सरकारी कार्यालयों, विभागों तथा सरकार के अधीन प्रतिष्ठानों आदि में संक्षेपण या सार-लेखन का प्रयोग यथास्थिति समयानुसार किया जाता है। मंत्री महोदय,

सचिव या उसके स्तर के उच्चाधिकारी के पास समयाभाव के कारण पूरी फाइल पढ़ पाना कभी-कभार संभव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में सम्बन्धित अधीनस्थ अधिकारी मामले या प्रतिवेदन अथवा अभ्यावेदन आदि का सार-संक्षेपण टिप्पणी द्वारा लिखते हैं, जिनके अनुसार उच्चाधिकारी, प्रबन्ध निदेशक, अध्यक्ष अथवा मंत्री आदि अपने आदेश देते हैं अथवा कार्रवाई करते हैं। संक्षेपण से अनेक लाभ हो सकते हैं, जैसे–

(अ) संक्षेपण से विचारों की एकाग्रता एवं दृढ़ता का विकास होता है।
(आ) इससे शब्द मितव्ययिता आदि की क्षमता बढ़ती है।
(इ) इससे मानसिक चिंतन, मनन तथा विचारों में स्पष्टता आती है।
(ई) सार-लेखन से विश्लेषण शक्ति का विकास होकर अभिव्यक्ति प्रभावशाली तथा घनिभूत बनती है।
(उ) संक्षेपण से मानसिक श्रम आदि की बचत होती है।
(ऊ) संक्षेपण लेखन से ग्रहण शक्ति तथा अभिव्यक्ति शक्ति का विकास होता है।

संक्षेपण की प्रक्रिया

संक्षेपण करना अथवा सार-लेखन एक कला है। संक्षेपण को सुचारु रूप से तैयार करके उसे आदर्श बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(1) संक्षेपण करते समय सर्वप्रथम मूल अनुच्छेद या विषय-वस्तु को दो-तीन बार ध्यानपूर्वक पढ़ लेना चाहिए। इससे मूल अनुच्छेद का भावार्थ समझ में आ जायेगा। तब तक सार-लेखन की शुरुआत नहीं करनी चाहिए जब तक कि मूल विषय का भावार्थ समझ में न आ जाये।
(2) मूल अनुच्छेद को पढ़ने के बाद महत्त्वपूर्ण तथ्यों तथा विचारों को रेखांकित कर लिया जाना चाहिए। रेखांकन करते समय मूल विषय से सम्बन्धित कोई भी महत्त्वपूर्ण अंश नहीं छूटना चाहिए।
(3) इसके बाद मूल में व्यक्त किये गये विचारों, भावों तथा तथ्यों को क्रमबद्ध कर लेना चाहिए।
(4) मूल अनुच्छेद का एक-तिहाई में संक्षेपण करना चाहिए। इसमें संक्षेपक को अपनी ओर से कोई भी तर्क-वितर्क करने तथा किसी अतिरिक्त अंश को जोड़ने की अनुमति या छूट नहीं होती।

(5) संक्षेपण को अंतिम रूप दिये जाने से पूर्व उसका पहले कच्चा रूप तैयार कर लिया जाना चाहिए और अच्छी तरह देख लिया जाना चाहिए कि सभी महत्त्वपूर्ण बातों का अंतर्भाव उसमें हो चुका है।

(6) संक्षेपण तैयार करते समय मूल अनुच्छेद में वर्णित या उल्लिखित कहावतें, मुहावरें, वाक-प्रचार तथा अलंकार आदि को हटा देना चाहिए।

(7) सामान्यत: संक्षेपण मूल अनुच्छेद का एक-तिहाई होना चाहिए।

(8) संक्षेपण तैयार करने के बाद उसके लिए सुयोग्य शीर्षक का चयन किया जाना चाहिए। संक्षेपण का शीर्षक अत्यन्त सार्थक, संक्षिप्त, आकर्षक तथा विषयवस्तु से सुसंगत होना चाहिए।

संक्षेपण की विशेषताएँ

(1) विषय-वस्तु के मूल भाव की संक्षिप्त, सरल अभिव्यक्ति संक्षेपण या सार लेखन की मुख्य विशेषता होती है। सार-लेखन में मूल भावों, विचारों, बातों तथा कथ्यों का रक्षण आवश्यक होता है।

(2) मूल अनुच्छेद में व्यक्त या निरूपित मुख्य विचारों एवं भावों की क्रमबद्ध स्थापना संक्षेपण की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। विचारों और भावों की विशृंखलता से संक्षेपण में भद्दापन आ जाता है। असंगत तथ्यों तथा बातों का संक्षेपण में कोई स्थान नहीं होता।

(3) सार-लेखन की तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है उसकी स्पष्टता। मूल विचारों तथा भावों को बिना उलझाये स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए, यही संक्षेपण की स्पष्टता की विशेषता है।

(4) संक्षेपण की भाषा सरल होनी चाहिए। अत: इसके लेखन में कठिन शब्दों, अस्पष्ट वाक्यांशों तथा क्लिष्ट पदावली का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

इस प्रकार आदर्श संक्षेपण वह कहा जा सकता है, जो अल्प समय में, अल्प श्रम से, सहजता से मूल विषय-वस्तु को संक्षेप में प्रस्तुत कर सके। कार्यालयीन कामकाज में आदर्श सार-लेखन तभी संभव हो सकता है जब सार-लेखक कर्मचारी अधिकारी का कार्यालयीन ज्ञान परिपूर्ण हो, उसका अध्ययन गम्भीर हो, भाषा का शब्द-भण्डार समृद्ध हो, विशेष चिंतन-मनन की शक्ति हो तथा शैली पर अधिकार होकर आत्मविश्वास हो। अत: सम्बन्धित

अधिकारी-कर्मचारियों को चाहिए कि वे इन बातों की ओर विशेष ध्यान देकर संक्षेपण करने का सतत अभ्यास रखें।

सरकारी पत्र

इसे शासकीय पत्र भी कहा जाता है। सरकारी पत्राचार में सबसे अधिक मात्रा में पत्रों का प्रयोग होता है। अत: सरकारी पत्राचार में सरकारी पत्र का महत्त्वपूण स्थान है। सरकारी पत्रों का प्रयोग विभिन्न कार्यालयों, संस्थाओं, निकायों, निगमों, सार्वजनिक उद्योगों, बैंकों तथा कम्पनियों के साथ सम्पर्क तथा दूरसंचार के उपयुक्त माध्यम के रूप में किया जाता है।

सरकारी पत्र उत्तम पुरुष में ही प्राय: लिखे जाते हैं। सरकारी पत्र में तथ्यों तथा स्थितियों को उनके मूल रूप में यथास्थिति रखा जाना अत्यावश्यक होता है। ऐसे पत्रों की भाषा सरल, सुबोध तथा स्पष्ट होनी चाहिए। तथा पत्रों में लोकोक्तियों, मुहावरों व कहावतों का प्रयोग बिलकुल नहीं किया जाना चाहिए। सरकारी पत्र सीधे विषयानुरूप लिखे जाने आवश्यक होते हैं। सरकारी पत्रों में किसी भी प्रकार की भ्राँतियों, गलतफहमियों आदि बातों के साथ अस्पष्टता व अनिश्चितता नहीं होनी चाहिए। किसी सरकारी आदेश या अनुदेश की तामील किये जाने वाले पत्र में उस प्रकार की सूचना दिया जाना आवश्यक हो जाता है–जैसे, 'मुझे यह कहने का आदेश हुआ...'' मुझे निर्देश दिया गया है कि मैं. ..।' सरकारी पत्र का सम्बोधन सामान्यतया 'महोदय ' से आरम्भ होता है। सभी प्रकार के सरकारी (शासकीय) पत्रों के अधोलेख के रूप में 'भवदीय' लिखा जाता है, सरकारी (शासकीय) पत्र के प्रमुख अंग निम्नानुसार होते हैं–

(1) पत्र संख्या 2) मंत्रालय, विभाग अथवा कार्यालय का नाम (अर्थात् प्रेषक का नाम) 3) प्राप्तकर्ता अर्थात् प्रेषिती का नाम 4) पत्र भेजने का स्थान 5) बिषय 6) सम्बोधन 7) पत्र की मुख्य विषय-वस्तु 8) आत्म निर्देश 9) प्रेषक के हस्ताक्षर एवं उसका पदनाम 10) पृष्ठाकंन या परांकन 11) संलग्नक यदि कोई हो।

समाचार लेखन

परंपरागत रूप से बताया जाता है कि समाचार उस समय ही पूर्ण कहा जा सकता है जब वह कौन, क्या, कब, कहां, क्यों और कैसे सभी प्रश्नों या इनके उत्तर को लेकर लोगों की जिज्ञासा को संतुष्ट करता हो। हिंदी में इन्हें छह ककार

के नाम से जाना जाता है। अंग्रेजी में इन्हें पांच 'डब्ल्यू', हू, वट, व्हेन, व्हाइ वेहअर और एक 'एच' हाउ कहा जाता है। इन छह सवालों के जवाब में किसी घटना का हर पक्ष सामने आ जाता है, लेकिन समाचार लिखते वक्त इन्हीं प्रश्नों का उत्तर तलाशना और पाठकों तक उसे उसके संपूर्ण अर्थ में पहुँचाना सबसे बड़ी चुनौती का कार्य है। यह एक जटिल प्रक्रिया है। पत्रकारिता और समाचारों को लेकर होने वाली हर बहस का केंद्र यही होता है कि इन छह प्रश्नों का उत्तर क्या है और कैसे दिया जा रहा है। समाचार लिखते वक्त भी इसमें शामिल किए जाने वाले तमाम तथ्यों और अंतर्निहित व्याख्याओं को भी एक ढांचे या संरचना में प्रस्तुत करना होता है।

समाचार संरचना

सबसे पहले तो समाचार का 'इंट्रो' होता है। यह कह सकते हैं कि यह असली समाचार है, जो चंद शब्दों में पाठकों को बताता है कि क्या घटना घटित हुई है। इसके बाद के पैराग्राफ में इंट्रो की व्याख्या करनी होती है। इंट्रो में जिन प्रश्नों का उत्तर अधूरा रह गया है उनका उत्तर देना होता है। इसलिए समाचार लिखते समय इंट्रों के बाद व्याख्यात्मक जानकारियां देने की जरूरत होती है। इसके बाद विवरणात्मक या वर्णनात्मक जानकारियां दी जानी चाहिए। घटनास्थल का वर्णन करना, इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यह घटना के स्वभाव पर निर्भर करता है कि विवरणात्मक जानकारियों का कितना महत्त्व है। मसलन अगर कहीं कोई उत्सव हो रहा हो जिसमें अनेक सांस्कृतिक और सामाजिक कार्यक्रम चल रहे हों तो निश्चय ही इसका समाचार लिखते समय घटनास्थल का विवरण ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। अगर कोई राजनीतिज्ञ प्रेस सम्मेलन करता है तो इसमें विवरण देने (प्रेस सम्मेलन में व्याप्त माहौल के बारे में बताने) के लिए कुछ नहीं होता और सबसे महत्त्वपूर्ण यही होता है कि राजनीतिज्ञ ने जो कुछ भी कहा और एक पत्रकार थोड़ा आगे बढकर इस बात की पड़ताल कर सकता है कि राजनीतिज्ञ का प्रेस सम्मेलन बुलाकर यह सब कहने के पीछे क्या मकसद था जो उसने मीडिया (यानि जनता) के साथ शेयर की और जिन बातों को उसने सार्वजनिक किया। यह भी कहा जाता है कि जो बताया जा रहा है वह समाचार नहीं बल्कि तो छिपाया जा रहा है वह समाचार है।

इसके बाद अनेक ऐसी जानकारियां होती हैं, जो 'पांच डब्ल्यू' और एक 'एच' को पूरा करने के लिए आवश्यक होती हैं और जिन्हें समाचार लिखते समय

पहले के तीन खंडों में शामिल नहीं किया जा सका। इसमें पहले तीन खंडों से संबंधित अतिरिक्त जानकारियां दी जाती हैं। हर घटना को एक सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के लिए इसका पृष्ठभूमि में जाना भी आवश्यक होता है। 'क्यो' और 'कैसे' का उत्तर देने के लिए घटना के पीछे की प्रक्रिया पर भी निगाह डालनी आवश्यक हो जाती है। इसके अलावा पाठक इस तरह की घटनाओं की पृष्ठभूमि भी जानने की प्रति जिज्ञासु होते हैं। मसलन अगर किसी नगर में असुरक्षित मकान गिरने से कुछ लोगों की मृत्यु हो जाती है तो यह भी प्रासंगिक ही होता है कि पाठकों को यह भी बताया जाए कि पिछले एक वर्ष में इस तरह की कितनी घटनाएं हो चुकी है और कितने लोग मरे। इस तरह की घटनाओं को रोकने के लिए क्या कदम उठाए गए और वे कहां तक सफल रहे हैं और अगर सफल नहीं हुए तो क्यों? यह भी बताना प्रासंगिक होगा कि नगर की कितनी आबादी इस तरह के असुरक्षित घरों में रह रही है और इस स्थिति में किस तरह के खतरे निहित हैं आदि।

एक समाचार की संरचना को मोटे तौर पर इन भागों में बांट सकते हैं–

- इंट्रो
- व्याख्यात्मक जानकारियां
- विवरणात्मक जानकारियां
- अतिरिक्त जानकारियां
- पृष्ठभूमि

एक समाचार की संरचना को दूसरे रूप में तीन मुख्य खंडों में भी विभाजित कर सकते हैं। पहला तो इंट्रो कि 'क्या हुआ' इसके बाद अन्य प्रश्नों के उत्तर दिए जा सकते हैं, जो 'क्या हुआ' को स्पष्ट करते हों। फिर जो कुछ बचा और समाचार को पूरा करने के लिए आवश्यक है उसे आखिरी खंड में शामिल कर सकते हैं।

भाषा और शैली

इसके अलावा समाचार लेखन और संपादन के बारे में जानकारी होना तो आवश्यक है। इस जानकारी को पाठक तक पहुँचाने के लिए एक भाषा की जरूरत होती है। आमतौर पर समाचार लोग पढ़ते हैं या सुनते–देखते हैं वे इनका अध्ययन नहीं करते। हाथ में शब्दकोष लेकर समाचारपत्र नहीं पढ़े जाते। इसलिए समाचारों की भाषा बोलचाल की होनी चाहिए। सरल भाषा, छोटे वाक्य और

संक्षिप्त पैराग्राफ। एक पत्रकार को समाचार लिखते वक्त इस बात का हमेशा ध्यान रखना होगा कि भले ही इस समाचार के पाठक/उपभोक्ता लाखों हों लेकिन वास्तविक रूप से एक व्यक्ति अकेले ही इस समाचार का उपयोग करेगा।

इस दृष्टि से जन संचार माध्यमों में समाचार एक बड़े जन समुदाय के लिए लिखे जाते हैं, लेकिन समाचार लिखने वाले को एक व्यक्ति को केंद्र में रखना होगा जिसके लिए वह संदेश लिख रहा है जिसके साथ वह संदेशों का आदान-प्रदान कर रहा है। फिर पत्रकार को इस पाठक या उपभोक्ता की भाषा, मूल्य, संस्कृति, ज्ञान और जानकारी का स्तर आदि आदि के बारे में भी मालूम होना ही चाहिए। इस तरह हम कह सकते हैं कि यह पत्रकार और पाठक के बीच सबसे बेहतर संवाद की स्थिति है। पत्रकार को अपने पाठक समुदाय के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए। दरअसल एक समाचार की भाषा का हर शब्द पाठक के लिए ही लिखा जा रहा है और समाचार लिखने वाले को पता होना चाहिए कि वह जब किसी शब्द का इस्तेमाल कर रहा है तो उसका पाठक वर्ग इससे कितना वाकिफ है और कितना नहीं।

उदाहरण के लिए अगर कोई पत्रकार 'इकनॉमिक टाइम्स' जैसे अंग्रेजी के आर्थिक समाचारपत्र के लिए समाचार लिख रहा है तो उसे मालूम होता है कि इस समाचारपत्र को किस तरह के लोग पढ़ते हैं। उनकी भाषा क्या है, उनके मूल्य क्या हैं, उनकी जरूरतें क्या हैं, वे क्या समझते हैं और क्या नहीं? ऐसे अनेक शब्द हो सकते हैं जिनकी व्याख्या करना 'इकनॉमिक टाइम्स' के पाठकों के लिए आवश्यक न हो लेकिन अगर इन्हीं शब्दों का इस्तेमाल 'नवभारत टाइम्स' में किया जाए तो शायद इनकी व्याख्या करने की जरूरत पड़े क्योंकि 'नवभारत टाइम्स' के पाठक एक भिन्न सामाजिक समूह से आते हैं। अनेक ऐसे शब्द हो सकते हैं जिनसे नवभारत टाइम्स के पाठक अवगत हों लेकिन इन्हीं का इस्तेमाल जब 'इकनॉमिक टाइम्स' में किया जाए तो शायद व्याख्या करने की जरूरत पड़े क्योंकि उस पाठक समुदाय की सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि भिन्न है।

अंग्रेजी भाषा में अनेक शब्दों का इस्तेमाल मुक्त रूप से कर लिया जाता है जबकि हिंदी भाषा का मिजाज मीडिया में इस तरह के गाली-गलौज के शब्दों को देखने का नहीं है भले ही बातचीत में इनका कितना ही इस्तेमाल क्यों न हो। भाषा और सामग्री के चयन में पाठक या उपभोक्ता वर्ग की संवेदनशीलताओं का भी ध्यान रखा जाता है और ऐसी सूचनाओं के प्रकाशन या प्रसारण में विशेष

सावधानी बरती जाती है जिससे हमारी सामाजिक एकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता हो।

समाचार लेखन के सिद्धांत

पहले हमने पांच 'डब्ल्यू' और एक 'एच' यानी छह ककारों की चर्चा की है। दरअसल, समाचार लेखन में घटनाओं और इनसे संबंधित तथ्यों के चयन की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। देश-दुनिया में रोज हजारों-लाखों घटनाएं घटती हैं, लेकिन इनमें से कुछ ही समाचार बन पाती हैं। यूं तो हमने किसी घटना के समाचारीय होने के कारकों का भी जिक्र किया है, लेकिन समाचार जगत की चयन की प्रक्रियाएं इतनी विविध, कठिन और जटिल हैं कि उनके कारणों को स्पष्ट रूप से चिह्नित करना लगभग असंभव है।

समाचार लेखन के बारे में भी मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि जब हम किसने, क्या, कब और कहां का उत्तर दे रहे होते हैं तो कहा जा सकता है कि यहां तथ्य ही केंद्र में हैं। हालांकि यहां इस बात का उल्लेख करना भी जरूरी है कि यह भी एक अहम मसला है कि एक पत्रकार किन तथ्यों का चयन करता है और किस आधार पर यह चयन किया जाता है। कौन सी अवधारणाएं और मूल्य तथ्यों के चयन इस प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं?

समाचारों की साख को बनाए रखने के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना जरूरी है।

(i) यथार्थता–एक आदर्श रूप में मीडिया और पत्रकारिता यथार्थ का प्रतिबिंब मात्र है। इस तरह समाचार यथार्थ की पुनर्रचना करता है। यह अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया है और आज तो यहां तक कहा जाता है कि समाचार संगठनों द्वारा सृजित यथार्थ की छवियां भ्रम पैदा करती हैं। लेकिन सच यही है कि मानव यथार्थ की नहीं, यथार्थ की छवियों की दुनिया में रहता है। किसी भी यथार्थ के बारे में हमें जो भी जानकारियां प्राप्त होती हैं उसी के अनुसार हम उस यथार्थ की एक छवि अपने मस्तिष्क में बना लेते हैं और यही छवि हमारे लिए वास्तविक यथार्थ का काम करती है। एक तरह से हम सूचना सृजित छवियों की दुनिया में रहते हैं।

संचार के प्रारंभ से ही ऐसा होता आया है। जो कुछ भी मानव ने देखा नहीं है और जिसके होने का उसे अहसास है उसके बारे में एक सूचना छवि उसके पास होती है। दरअसल, यथार्थ को उसकी संपूर्णता में प्रतिबिंबित करने के लिए

आवश्यक है कि ऐसे तथ्यों का चयन किया जाए जो इसकी संपूर्णता का प्रतिनिधित्व करते हैं। समाचार में हम किसी भी यथार्थ को उसके बारे में अत्यंत सीमित चयनित सूचनाओं और तथ्यों के माध्यम से ही सृजित करते हैं। इसलिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि किसी भी विषय के बारे में समाचार लिखते वक्त हम किन सूचनाओं और तथ्यों का चयन करते हैं। चुनौती यही है कि ये सूचनाएं और तथ्य केंद्रीय हों और संपूर्ण विषय का प्रतिनिधित्व करते हों अर्थात् तथ्यों का प्रतिनिधित्वपूर्ण होना अत्यंत आवश्यक है।

इस संदर्भ में एक भारतीय लोक कथा तथ्यात्मकता और सत्यात्मकता को काफी अच्छे ढंग से उजागर करती है। छह अंधे और एक हाथी की कहानी। छह अंधों में बहस छिड़ गई कि हाथी कैसा होता है और फिर उन्होंने इस बहस को खत्म करने के लिए स्वयं हाथी को छूकर यह तय करने का निश्चय किया कि हाथी कैसा होता है। एक अंधे ने हाथी के पेट को छुआ और कहा यह ''दीवार की तरह है।'' दूसरे ने उसके दांत को छुआ और कहा ''नहीं यह तलवार की तरह है।'' तीसरे के हाथ उसकी सूढ़ आई और उसने कहा ''यह तो सांप की तरह है।'' चौथे ने उसका पैर छुआ और चिल्लाया तुम पागल हो ''यह पेड़ की तरह है।'' पांचवें को हाथी का कान हाथ आया और उसने कहा, ''तुम सब गलत हो यह पंखे की तरह है।'' छठे अंधे ने उसकी पूंछ पकड़ी और बोला, ''बेवकूफों हाथी दीवार, तलवार, सांप, पेड़, पंखे में से किसी भी तरह का नहीं होता यह तो एक रस्सी की तरह है।'' हाथी तो गया और छह अंधे आपस में लड़ते रहे। हरेक अपने 'तथ्यों' के आधार पर हाथी की अपनी 'छवि' पर अडिग था।

तथ्य या सूचनाएं जो हर अंधे ने छूकर प्राप्त किए वे अपने आप में सच थे हाथी का कान पंखे जैसा होता है, लेकिन हाथी तो पंखे जैसा नहीं होता। इस तरह हम कह सकते हैं कि तथ्य अपने आप में तो सत्य ही होते हैं, लेकिन अगर किसी संदर्भ में उनका प्रयोग किया जा रहा हो तो उनका पूरे विषय के संदर्भ में प्रतिनिधित्वपूर्ण होना आवश्यक है। उसी स्थिति में तथ्य यथार्थ की सही तस्वीर प्रतिबिंबित कर पाएंगे। इसके अलावा समाचार और उनके यथार्थ को लेकर काफी कुछ कहा और लिखा गया है। कैनेथ ब्रूक ने तो सन् 1935 में कहा था कि किसी एक पहलू पर केंद्रित होने का मतलब दूसरे पहलू की अनदेखी भी है। समाचार लेखन के संदर्भ में अपने आप को इन तथ्यों की सत्यता के दायरे में नहीं बांध सकते जो अपने आप में सत्य ही होते हैं बल्कि हमारे सामने

चुनौती होती हैं सत्यपूर्ण तथ्यों के माध्यम से संपूर्ण यथार्थ को प्रतिबिंबित करने की।

एक नस्ली, जातीय या धार्मिक हिंसा की घटना का समाचार कई तरह से लिखा जा सकता है। इसे तथ्यपरक ढंग से इस तरह भी लिखा जा सकता है कि किसी एक पक्ष की शैतान की छवि सृजित कर दी जाए और दूसरे पक्ष को इसके कारनामों का शिकार। इस घटना के किसी भी एक पक्ष को अधिक उजागर कर एक अलग ही तरह की छवि का सृजन किया जा सकता है। फिर इस घटना में आम लोगों के दु:ख-दर्दो को उजागर कर इस तरह की हिंसा के अमानवीय और जघन्य चेहरे को भी उजागर किया जा सकता है। एक रोती विधवा, बिलखते अनाथ बच्चे या तो मात्र विधवा और अनाथ बच्चें हैं जिनकी यह हालत जातीय या धार्मिक हिंसा ने की या फिर ये इसलिए विधवा और अनाथ हैं क्योंकि ये किसी खास जाति या धर्म में हैं। इस तरह समाचार को वास्तव में यथार्थ के करीब रखने के लिए एक पत्रकार को प्रोफेशनल और बौद्धिक कौशल में एक स्तर का महारथ हासिल करना जरूरी है। इस तरह की तमाम घटनाओं को सतह पर नहीं एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर इनका मूल्यांकन करना पड़ेगा। वरना प्रतिनिधित्वपूर्ण तथ्यों का चयन करना मुश्किल हो जाएगा।

वस्तुपरकता

वस्तुपरकता को भी इस तरह की तथ्यपरकता से ही आंकना आवश्यक है। जैसी कि पहले ही चर्चा की गयी है कि हम किस घटना का समाचार के रूप में चयन करते हैं और दूसरा इस घटना से संबंधित ढेर सारे तथ्यों में से किन तथ्यों को समाचार गठन की प्रक्रिया में चयनित करते हैं या अस्वीकार करते हैं, लेकिन उस प्रक्रिया में किस आधार पर और क्यों हम चंद तथ्यों को वस्तुपरक मान लेते हैं? वस्तुपरकता और यथार्थता के बीच काफी समान क्षेत्र भी है, लेकिन दोनों विचारों के अंतर को भी समझना जरूरी है। एक होते हुए भी ये दोनों अलग विचार हैं। यथार्थता का संबंध जहां अधिकाधिक तथ्यों से है वहीं वस्तुपरकता का संबंध इस बात से है कि कोई व्यक्ति तथ्यों को कैसे देखता है। किसी विषय के बारे में हमारे मस्तिष्क में पहले से सृजित छवियां हमारे समाचार मूल्यांकन की क्षमता को प्रभावित करती हैं और हम इस यथार्थ को इन छवियों के अनुरूप देखने का प्रयास करते हैं।

हमारे मस्तिष्क में अनेक मौकों पर इस तरह की छवियां वास्तविक भी हो सकती हैं और वास्तविकता से दूर भी हो सकती हैं। यह भी कहा जा सकता है कि जहां तक यथार्थता के चित्रण का संबंध है यह प्रोफेशनल कौशल की ओर अधिक झुका हुआ है और वस्तुपरकता की अवधारणा का संबंध हमारे मूल्यों से अधिक है। हमें ये मूल्य हमारे सामाजिक माहौल से मिलते हैं। बचपन से ही हम स्कूल में, घर में, सड़क चलते हर कदम हर पल सूचनाएं प्राप्त करते हैं और दुनिया भर के स्थानों, लोगों, संस्कृतियों आदि सैकड़ों विषयों के बारे में अपनी एक धारणा या छवि बना लेते हैं। वस्तुपरकता का तकाजा यही है कि किस हद तक हम इस छवि को वास्तविकता के सबसे करीब ले जा पाते हैं। कुछ सत्य ऐसे हैं जिन पर एक विश्वव्यापी सहमति हो सकती है, लेकिन ऐसे तमाम सच जो हमारे दृष्टिकोण से निर्धारित होते हैं उन पर यह पैमाना लागू नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से दुनिया हमेशा सतरंगी और विविध रहेगी। इसे देखने के दृष्टिकोण भी अनेक होंगे। इसलिए कोई भी समाचार सबके लिए एक साथ वस्तुपरक नहीं हो सकता। एक ही समाचार किसी के लिए वस्तुपरक हो सकता है और किसी के लिए पूर्वाग्रह से प्रभावित हो सकता है।

हमें समाचार लेखन के हर सिद्धांत और अवधारणा के संदर्भ में बार-बार इस बात पर केंद्रित होना पड़ेगा कि देश और दुनिया भर की हजारों-लाखों घटनाओं से चंद घटनाओं को किस आधार पर समाचार योग्य माना जाता है और फिर समाचार योग्य माने जानी वाली घटनाएं जिस रूप में पाठकों या दर्शकों/श्रोताओं तक पहुँचती हैं तो इनमें किन तथ्यों का समावेश होता है? घटना के किन पक्षों को उछाला जाता है और किन पक्षों की अनदेखी की जाती है? ऐसा क्यों होता है और किया जाता है यह भी एक जटिल सवाल है। तात्कालिक तौर पर तो इसे इस पैमाने पर ही परखा जा सकता है कि किसी खास घटना के समाचार बनने और इसके किसी खास पक्ष को अहमियत मिलने से किसके हितों की पूर्ति होती है। हितों की पूर्ति का पैमाने का इस्तेमाल पत्रकारिता में अनेक रुझानों के मूल्यांकन के लिए किया जा सकता है।

निष्पक्षता

वैसे तो निष्पक्षता सीधे-सीधे अपना अर्थ व्यक्त करता है। लेकिन निष्पक्षता को तटस्थता के रूप में देखना पत्रकारिता के पेशे में एक गंभीर भूल होगी। पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। इसकी राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में

अहम भूमिका है। इसलिए पत्रकारिता और समाचार सही और गलत, अन्याय और न्याय जैसे मसलों के बीच तटस्थ नहीं हो सकते बल्कि वे निष्पक्ष होते हुए सही और न्याय के साथ होते हैं।

जब हम समाचारों में निष्पक्षता की बात करते हैं तो इसमें न्यायसंगत होने का तत्त्व अधिक अहम होता है। आज मीडिया एक बहुत बड़ी ताकत है। एक ही झटके में यह किसी पर बट्टा लगाने की ताकत रखता है। इसलिए किसी के बारे में समाचार लिखते वक्त इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि कहीं किसी को अनजाने में ही बिना सुनवाई के फांसी पर तो नहीं लटकाया जा रहा है। भ्रष्टाचार और इस तरह के आचरण के मामलों में इस बात का विशेष महत्त्व है। समाचार की वजह से किसी व्यक्ति के साथ अन्याय न हो जाए, इसकी गारंटी करने के लिए निष्पक्षता की अहम भूमिका है।

संतुलन

निष्पक्षता की अगली कड़ी संतुलन है। आमतौर पर मीडिया पर आरोप लगाया जाता है कि समाचार कवरेज संतुलित नहीं है यानि यह किसी एक पक्ष की ओर झुका है। हम समाचार में संतुलन के सिद्धांत की बात करते हैं तो वह इस तरह के व्यापक संतुलन से थोड़ा हटकर है। आमतौर पर संतुलन की आवश्यकता वहीं पड़ती है जहां किसी घटना में अनेक पक्ष शामिल हों और उनका आपस में किसी न किसी रूप में टकराव हो। उस स्थिति में संतुलन का तकाजा यही है कि सभी संबद्ध पक्षों की बात समाचार में अपने-अपने समाचारीय वजन के अनुसार स्थान पाए।

समाचार में संतुलन का महत्त्व तब कहीं अधिक हो जाता है जब किसी पर किसी तरह के आरोप लगाए गए हों या इससे मिलती-जुलती कोई स्थिति हो। उस स्थिति में हर पक्ष की बात समाचार में अभिव्यक्त होनी चाहिए अन्यथा यह एकतरफा चरित्र हनन का हथियार बन सकता है। व्यक्तिगत किस्म के आरोपों में आरोपित व्यक्ति के पक्ष को भी स्थान मिलना चाहिए। लेकिन यह स्थिति तभी हो सकती है जब आरोपित व्यक्ति सार्वजनिक जीवन में है और आरोपों के पक्ष में पक्के सबूत नहीं हैं या उनका सही साबित होना काफी संदिग्ध है। अगर कोई ''सार्वजनिक व्यक्तित्त्व'' बलात्कार जैसा अपराध कर दे और मामला साफ-साफ सबके सामने हो तो पत्रकार को भी अपने विवेक से ही संतुलन के सिद्धांत का पालन करना पड़ेगा। कुख्यात अपराधियों का मामला इससे

अलग है। संतुलन के नाम पर समाचार मीडिया इस तरह के तत्त्वों का मंच नहीं बन सकता जो कई मौकों पर देखने को मिलता है। कभी-कभार किसी समाचार से इस तरह के तत्त्वों को लाभ पहुँचता है। इसे रोकना भी जरूरी है।

संतुलन का सिद्धांत अनेक सार्वजनिक मसलों पर व्यक्त किए जाने वाले विचारों और दृष्टिकोणों पर तकनीकी ढंग से लागू नहीं किया जाना चाहिए। अनेक मसलों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने में राजनीतिक पार्टियां समय लेती हैं। आशय यह है कि राजनीतिक आलोचना के विषयों पर संतुलन का सिद्धांत उस तरह लागू नहीं किया जाना चाहिए जैसा व्यक्तिगत आरोपों के मामले में किया जाना चाहिए। राजनीतिक संतुलन तत्काल या रोजमर्रा की चीज नहीं है बल्कि एक समाचार संगठन को अपने कवरेज की संपूर्णता में संतुलित होना चाहिए।

पटकथा लेखन

पटकथा लेखन फिल्म लेखन का महत्त्वपूर्ण अंग है। कथा को दृश्य-श्रव्य माध्यम से अभिव्यक्त करने हेतु पटकथा लिखी जाती है। कथा से पटकथा का जन्म होता है पर यह भी सच है कि घटना है तो पटकथा बनेगी। घटना के बिना कथा नहीं बन सकती। घटना भी समस्या प्रधान होनी चाहिए, क्योंकि समस्या ही नाटकीय तत्त्व प्रदान करती है। या यूं कहिए कि समस्या से ही नाटक जन्म लेता है। घटना के कुछ पात्र हों, उनके आगे कोई समस्या उत्पन्न हो, उस समस्या से कोई संकट पैदा हो, संकट का समाधान ही नाटक का अंत कर देता है। जब किसी घटना की प्रसंग दृश्यों के रूप में शृंखला बन जाती है तो फिल्म की भाषा में उसे सीक्वेंस कहा जाता है। सीक्वेंस से ही पटकथा का निर्माण होता है।

डॉ. अनुपम ओझा पटकथा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–"पटकथा लेखन का सामान्य अर्थ है–विभिन्न उपक्रमों को एक-दूसरे से इस तरह से जोड़ना कि एक मुकम्मल कहानी चित्रित हो उठे। यानी स्क्रीन पर उभर आए।"

पटकथा लेखन का स्वरूप

पटकथा लेखन एक सृजनात्मक कला है, इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. अनुपम ओझा कहते हैं–"लेखन की छोटी इकाई शब्द या वाक्य है, किन्तु पटकथा लेखन की छोटी इकाई शॉट है। वाक्यों को जोड़ने से पैराग्राफ बनता है, शॉटस को जोड़ने से दृश्य (अथवा सीन) बनता है। शॉट, सीन और सीक्वेंस के मिलने से पटकथा बनती है। पटकथा का आधार

कहानी होती है। कहानी किसी एक आयडिया, प्लाट या थीम पर खड़ी की जाती है। कहानी को चलचित्र की भाषा में ढालने के कार्य को पटकथा-लेखन कहा जाता है।"

पटकथा लिखते समय पहले आप अनिश्चित वर्तमान काल में घटना को घटते हुए देखें, फिर उसे सफेद कागज पर पेन से शब्द का रूप दें। इसे लिखते समय ता है, ती है, ते हैं आदि क्रिया विभक्तियों का प्रयोग करें। इस बात का भी ध्यान रखें कि ऐसी कौन सी घटनाएं ली जाएं जिनसे पात्रों के चरित्र का पता चल सके। आपको इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए कि आपके अलग-अलग पात्र जो भी हों, वे किस मन:स्थिति एवं परिस्थिति के वशीभूत होकर कार्य कर रहे हैं। किस लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहते हैं? प्रेरणा कमी और लक्ष्य यानी मोटिवेशन, एक्शन एवं रोल आदि बातें आपको अपने पात्र के विषय में मालूम होनी चाहिए। इसी आधार पर आप जन समूह को बता पाएंगे कि आपके पात्र क्या चाहते हैं? किसलिए चाहते हैं, और अपनी उम्मीदों के लिए क्या कुछ करने को तैयार हैं।

पटकथा लिखते समय दृश्य के ऊपर दिन और रात का ही उल्लेख करना चाहिए। यह बताने की जरूरत नहीं है कि दिन के चार बजे हैं या पांच। समय बताना जरूरी हो तो घड़ी का शॉट डालना चाहिए। या किसी संवाद द्वारा समय की सूचना देनी चाहिए। धारावाहिकों में कथानक कई-कई उपकथाओं वाला होना चाहिए ताकि उसे लंबे समय तक किस्त-दर-किस्त रूप में दिखाया जा सके।

लेखक व दर्शक में काफी अंतर होता है। लेखक घटना लिखता है। जबकि दर्शक पर्दे पर घटना को घटित होते हुए देखता है। पात्रों को बोलता हुआ सुनता है। फिल्म में हमेशा वर्तमान दिखाया जाता है। फिल्म की कहानी सुनते ही हम अनिश्चित वर्तमान की बात करने लगते हैं। 'एक भिखारी था' के स्थान पर 'एक भिखारी होता है' का प्रयोग करते हैं।

❐❐❐